BEDSEDE-A1

बाल्यावस्था एवं विकास

Childhood and Growing Up

विशिष्ट शिक्षा विभाग

शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन	इकाई संख्या	इकाई लेखन	इकाई संख्या
डॉ० संगीता सिंह, विभागाध्यक्ष, शिक्षाशास्त्र विभाग, राजकीय महाविद्यालय, रामनगर, उत्तराखण्ड	1, 2	प्रोफेसर (डॉ०) रजनी रंजन सिंह, संकायाध्यक्ष, विशिष्ट शिक्षा संकाय, डॉ० शकुंतला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश	6, 7
डॉ० सुशील बहुगुणा, सहायक प्राध्यापक, शिक्षाशास्त्र विभाग, राजकीय महाविद्यालय कोटद्वार, कोटद्वार, उत्तराखण्ड	3	डॉ० शिरीष पाल सिंह, सह प्रोफेसर, शिक्षा विद्यापीठ, महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र	8
डॉ० के. एल. डंगवाल, सहायक प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश	4, 5		

समस्त लेखों/पाठों से संबंधित किसी भी विवाद के लिए संबंधित लेखक जिम्मेदार होगा।
किसी भी विवाद का जूरिसडिक्शन हल्द्वानी (नैनीताल) होगा।

कापीराइट: उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन वर्ष: 2016
संस्करण: सीमित वितरण हेतु
प्रकाशक: कुलसचिव, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखण्ड -263139

मानव वृद्धि एवं विकास

Human Growth and Development

BEDSEDE-A1

इकाई सं०	इकाई का नाम	पृष्ठ सं०
01	मानव वृद्धि एवं विकास Human Growth and Development	1-21
02	मानव विकास की अवस्थाएं Stages of Human Development	22- 39
03	शैशवावस्था में शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक तथा सामाजिक विकास Infancy with respect to Physical, Mental, Emotional and Social Development	40- 54
04	बाल्यावस्था में शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक तथा सामाजिक विकास Childhood -with respect to Physical, Mental, Emotional and Social development	55- 69
05	किशोरावस्था में शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक तथा सामाजिक विकास Adolescence -with respect to Physical, Mental, Emotional and Social development	70- 86
06	ज्याँ पियाजे का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त एवं इसके शैक्षिकनिहितार्थ Jean Piaget’s Theory of Cognitive Development and Its Educational Implications	87-102
07	जिरोम एस0 ब्रूनर का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त एवं इसके शैक्षिक निहितार्थ Jerome S. Bruner’s Theory of Cognitive Development and Its Educational Implications	103-122
08	विकास के प्रभावी कारक Effective Factors for Development	123-141
09	गर्भस्थ शिशु का विकास गर्भस्थ शिशु -, गर्भावस्था और गर्भोत्तर कालीन विकास Prenatal Development Prenatal, Antenatal and Postnatal Development	142- 160

इकाई –1 मानव वृद्धि एवं विकास
Human Growth and Development

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 वृद्धि का अर्थ
1.4 विकास का अर्थ
1.5 वृद्धि एवं विकास में अन्तर
1.6 विकास की विशेषताएं
1.7 वृद्धि एवं विकास को प्रभावित करने वाले तत्व
1.7.1 परिपक्वता बनाम अधिगम
1.7.2 आनुवंशिकता बनाम वातावरण
1.8 सारांश
1.9 शब्दावली
1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची सूची
1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

विकास प्राणी की एक ऐसी विशेषता है जिसका प्रारंभ गर्भाधान से ही हो जाता है तथा यह जीवन पर्यन्त चलता रहता है। कुछ विकास अवस्था विशेष में जाकर बन्द हो जाता है जिसे वृद्धि कहते हैं जबकि कुछ विकास प्रकार्यात्मक स्वरूप का होता है जो अनवरत चलता रहता है।

प्रस्तुत इकाई में आप वृद्धि एवं विकास के अर्थ एवं महत्व को समझ पायेंगे तथा विकास की विभिन्न विशेषताओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

इसके अतिरिक्त, इस इकाई के अन्तर्गत आप विकास को प्रभावित करने वाले विभिन्न तत्वों का अध्ययन करेंगे तथा विकास के निर्धारण के रूप में परिपक्वता बनाम अधिगम एवं आनुवंशिकता बनाम पर्यावरण को जान पायेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप -

1. आप वृद्धि एवं विकास का अर्थ समझ सकें।
2. वृद्धि एवं विकास में अन्तर स्पष्ट कर सकें।
3. विकास के नियमों एवं विशेषताओं का उल्लेख कर सकें।
4. विकास के निर्धारकों को रेखांकित कर सकें तथा
5. विकास में होने वाले विभिन्न परिवर्तनों को पहचान सकें।

1.3 वृद्धि का अर्थ

मनुष्य जब जन्म लेता है तो उसकी कुछ-न-कुछ लम्बाई होती है, उसका कुछ-न-कुछ वजन होता है। किसी हॉस्पीटल या नर्सिंग होम में जन्में बच्चे की लम्बाई और उसका वजन डाक्टर द्वारा नोट किया जाता है। आप ने अपने इर्द-गिर्द, आस-पड़ोस में पैदा हुए बच्चों के बारे में सुना होगा कि उसका बच्चा 7 पौंड या 7.5 पौंड या फिर 3 कि0ग्रा0 या 3.5 कि0 ग्राम का है। सामान्य से कम वजन है या अधिक है। घने बाल वाला लम्बा है, या हल्का बाल है, बहुत लम्बा नहीं है, आदि-आदि।

जन्म के बाद बच्चे की लम्बाई और भार या वजन में परिवर्तन होने लगता है। जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है, उसकी लम्बाई और भार में भी वृद्धि होती जाती है और फिर क्रियात्मक विकास, भाषा विकास, सामाजिकता का विकास, संवेग का विकास होने लगता है। विकासात्मक मनोविज्ञान में 'वृद्धि' और 'विकास' दो ऐसे शब्द हैं जिनका प्रयोग प्रायः पर्यायवाची सम्प्रत्यय के रूप में होता है, परन्तु वास्तव में दोनों में कुछ भिन्नता है।

वृद्धि से तात्पर्य सम्पूर्ण जीवन-काल में आने वाले भौतिक और दैहिक परिवर्तनों से है। ये परिवर्तन सामान्यतः मात्रात्मक स्वरूप के होते हैं और प्रायः गर्भाधान से लेकर लगभग बीस वर्ष की उम्र तक परिलक्षित होते हैं। यानी, वृद्धि एक विशेष प्रकार के विकास को संकेतित करती है। साधारण अर्थ में तो वृद्धि का मतलब शारीरिक आकार में परिवर्तन से है जो प्रायः गर्भाधान के दो सप्ताह के बाद प्रारंभ हो जाती है। आकार का यह परिवर्तन लगभग 20 वर्ष की आयु तक चलता है। इस आयु के बाद आकार का परिवर्तन वृद्धि नहीं बल्कि मोटापा कहलाता है।

स्पष्ट है कि गर्भाधान के बाद से ही शिशु के आकार, भार आदि में पोषाहार एवं उचित देखभाल से वृद्धि होने लगती है और वह शारीरिक परिपक्वता के स्तर को प्राप्त करने लगता है। ऐसी शारीरिक वृद्धि न सिर्फ मानव प्राणी में वरन् संसार के प्रत्येक प्राणी में देखी जाती है और इसका स्वरूप सार्वभौमिक होती है। इसे स्पष्ट करते हुए **गेसेल** नामक मनोवैज्ञानिक ने कहा है कि ''वृद्धि एक ऐसी जटिल एवं संवेदनशील प्रक्रिया है जिसमें प्रबल स्थिरता लाने वाले कारक केवल बाहृय ही

नहीं वरन् आन्तरिक भी होते हैं जो बालकों के प्रतिरूप तथा उसकी वृद्धि की दिशा में संतुलन बनाये रखते हैं।''

1.4 विकास का अर्थ

अभी तक हम लोग वृद्धि के सम्बन्ध में चर्चा कर रहे थे। गर्भाधान के पश्चात् व्यक्ति के आकार और भार में होने वाले मात्रात्मक परिवर्तन की बात कर रहे थे। परन्तु यदि हम गौर करें तो हम पाते हैं कि मानव जीवन के प्रारंभ से ही विभिन्न प्रकार के गुणात्मक परिवर्तन भी घटित होते हैं और इन परिवर्तनों का सिलसिला जीवन पर्यन्त चलता रहता है। इन्हीं अनवरत परिवर्तनों का नाम विकास है। जीवन की विभिन्न अवस्थाओं के अन्तर्गत आने वाले सभी गुणात्मक परिवर्तन मानव विकास के अन्तर्गत आते हैं। विकास का यह क्रम स्थिर नहीं रहता, अवरिाम गति से चलता रहता है। विकास क्रम में नयी विशेषताओं का समावेश होता है तथा पुरानी विशेषताएं लुप्त होती जाती हैं। मनोवैज्ञानिकों ने इन्हीं परिवर्तनों, गुणों और विशेषताओं की क्रमिक एवं नियमित उत्पत्ति को विकास कहा है। हरलॉक (1968) के अनुसार ''विकास प्रगतिशील परिवर्तनों का एक नियमित, क्रमबद्ध एवं सुसम्बद्ध पैटर्न है।'' गेसेल ने विकास को एक तरह का परिवर्तन कहा है जिससे बच्चों में नवीन विशेषताओं एवं क्षमताओं का विकास होता है। इसी प्रकार, यदि हम स्टैट (1974) के विचारों पर नजर डालें तो स्पष्ट होता है कि ''विकास समय के साथ होने वाला परिवर्तन है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका प्रेक्षण प्रतिफलों के अध्ययन द्वारा किया जा सकता है।''

कुल मिलाकर विकास प्रगतिशील परिवर्तन की प्रक्रिया ही कहा जायेगा जो नियमित होती है तथा इसकी दिशा अग्रगामी होती है। इसका सम्बन्ध व्यक्ति के अभियोजन की क्रियाओं में उन्नतिशील परिवर्तनों के घटित होने से है। यानी, विकास द्वारा जो परिवर्तन लक्षित होता है वह व्यक्ति की पिछली अवस्था से आगे आने वाली अवस्था की ओर अग्रसर होता है। जन्म के समय जहां शिशु निःसहाय होता है, वहीं विकास क्रम में वह हर प्रकार की क्रियाओं, जैसे-उठने-बैठने, चलने-फिरने, दौड़ने-भागने आदि में सक्षम हो जाता है।

हरलॉक ने विकास में होने वाले परिवर्तन में क्रमिकता की बात कही है क्योंकि इसके अन्तर्गत आने वाले सभी परिवर्तन क्रमबद्ध होते हैं। कोई एक निश्चित परिवर्तन एक विशेष परिवर्तन के पहले या बाद घटित होता है। जैसे- गतिक क्रियाओं के विकास क्रम में बच्चा पहले रेंगता है, फिर खिसकता है, फिर बैठता है और फिर चलना शुरू करता है। ऐसा नहीं होता कि वह पहले चलने लगता है, फिर रेंगना शुरू करता है। कहने का मतलब कि विकास का एक निश्चित क्रम होता है जिसका अनुसरण उस अवस्था विशेष के सभी बच्चों द्वारा किया जाता है। यही कारण है कि अवस्था विशेष में होने वाली क्रियाओं का पूर्व-कथन किया जाता है।

इसी प्रकार विकास में सुसम्बद्धता का गुण पाया जाता है। यानी, विकास क्रम में होने वाले परिवर्तनों में सुसंगति एवं सुसम्बद्धता देखी जाती है। प्रायः जिस बच्चे का क्रियात्मक विकास शीघ्र

होता है, उसका भाषाई विकास, संवेगात्मक और सामाजिक विकास भी अपेक्षाकृत शीघ्र होता है। फलतः विकास के विविध पक्ष और स्वरूप आपस में सार्थक रूप से जुड़े होते हैं तथा इनमें सुसम्बद्धता होती है।

1.5 वृद्धि और विकास में अन्तर

ऊपर आपने वृद्धि और विकास के अर्थ का अध्ययन किया और दोनों की विशेषताओं को जाना। आपने देखा कि वृद्धि हो या विकास दोनों ही स्थिति में व्यक्ति में कुछ-न-कुछ परिवर्तन घटित होते हैं। इन परिवर्तनों का स्वरूप अलग-अलग होता है। वृद्धि और विकास कभी-कभी तो बिल्कुल एक-दूसरे के पर्याय लगते हैं परन्तु मनोवैज्ञानिकों ने कुछ खास-खास आधार पर दोनों में अन्तर स्पष्ट किया है-

1. विकास एक व्यापक संप्रत्यय है जबकि वृद्धि एक विशेष प्रकार के विकास का सूचक है। विकास अनवरत चलता रहता है जबकि वृद्धि की सीमा तय है जहाँ आकर वह रूक जाती है।
2. विकास का सम्बन्ध मूलतः व्यक्ति की मानसिक क्रियाओं से है जबकि वृद्धि के द्वारा मूलतः दैहिक या भौतिक परिवर्तन घटित होते हैं। प्राणी में विकास वृद्धि से पहले प्रारंभ होता है और जीवन-पर्यन्त चलता रहता है जबकि वृद्धि एक खास अवस्था में प्रारंभ होती है और पुनः समाप्त हो जाती है। सामान्यतः वृद्धि गर्भाधान के दो सप्ताह बाद प्रारंभ होती है और लगभग बीस वर्ष की उम्र के आस-पास समाप्त हो जाती है।
3. वृद्धि एक धनात्मक विकास है जिसमें शरीर के आकार, भार आदि में बढ़ोत्तरी नजर आती है जबकि विकास धनात्मक और ऋणात्मक दोनों ही प्रकार का हो सकता है। यही कारण है कि विकास का स्वरूप गुणात्मक होता है जबकि वृद्धि का स्वरूप मात्रात्मक। इसका सबसे अच्छा उदाहरण है- वृद्धावस्था, जिसमें घटित परिवर्तन का स्वरूप ऋणात्मक होता है क्योंकि व्यक्ति की दृष्टि-क्षमता, श्रवण-क्षमता, जनन-क्षमता आदि में भारी गिरावट देखी जाती है।
4. विकास का सम्बन्ध प्रकार्यात्मक परिवर्तनों से है जबकि वृद्धि संरचनात्मक परिवर्तनों तक ही सीमित है। वृद्धि की प्रक्रिया में समन्वय का होना आवश्यक नहीं है जबकि प्रत्येक प्रकार का विकास समन्वित और समाकलित होता है।
5. विकास का एक निश्चित पैटर्न होता है जबकि वृद्धि के पैटर्न में घोर वैयक्तिक भिन्नता पाई जाती है। उदाहरण स्वरूप, प्रत्येक बच्चा पहले बैठना प्रारंभ करता है, फिर चलना, यदि उसने बैठना नहीं सीखा तो वह चलना भी नहीं सीखेगा परन्तु यदि चार साल का कोई बच्चा ढाई फीट लम्बा है तो उसका वजन 10 किलो हो सकता है जबकि इसी उम्र का दूसरा बच्चा सवा दो फीट का होकर भी 12 किलो का हो सकता है।

6. वृद्धि मूलतः परिपक्वता का परिणाम होती है जबकि विकास परिपक्वता और अधिगम दोनों का प्रतिफल होता है। वास्तव में विकास परिपक्वता और अधिगम की अन्तःक्रिया का परिणाम है।

1.6 विकास की विशेषताएँ

विकासात्मक अध्ययनों से विकास प्रक्रिया के विषय में कुछ मौलिक और पूर्वकथनीय तथ्यों पर प्रकाश पड़ा है। ये तथ्य विकास की प्रणाली को समझने के लिए आवश्यक हैं। इन्हें विकास के नियमों या विशेषताओं के रूप में जाना जाता है। बच्चे जिस विकास-प्रक्रिया से गुजरते हैं उसकी कुछ विशेषताएँ होती हैं जो सभी विकासशील बच्चों में समान रूप से पायी जाती हैं। उनमें से कुछ प्रमुख विशेषताओं का वर्णन नीचे प्रस्तुत है।

विकास की एक निश्चित प्रणाली होती है

1. विकास के क्रम में आकार बड़ा होता है, नयी विशेषताएँ उभरती हैं, पुरानी विशेषताएँ लुप्त होती हैं इत्यादि। ये सभी परिवर्तन पूरी तरह नियमित ढंग से तथा एक प्रणाली के अनुसार होते हैं। विकास तो जन्म लेने वाले सभी प्राणियों में होता है और प्रत्येक जाति के प्राणी-विकास की एक निश्चित प्रणाली होती है। गेसेल का विचार है कि किन्हीं दो बच्चों का विकास एक समान नहीं होता परन्तु सबों की विकास-प्रणाली एकदम एक समान होती है। विकास की प्रत्येक अवस्था पिछली अवस्था से निकली हुई होती है और अगली अवस्था के लिए आधार होती है। यह बात भी एक प्रणाली-स्वरूप ही है। बच्चों के शरीर और गति-विकास को ही लें तो इनमें दो स्पष्ट प्रणालियाँ दिखाई देती हैं- क. शीर्ष-पुच्छ क्रम तथा ख. निकट-दूरस्थ क्रम।

   (क) शीर्ष-पुच्छ क्रम

   जन्म से पहले और जन्म के बाद, दोनों अवस्थाओं के विकास की यह प्रणाली स्पष्ट दिखाई देती है। जन्म के समय बच्चों के शारीरिक आकार को देखें तो सबसे बड़ा सिर उससे कम विकसित गर्दन, हाथ और छाती तथा सबसे कम विकसित पांव हाता है, अतः जन्म से पहले सर्वाधिक विकास शरीर के ऊपरी भागों में हुआ और निचले भागों में क्रमशः विकास कम हुआ। गति-विकास को देखें, बच्चा पहले गर्दन पर नियंत्रण करता है, तब छाती और हाथ की क्रियाओं पर उसके बाद कमर पर नियंत्रण होता है, तब ठेहुना पर और अन्त में घूटना की क्रियाओं पर, नियंत्रण होता है। स्पष्ट हुआ कि विकास ऊपर से नीचे की ओर, अर्थात् शीर्ष से पुच्छ की ओर बढ़ता है।

   (ख) निकट-दूरस्थ क्रम-

शीर्ष-प्रच्छ क्रम से ही संबन्धित विकास का एक लक्षण निकट-दूरस्थ क्रम भी है। हमारे हाथ पाँव के भी शीर्ष और पुच्छ होते हैं। कन्धा के पास बाँह का शीर्ष है और कमर के पास पाँव का शीर्ष है। बाँह को ही लें, बच्चा पहले सम्पूर्ण बांह की क्रिया पर नियंत्रण प्राप्त करता है, तब केहुनी की क्रियाओं पर नियंत्रण होता है, तब कलाई और अन्त में उंगलियों की क्रियाओं पर नियंत्रण प्राप्त होता हे। इसी प्रकार पाँव के गति-विकास में पहले जाँघ की क्रियाएँ विकसित होती हैं, तब ठेहुने, फिर घुटने और अन्त में पाँव की अंगुलियों पर नियंत्रण होता है। इस विकास क्रम से स्पष्ट है कि शारीरिक अंगों के जो भाग केन्द्र के निकट होते हैं उनकी क्रियाओं का विकास पहले होता है। मस्तिष्क और सुषुम्ना शरीर के केन्द्र माने जाते हैं। हाथ और पाँव का जो भाग सुषुम्ना के निकट है उसकी क्रिया पहले विकसित होती है और केन्द्र से दूर के भागों में विकास बाद में होता है। यही निकट दूरस्थ विकासक्रम है जो स्पष्टतः शीर्ष-पुच्छ क्रम के ही समान है। किसी अंग के निकटवर्ती भाग उसके शीर्ष के समान हैं जो पहले विकसित होते हैं और दूरस्थ भाग पुच्छ-रूपी हैं जो बाद में विकसित होते हैं।

विकास की एक निश्चित प्रणाली होती है। यह बात केवल शारीरिक और क्रियात्मक विकास में ही नहीं बल्कि मानसिक विकास, संवेग, भाषा, सामाजिकता आदि के विकास में भी एक निश्चित क्रम और संगठन पाया जाता है। संवेग का ही विकास देखें, पहले बच्चों में एक सामान्य उत्तेजितावस्था होती है, फिर आयु बढ़ने पर प्रसन्नता और खेद के संवेग विकसित होते हैं। आयु जब और बढ़ती है तो प्रसन्नता और खेद, दोनों से अनेक निश्चित संवेग विकसित होते हैं।

2. विकास सामान्य से विशिष्ट की ओर होता है-

प्रारम्भ में बच्चों की सभी शारीरिक और मानसिक क्रियाएँ सामान्य ढंग की होती हैं। अर्थात् उनका कोई निश्चित रूप नहीं होता है। इन्हीं सामान्य क्रियाओं से विशिष्ट प्रतिक्रियाएँ विकसित होती हैं। आरम्भ में शरीर के किसी भी भाग को उत्तेजित करें, सम्पूर्ण शरीर में एक सामान्य क्रिया उत्पन्न होती है। धीरे-धीरे वह केहुनी, फिर कलाई और अन्त में अंगुलियों पर भी नियंत्रण कर लेता है। संवेग के विकास में यह विशेषता और स्पष्ट दिखाई देती है। पहले सभी उद्दीपनों पर सामान्य उत्तेजना रहती है, आगे चलकर उत्तेजना के दो रूप हो जाते हैं- प्रसन्नता और खेद, और अधिक विकसित होने पर प्रसन्नता से अनेक निश्चित संवेग उत्पन्न होते हैं, जैसे- हर्ष, उल्लास, स्नेह, प्रेम, इत्यादि। इसी प्रकार खेद से भी निश्चित संवेगों, जैसे-क्रोध, शोक, ईर्ष्या इत्यादि विकसित होते हैं। भाषा सम्बन्धी विशिष्ट क्रियाएँ सामान्य स्वरोच्चारण से उत्पन्न होती हैं। बलबलाना एक सामान्य क्रिया है जिससे विशिष्ट स्वरों का उच्चारण विकसित होता है। प्रत्यय के विकास में यह विशेषता बहुत स्पष्ट मिलती है। पहले बच्चा सभी पशुओं को 'गाय, कह सकता है, फिर धीरे-धीरे गाय, बैल, भैंस, आदि में भेद करने लगता है। और विकसित होने पर गाय और बाछी में भी भेद करता है।

स्पष्ट हुआ कि बाल-जीवन के सभी पक्षों का विकास निर्विवाद रूप से सामान्य से विशिष्ट की ओर होता है।

3. विकास अविराम गति से होता है

गर्भाधान के समय जो विकास-प्रक्रिया आरम्भ होती है वह निरन्तर बिना किसी विराम के मृत्यु के समय तक चलती रहती है। कोई भी विशेषता अचानक उत्पन्न नहीं होती और न विकास की कोइ्र अवस्था अचानक टपक पड़ती है, बल्कि बहुत धीरे-धीरे उनका विकास होता है। हर नई विशेषता पुरानी विशेषता से विकसित होती है। कहने को तो विकास की कई अवस्थाएँ मानी जाती हैं, जैसे- शैशवावस्था, बचपनावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, इत्यादि परन्तु, यह कभी नहीं समझना चाहिए कि दो अवस्थाओं के बीच कोई खाई होती है, बल्कि हर नई अवस्था किसी पुरानी अवस्था की ही कड़ी होती है। अवस्थाओं की कल्पना तो केवल वर्णन की सुविधा के लिए की जाती है, किसी रिक्तता या विकास के रूक-रूक कर चलने के लिए नहीं। विकास-प्रक्रिया एक क्षण के लिए भी नहीं रूकती है। बच्चे में जो विशेषता आज प्रकट हुई उसकी शुरूआत बहुत पहले हो चुकी होती है। जन्म क्रन्दन ही भाषा-विकास का आरम्भ बिन्दु है। दाँत बनने की प्रक्रिया तो बच्चे में गर्भ के पाँचवें महीने से ही आरम्भ हो जाती है जबकि जन्म के छह महीने बाद दाँत प्रकट होता है। मानसिक क्रियाओं के विकास में भी विकास की निरन्तरता और अखण्डता स्पष्ट दिखाई देती है।

4. विकास की गति में वैयक्तिक भिन्नता होती है और यह भेद स्थायी होता है-

विभिन्न बच्चों की विकास-गति में भेद होता है। नवजात बच्चे भी अलग-अलग लम्बाई और वजन के होते हैं। उनकी मानसिक योग्यताओं में भी भेद होता है। विकास की मात्रा का यह भेद विकास गति के भेद के कारण होता है। कुछ बच्चे तेज गति से और कुछ बच्चे धीमी गति से विकसित होते हैं। कोई बच्चा पाँच महीने में बैठता है और कोई-कोई तो 12 महीने में बैठता है। विकास गति का यह भेद प्रधानतः आनुवंशिक भेदों के कारण होता है। चूँकि आनुवंशिकता बदलती नहीं है इसलिए विकास गति का यह भेद स्थायी हुआ करता है। यह विश्वास गलत है कि विकास की कोई कमी आगे चलकर पूरी हो जाएगी। बाल्डविन का विश्वास है। बच्चे में जो कमी आज है वह सब दिन रहेगी, कि इलिंगवर्थ ने लड़कों और लड़कियों की लम्बाई और वजन की तुलना जन्म के समय से लेकर 13 वर्षों तक छः-छः महीनों के मध्यान्तर पर किया और जन्म के समय का भेद 13 वर्ष की आयु में भी वर्तमान था। मानसिक क्रियाओं एवं योग्यताओं में भी स्थायी वैयक्तिक भेद होते हैं। टर्मन के अनुसार प्रतिभाशाली बच्चे लड़कपन से चमकते रहते हैं। हरलॉक मानती हैं कि जो बच्चा आरम्भ में मन्द बुद्धिवाला है वह बाद में बुद्धिमान नहीं होगा, बुद्धि-लब्धि स्थायी होती है।

5. शरीर के विभिन्न अंगों की विकास-गति अलग-अलग होती है-

विकास तो शरीर के सभी अंगों और सभी मानसिक क्रियाओं में हर समय अविराम गति से होता रहता है, परन्तु समय-विशेष में सभी शारीरिक अंगों, उनकी क्रियाओं और मानसिक क्रियाओं का विकास एक गति से नहीं होता है। यही कारण है कि बच्चों की सभी विशेषताएँ एक साथ परिपक्व नहीं होती है। जन्म के बाद सिर की तुलना में पाँव अधिक तेजी से विकसित होता है। संवेदी विकास के अनुसार विभिन्न बौद्धिक योग्यताएँ भी अलग-अलग गति से विकसित होती हैं, जैसे-सर्जनात्मक कल्पना बाल्यावस्था में तेजी से बढ़ती है और युवावस्था तक परिपक्व हो जाती है जबकि तर्कणा धीमी गति से बहुत दिनों तक विकसित होती रहती हैं।

6. बच्चों के अधिकांश गुणों का विकास सह-सम्बन्धित होता है-
   पहले एक अवैज्ञानिक विश्वास फैला हुआ था कि विभिन्न गुणों के विकास में बच्चे भले ही एक-दूसरे से आगे पीछे हों परन्तु सभी गुणों के विकास का औसत बराबर होता हैं ऐसा विश्वास था कि यदि कोई बच्चा एक गुण में पीछे है तो दूसरे गुण में आगे होगा जिसके फलस्वरूप गुणों का औसत बराबर हो जाता है। यह विश्वास गलत सिद्ध हो चुका है। मुहसम ने अपने अध्ययनों से यह सिद्ध किया है कि यदि बच्चा किसी एक गुण में औसत से आगे है तो दूसरे गुणों में भी औसत से आगे ही रहेगा, अर्थात् गुणों के विकास में सह-सम्बन्ध होगा। यदि बच्चे की बुद्धि अधिक है तो उसकी भाषा, सामाजिकता, आदि भी अधिक ही होगी। हरलौक के अनुसार बुद्धिमान बच्चों का लैंगिक विकास बुद्धिहीन बच्चों से पहले होता है। मन्दबुद्धिवालों का शारीरिक विकास भी कुंठित रहता है। स्पष्ट हुआ कि बाल-विकास के विभिन्न क्षेत्रों के बीच घनात्मक सह-सम्बन्ध रहता है।
7. विकास की भविष्यवाणी की जा सकती है-
   लिखा जा चुका है कि विकास नियमित ढंग से होता है। जाति-विशेष के सभी व्यक्तियों के विकास में एकरूपता होती है। विकास की इन दोनों विशेषताओं के आधार पर यह भविष्यवाणी की जा सकती है। कि कोई बच्चा विकसित होकर कैसा होगा। इस ढंग की भविष्यवाणी बच्चों के शारीरिक विकास के सम्बन्ध में भी हो सकती है और मानसिक विकास के सम्बन्ध में भी, यद्यपि गेसेल के अनुसार मानसिक विकास की भविष्यवाणी शारीरिक विकास की भविष्यवाणी की तुलना में अधिक सही हुआ करती है।
8. प्रत्येक विकासात्मक अवस्था का अपना विशिष्ट गुण होता है-
   बाल-विकास विभिन्न अवस्थाओं से होकर गुजरता है। यद्यपि विकास एक अखण्ड और निरन्तर प्रक्रिया है और इसकी सभी अवस्थाएँ एक-दूसरे से अटूट ढंग से जुटे रहते हैं फिर भी इसकी प्रत्येक अवस्था की कुछ निश्चित विशेषताएँ होती है। इन्हीं विशेषताओं के कारण उन अवस्थाओं की पहचान होती है। उदाहरण के लिए, 2 वर्ष की आयु तक बच्चा अपने विभिन्न अंगों की क्रियाओं पर नियंत्रण प्राप्त करने, भाषा सीखने, वातावरण की विभिन्न अंगों की क्रियाओं पर नियंत्रण प्राप्त करने, भाषा सीखने, वातावरण की विभिन्न चीजों को

जानने पहचानने, आदि में लगा रहता है। इसके विपरीत 3 से 6 वर्ष के बीच वह अपने को जिक बनाने में व्यस्त रहता है। कुछ अवस्थाओं में बच्चे पूरी तरह अभियोजित रहते हैं और कुछ अवस्थाओं में उन्हें अभियोजन की कठिनाइयों का अनुभव होता है। बुहलर के अनुसार 15 महीने, 1,1/2 वर्ष, और 10 से 15 वर्ष की आयु में बच्चे अभियोजन की कठिनाइयों के कारण असंतुलित रहा करते हैं, अन्य दिनों में वे सामान्य रूप से संतुलित रहते हैं।

9. बहुत से व्यवहार जिन्हें अनुचित समझा जाता है विशेष आयु के लिए सामान्य और उचित है-

   व्यवहारों को हम प्रायः सामान्य और असामान्य नामक वर्गो में बाँटते हैं। यह वर्गीकरण व्यवहारों के स्वरूप से निर्धारित नहीं होता है बल्कि इस बात से निर्धारित होता है कि किस आयु में बच्चा वैसा व्यवहार कर रहा है। 2 वर्ष का बच्चा यदि बिस्तर पर पेशाब कर दे तो उसे अनुचित व्यवहार नहीं कहेंगे। यदि 10 वर्ष का बच्चा बिस्तर पर पेशाब करे तो इस व्यवहार को असामान्य और अनुचित कहेंगे। इसी प्रकार तुतलाना, दाँत से नाखून काटना, गालियाँ बोलना, जमीन पर लेटना, स्कूल से भागना, इत्यादि व्यवहार कम आयु के बच्चों के लिए उचित और सामान्य माने जाते हैं जबकि इन्हीं व्यवहारों को अधिक आयु के बच्चों के लिए अनुचित और असामान्य माना जाता है। वस्तुतः प्रत्येक आयु के बच्चों से कुछ सामाजिक प्रत्याशाएँ होती हैं और जो व्यवहार उन प्रत्याशाओं के अनुकूल होती हैं उन्हें उचित व्यवहार कहते हैं तथा जो व्यवहार उन प्रत्याशाओं के अनुकूल नहीं होती हैं उन्हें अनुचित व्यवहार कहते हैं।

10. सभी व्यक्ति विकास की सभी प्रमुख अवस्थाओं से होकर गुजरते हैं-

    विकास एक नियम और प्रणाली का अनुसरण करता है। इसी से लगी विकास की यह भी विशेषता है कि प्रत्येक व्यक्ति विकास की सभी अवस्थाओं से होकर गुजरता है। बड़ी कठिनाइयों के कारण विकास की गति कुछ समय के लिए धीमी हो सकती है, परन्तु यह सम्भव नहीं है कि किसी अवस्था को छोड़कर विकास उससे आगे की अवस्था में प्रवेश कर जाए। विकास की गति तेज भी हो सकती है परन्तु किसी अवस्था को छोड़ कर अगली अवस्था में प्रवेश नहीं कर सकती है। बैइने के बाद बच्चा खड़ा होगा और उसके बाद चलेगा, ऐसा नहीं होगा कि बैठने के बाद ही वह चलना आरम्भ कर दे। मानसिक क्रियाओं का विकास भी सभी अवस्थाओं से क्रमशः गुजरता है।

1.7 वृद्धि एवं विकास को प्रभावित करने वाले तत्व

बालक के विकास पर अनेक बातों का प्रभाव पड़ता है। कुछ तत्व उसके विकास में सहायक होते हैं और कुछ विकास को कुण्ठित या विलम्बित कर देते हैं। बालक के विकास पर जिन तत्वों का प्रभाव

पड़ता है उनमें से कुछ तो स्वयं उसके अन्दर विद्यमान होते हैं और कुछ उसके वातावरण में पाए जाते हैं। विकास को प्रभावित करने वाली कुछ बातों पर संक्षेप में नीचे प्रकाश डाला गया है-

बुद्धि

विकास पर जिन तत्वों का प्रभाव पड़ता है उनमें सबसे महत्वपूर्ण तत्व बालक की बुद्धि समझी जाती है। परीक्षणों और प्रयोगों से इस बात को प्रमाणित किया गया है कि तीव्र बुद्धि के बालकों का विकास मन्दबुद्धि के बालकों के विकास की अपेक्षा अधिक तेजी से होता है। इस बाम की पुष्अि दो-एक मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों से सरलतापूर्वक हो जायेगी। टरमन ने एक अध्ययन में पता लगाया कि बहुत प्रखर बुद्धि के बालकों में चलने की क्रिया 13 महीने और बोलने की क्षमता 11 महीने में प्रकट हुई जबकि बहुत दुर्बल बुद्धि के बालकों में ये क्रियाएँ क्रमशः 30 और 15 महीनों में उत्पन्न हुई। इसी प्रकार बुद्धि और काम-शक्ति के विकास में भी यही सम्बन्ध पाया जाता हे। प्रतिभाशाली और उत्कृष्ट बुद्धि के बालकों में काम-शक्ति का प्रथम उदय सामान्य बुद्धि के बालकों की अपेक्षा एक या दो वर्ष पूर्व ही हो जाता है। दुर्बल बुद्धि के बालकों में या तो काम-शक्ति परिपक्व ही नहीं होती या उसकी परिपक्वता काफी विलम्बित होती है। इन तथ्यों से स्पष्ट है कि बुद्धि बालक के विकास को काफी सीमा तक प्रभावित करती है।

यौन

बुद्धि की भाँति यौन-भेद का प्रभाव न केवल शारीरिक विकास पर ही पड़ता है बल्कि मानसिक गुणों का विकास भी इसके द्वारा प्रभावित होता है। जन्म के समय लड़के लम्बाई में लड़कियों से कुछ अधिक होते है परन्तु बाद में लड़कियों का विकास अधिक तेजी से होता है और लड़कों की अपेक्षा पहले ही परिपक्वता को प्राप्त हो जाती है। काम-शक्ति लड़कियों में लड़कों से एक या दो वर्ष पूर्व ही परिपक्व हो जाती हैं। दस-ग्यारह वर्ष की अवस्था में पहुँचकर समान आयु की लड़की लड़के की अपेक्षा कुछ लम्बी हो जाती है। बुद्धि-परीक्षणों से पता चलता है कि मानसिक विकास में भी लड़कियाँ लड़कों की अपेक्षा कुछ पहले ही मानसिक परिपक्वता को प्राप्त हो जाती हैं। ये सारी भिन्नताएँ यौन-भेद के कारण ही दिखलायी पड़ती है। अतः यह कहा जा सकता है कि बालक के विकास पर उसके पुरूष या स्त्री होने का प्रभाव पड़ता है।

आंतरिक ग्रन्थियाँ

मनुष्य के शरीर के भीतर बहुत सी अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ पाई जाती हैं इन ग्रन्थियों के कारण शरीर के भीतर विभिन्न प्रकार के रसों की उत्पत्ति होती रहती है। इन रसों पर अनेक प्रकार के शारीरिक व मानसिक विकास निर्भर होते हैं। उदाहरण के लिए, गले में स्थित पैराथायराइड ग्रन्थि कैल्शियम उत्पन्न करती है जिससे शरीर में हड्डियों का निर्माण होता हैं थायराइड ग्रंथि द्वारा आयोजित उत्पन्न किया जाता है जो शरीर के विकास के लिए आवश्यक है। सीने में स्थित थाइमस ग्रन्थि और मस्तिष्क में स्थित पीनियल ग्रन्थि की अति-क्रियाशीलता के कारण शरीर का सामान्य विकास रूक

जाता है और बालकों के भीतर बचपना बहुत दिनों तक बना रहता है। गोनड की मन्द क्रियाशीलता से तरूणावस्था आने में विलम्ब होता है और उसके अधिक क्रियाशील हो जाने से यौन परिपक्वता जल्दी आ जाती है।

जाति

बालकों के शारीरिक और मानसिक विकास पर जाति का भी बहुत गहरा प्रभाव पड़ते हुए देखा गया है। इस बात की पुष्टि अनेक उदाहरणों द्वारा की जा सकती है। निग्रो, भारतीय, नेपाली, भूटानी और चीनी बालकों का विकास यूरोपीय जातियों के बालकों की अपेक्षा धीरे-धीरे होता है। इस भिन्नता का कारण जातीय भिन्नता ही मानी जाती है। एक जाति के लोग दूसरी जाति के लोगों से न केवल शारीरिक गठन, वर्ण एवं आकृति में ही भिन्न होते हैं बल्कि जातीय भिन्नता का प्रभाव उनकी बौद्धिक, नैतिक तथा अन्य मानसिक क्षमताओं के विकास पर भी दूर तक पड़ता है।

पोषाहार

पोषाहार की गणना उन तत्वों में की जाती है जो बालक को बाहरी वातावरण से प्राप्त होते हैं। बुद्धि, यौन, ग्रन्थि और जाति के समान यह बालक के भीतर जन्म से नहीं विद्यमान होता। पोषाहार का प्रभाव शारीरिक व मानसिक क्रियाओं के विकास पर जिस सीमा तक पड़ता है सभी को विदित है। परन्तु बालक के विकास में भोजन की मात्रा का उतना महत्व नहीं होता जितना भोजन के भीतर पाए जाने वाले पोषक तत्वों जैसे विभिन्न विटामिन आदि का। शारीरिक दुर्बलता और दाँत तथा चर्म सम्बन्धी बीमारियों का कारण पौष्टिक भोजन का अभाव होता है।

रोग

शारीरिक बीमारियों और आघातों का शारीरिक विकास पर विशेष रूप से प्रभाव पड़ता है। बचपन की गंभीर बीमारियां जैसे टायफाइड आदि अथवा मस्तिष्क आघात का प्रभाव बहुत दिनों तक बना रहता है जिसके फलस्वरूप बालक उचित शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य नहीं प्राप्त कर पाता। इसके विपरीत जो बालक स्वस्थ रहता है उसका विकास सामान्य ढंग से चलता है और वह ठीक समय पर परिपक्वता प्राप्त कर लेता है।

घर का वातावरण

बालक के विकास पर वातावरण का वंशपरम्परा के समान ही प्रभाव पड़ता है। बालक को उसके घर का वातावरण अन्य वातावरणों से पहले ही प्राप्त हो जाता है। अतः उसका प्रभाव उसके विकास पर काफी दूर तक पड़ता है। जिस घर में बालक अन्य बालकों को नहीं पाता वहाँ उसका विकास अपेक्षाकृत मंदगति से चलता है। परन्तु इसके विपरीत जिस परिवार में कई बालक होते हैं वहाँ सबसे छोटे बालक को अनुकरण का पर्याप्त अवसर मिलता है और इसलिए उसका विकास अधिक तेजी के साथ होता है। अतः परिवार में किसी बालक का कौन सा स्थान है यह बात भी उसके विकास को प्रभावित करती है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. वृद्धि से तात्पर्य सम्पूर्ण जीवन-काल में आने वाले ___________ और____________ परिवर्तनों से है।
2. यह कथन किसका है- ''वृद्धि एक ऐसी जटिल एवं संवेदनशील प्रक्रिया है जिसमें प्रबल स्थिरता लाने वाले कारक केवल बाह्य ही नहीं वरन् आन्तरिक भी होते हैं जो बालकों के प्रतिरूप तथा उसकी वृद्धि की दिशा में संतुलन बनाये रखते हैं।''
3. हरलॉक के अनुसारविकास क्या है?
4. विकास का सम्बन्ध मूलतः व्यक्ति की _____________ से है।
5. किसी अवस्था विशेष में मानव शरीर के आकार, भार, कार्य-शक्ति आदि में होने वाले परिवर्तन को कहते हैं -

(क)	विकास	(ख)	वृद्धि
(ग)	ठहराव	(घ)	इनमें से कोई नहीं

1.7.1 परिपक्वता बनाम अधिगम

विकासात्मक, मनोविज्ञान के क्षेत्र में हुए अध्ययनों से यह स्पष्ट हो गया है कि विकास को प्रभावित करने वाले कारकों में दो कारक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण हैं -

1. परिपक्वता तथा
2. अधिगम या सीखना

परिपक्वता का सम्बन्ध बच्चों की आनुवंशिकता से है और सीखने का सम्बन्ध उनके वातावरण से है। विकास में आनुवंशिकता का महत्व कितना है और किस हद तक विकास वातावरण पर निर्भर करता है, यह एक बड़े विवाद का विषय रहा है। आज तक इस विवाद का संतोषजनक समाधान नहीं हो सका है। ऐसा लगकता है कि शारीरिक और मानसिक विशेषताएँ कुछ अंशों में परिपक्वता पर निर्भर करता हे। पहले परिपक्वता और अधिगम के अर्थ अच्छी तरह स्पष्अ करना लाभप्रद होगा।

परिपक्वता

प्राणी में जो विशेषताएँ आनुवंशिकता द्वारा जीन के माध्यम से प्राप्त होती हैं वे कालक्रम में स्वतः एक विशेषक्रम में और एक विशेष गति से प्रकट होती जाती हैं। आनुवंशिक गुणों के इसी क्रमिक और स्वतः विकसित होने की प्रक्रिया की परिपक्ता कहते हैं। बच्चों की जातिगत विशेषताएँ जैसे रेंगना, खिसकना, बैठना, चलना, इत्यादि परिपक्वता द्वारा ही विकसित होती हैं। परिपक्वता द्वारा विकसित होने वाले गुणों की विकास गति को प्रशिक्षण से बढ़ाया नहीं जा सकता है। यदि बच्चों की

स्वाभाविक गतियों, हाथ-पाँव चलाने, रेंगने खिसकने, आदि को रोक दें तो परिपक्वन से प्राप्त होने वाले ये गुण कुछ देर से विकसित होंगे।

अधिगम

कुछ विशेषताएं किसी-किसी व्यक्ति में होती हैं, सम्पूर्ण जाति में नहीं। ऐसी व्यक्तिगत विशेषताएं जो व्यक्ति के प्रयास से उत्पन्न होती हैं सीखने या अधिगम का परिणाम मानी जाती हैं। अभ्यास करके व्यवहारों में कुछ परिवर्तन लाने या नये व्यवहार प्राप्त करने को सीखना या अधिगम कहते हैं। लिखना-पढ़ना, साइकिल चलाना, अंग्रेजी बोलना, इत्यादि सीखने के दृष्टान्त हैं। यदि बच्चा प्रयास करने से योग्यता भी अधिक विकसित होगी। बच्चों के सीखने में सयानों द्वारा मार्गदर्शन की जरूरत होती हैं। किसी कार्य को स्वयं बार-बार दुहराकर या दूसरों का अनुकरण करके, या दूसरों के विचारों, विश्वासों मान्यताओं या अभिप्रेरकों को अपना कर भी सीखा जाता है।

परिपक्वता तथा अधिगम में भेद

परिपक्वता और अधिगम, दोनों ही बाल-विकास के आधार हैं। इन दोनों प्रक्रियाओं से बच्चों में नई-नई विशेषताएं उत्पन्न होती हैं और बच्चा विकसित होता जाता है। परन्तु इन दोनों सूत्रों से होने वाले विकास में कुछ भेद होते हैं जिन्हें नीचे स्पष्ट किया गया है।

1. परिपक्वता से होने वाले विकासात्मक परिवर्तनों के लिए बच्चे को किसी प्रकार के अभ्यास या प्रयास की आवश्यकता नहीं होती है। ये परिवर्तन स्वतः होते रहते हैं। इसके विपरीत सीखने के फलस्वरूप जो परिवर्तन होते हैं उनके लिए बच्चे को प्रयास करना पड़ता है। यदि बच्चे स्वयं प्रयास नहीं करें तो अधिगम से होने वाले विकासात्मक परिवर्तन नहीं होंगे।
2. परिपक्वता से बच्चों की शारीरिक विशेषताओं में परिवर्तन आते हैं, जैसे शरीर का आकार बड़ा होना, दाढ़ी मूंछ का निकलना, इत्यादि। इसके विपरीत सीखने के कारण बच्चों में व्यवहार सम्बन्धी परिवर्तन उत्पन्न होते हैं, जैसे- लम्बे वाक्य बोलना, नई भाषा सीखना, अधिक बच्चों से सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करना, इत्यादि।
3. परिपक्वता से होने वाले विकास का एक निश्चित समय होता है और उसकी एक निश्चित गति होती है। समय से पहले हमारी आपकी कोशिश से बच्चा खड़ा नहीं होगा और जब परिपक्वता एक निश्चित मात्रा में हो जाएगी तो बिना हमारे प्रयास के ही बच्चा स्वयं खड़ा होने लगेगा। दूसरे शब्दों में, परिपक्वन की गति को हम अपनी इच्छा से घटा-बढ़ा नहीं सकते। इसके विपरीत सीखने की गति घटाई-बढ़ाई जा सकती है। यदि 1 घंटा रोजाना प्रयास करने पर बच्चा 10 दिनों में साइकिल चढ़ना सीखता है तो 2 घंटा प्रयास करने पर कुछ कम ही दिनों में सीख जायेगा।
4. परिपक्वता से होने वाले परिवर्तनों से सम्पूर्ण जाति के सभी सदस्यों में समानताएँ उत्पन्न होती है। सभी बच्चे एक विशेष आयु में बैठने लगते हैं, लगभग एक ही आयु में खड़े होते हैं, इत्यादि। इसके विपरीत सीखने के कारण बच्चों में भेद उत्पन्न होते हैं। किसी ने चार वर्ष

की आयु में लिखना सीखा और किसी को उर्म भर लिखना नहीं आया चूंकि उसने नहीं सीखा। यदि बच्चों पर से सीखने के प्रभाव समाप्त कर दें तो बच्चों में केवल समानताएँ ही होंगी, वैयक्तिक भिन्नताएँ बहुत कम रह जाएंगी।

5. परिपक्वता का सम्बन्ध बच्चे की आनुवंशिकता से है। आनुवंशिक विशेषताएँ परिपक्वन से प्रकट होती हैं। इसके विपरीत अधिगम से वातावरण का परिचय मिलता है। वातावरण के उद्दीपनों के अनुरूप ही बच्चा सीखता है। अधिक उद्दीपनों वाले वातावरण में बच्चा अधिक सीखता है।
6. परिपक्वता सीखने की सीमाएँ निर्धारित करता है और उन्हीं सीमाओं के अन्दर सीखने के कार्य हो सकते हैं। प्रत्येक अधिगम के लिए परिपक्वन की एक निश्चित मात्रा का होना आवश्यक है। जब तक उंगलियाँ परिपक्व नहीं होंगी बच्चा कलम नहीं पकड़ सकेगा। अतः स्पष्ट है कि परिपक्वन पर ध्यान रखते हुए बच्चों को सिखाने का प्रयास होना चाहिए, अन्यथा असफलता होगी।
7. अधिगम (सीखना) विरले हील परिपक्वता की अन्तिम सीमा तक पहुंच पाता है। बच्चा ही नहीं, सभी प्राणी अपनी सम्पूर्ण योग्यता का इस्तेमाल नहीं करते हैं बल्कि उसका कुछ भाग बचा रखते हैं। यह एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है जिससे प्राण-रक्षा भी होती है। इस प्रवृत्ति का परिणाम यह होता है कि बच्चे अपनी परिपक्वता सीमा तक पहुँचने से पहले ही सीखने का कार्य छोड़ देते हैं। अतः बच्चा जितना वास्तव में सीखता है उससे अधिक सीखने की योग्यता अथवा परिपक्वता उसमें रहती हैं।
8. परिपक्वता से विकसित योग्यताएँ विभिन्न प्रकार के व्यवहार, कलाकौशल, इत्यादि के रूप में प्रकट हो सकें, इसके लिए आवश्यक है कि बच्चे को वातावरण के उद्दीपनों से प्रभावित किया जाए, अर्थात बच्चों को सीखने के अवसर दिए जाएं या उन्हें सिखाया जाए अन्यथा उनमें योग्यताओं के बावजूद कुशल व्यवहार विकसित नहीं हो सकेंगे। इस अर्थ में परिपक्वन और सीखना एक-दूसरे से बहुत अधिक संबन्धित हैं।

परिपक्वता और अधिगम केबीच अन्तःक्रिया

विकास के लिए परिपक्वन और अधिगम एक गाड़ी के दो चक्कों के समान हैं। बच्चों का पूरा विकास दोनों के तालमें ल से ही संभव है। जैसे-जैसे आयु बढ़ती जाती है परिपक्वन का महत्व क्रमशः कम होता जाता है। जन्म से पहले की अवस्था में विकास के लिए परिपक्वन का महत्व अधिक होता है यद्यपि, सौन्टैग (1966) के अनुसार, गर्भस्थ शिशु यदि अधिक क्रियाशील रहा तो जन्म के बाद भी वह अधिक सक्रिय रहता है और अपेक्षाकृत कम आयु में ही कौशल विकसित करने लगता है। अधिक सक्रिय होने का अर्थ है अधिक अभ्यास करना अथवा सीखना। जन्म के बाद की अवस्था में परिपक्वन और अधिगम के बीच और अधिक गहरा सम्बन्ध दिखाई देता है। बुहलर (1971) के अनुसार आनुवंशिक योग्यताओं और वातावरण की सामाजिक तथा सांस्कृतिक

शक्तियों के बीच क्रिया-प्रतिक्रिया के फलस्वरूप ही विकास होता है। कॉल्डवेल (1970) के अनुसार यदि गरीबी के कारण या माता-पिता द्वारा छोड़ दिए जाने के कारण या किसी अन्य कारण से बच्चे का वातावरण प्रचुर नहीं रह सका अर्थात उसमें उद्दीपनों का अभाव हो गया तो बच्चों की आनुवंशिक योग्यताएँ पूरी तरह विकसित नहीं हो पाती है। टेलर (1968) के अनुसार अनाथालयों में पलने वाले बच्चों का शब्द भण्डार छोटा होता है, उनका संबोधन कमजोर होता है तथा उनका ध्यान बहुत अधित भटकता रहता है जिससे वे अपने अनुभवों को संगठित नहीं कर पाते। इन सभी त्रुटियों का कारण यही होता है कि अनाथालयों का वातावरण बहुत दरिद्र अथवा उद्दीपनहीं न रहा करता है।

जेलाजो (1972) के अनुसार बच्चों को आरम्भ से पर्याप्त उद्दीपन, अवसर और प्रशिक्षण देने से विकास के लक्षण कुछ पहले प्रकट होते हैं। इसके विरूद्ध गौट्स (1972) का विचार है कि समय से पहले बच्चों को कुछ सिखाने का प्रयास करने से उनके स्वास्थ्य और सुरक्षा पर खतरा हो सकता है, जैसे-समय से पहले ही बच्चे को यदि बेसहारा खड़ा कर दें तो वह गिर सकता है जिससे उसके मुलायम सिर में घातक चोट लग सकती है। परन्तु मैकग्रौ (1939) के प्रयोग पर ध्यान दें तो स्पष्ट होगा कि समय से पहले अर्थात बिना परिपक्वन हुए प्रशिक्षण देने से भी कुछ लाभ होता है। मैक्गौ ने जौनी और जिम्मी नामक दो जुड़वें बच्चों को लिया। जौनी को चलने का प्रशिक्षण दिया और उस अवधि में जिम्मी को ऐसा अवसर नहीं दिया। जौनी को उस समय तो कोई लाभ नहीं हुआ परन्तु जीवन भर वह जिम्मी से अधिक फुरतीला रहा। ढ़ाई वर्ष की आयु में एक्सरे से पता चला कि जौनी के पाँव की पेशियाँ जिम्मी से अधिक विकसित थीं। 10 वर्ष की आयु में भी यह भेद वर्तमान था। फाउलर (1971) का विश्वास है कि प्रशिक्षण चाहे किसी भी आयु में दिया जाए बच्चे अवश्य लाभान्वित होते हैं और यह लाभ जटिल कार्यो में अधिक होता है।

स्किनर (1975) का विचार है कि विकास में परिपक्वन-अधिगम भेद करना ही गलत है। यदि यह कहा जाए कि अमुक विशेषता सीखने से विकसित हुई तो इसका यह अर्थ नहीं होता कि उस अवधि में परिपक्वन की प्रक्रिया रूकी हुई थी। जातिगत विशेषताएँ तो बिना सीखे ही विकसित होती हैं, व्यक्तिगत गुण सीखे जाते हैं और यह सीखना परिपक्वन पर ही आधारित होता है।

1.7.2 आनुवंशिकता बनाम वातावरण

व्यक्ति में पाए जाने वाले विभिन्न गुणों का विकास माँ-बाप, दादा-दादी, नाना-नानी, से प्राप्त जीनों द्वारा होता है या फिर घर-परिवार, आस-पड़ोस, स्कूल-कालेज आदि में उपलब्ध वातावरण के द्वारा होता है-यह आज भी एक विवाद का विषय है।

आनुवंशिकता को मानने वालों का कहना है कि व्यक्तित्व गुणों का विकास आनुवंशिक नियमों द्वारा होता है। इस सम्बन्ध में मेंडेल, गाल्टन, लैमार्क आदि के विचार महत्वपूर्ण हैं। में ण्डेल ने जहां माता और पिता से प्राप्त 23-23 क्रोमोजोम्स और उससे प्राप्त जीनों के विभिन्न संयोगों को गुणों के निर्धारण में सहायक माना वहीं गाल्टन ने संतान के गुणों के विकास में आनुवंशिकता को

सर्वाधिक शक्तिशाली कारक माना। लैमार्क ने भी दावा किया कि माता-पिता या अन्य पूर्वजों के अर्जित गुण भी सन्तान को आनुवंशिकता द्वारा मिलते हैं। परन्तु वातावरणवादी मानवीय गुणों के विकास की व्याख्या उसके समस्त वातावरण से प्राप्त प्रेरकों और अभिप्रेरणाओं के आधार पर करते हैं। अध्ययनों से स्पष्ट हो चुका है कि व्यक्ति को न सिर्फ जन्म के बाद का वातावरण बल्कि जन्म पूर्व का वातावरण भी उसके व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करना है। दरअसल जन्मपूर्व वातावरण के दो रूप होते हैं- आन्तरिक और बाह्य। आन्तरिक वातावरण से तात्पर्य वह वातावरण है जो गर्भस्थ शिशु के शरीर के अन्दर रहता है और बाह्य वातावरण से तात्पर्य गर्भाशय का सामान्य वातावरण है जिसमें गर्भस्थ शिशु पड़ा रहता है। आन्तरिक वातावरण के कई पक्ष होते है, जैसे बच्चे के शरीर की प्रत्येक कोशिका के अन्दर की स्थिति कैसी है, विभिन्न कोशिकाओं के बीच के सम्बन्ध कैसे है, इत्यादि। प्रत्येक कोशिका के अन्दर के वातावरण को आन्तराकोशिका वातावरण कहते हैं। विभिन्न कोशिकाओं के बीच के वातावरण को अन्तर्कोशिक वातावरण कहते हैं। शरीर के अन्दर के आन्तराकोशिक और अन्तर्कोशिक वातावरण लिए हुए बच्चा गर्भाशय के एक विशेष प्रकार के वातावरण में 280 दिनों तक रहता है। गर्भाशय के अन्दर का यह वातावरण बच्चे के लिए बाह्य वातावरण है यद्यपि यह माँ के शरीर के अन्दर है। जन्मपूर्व वातावरण प्रधानतः शरीर क्रियात्मक और रासायनिक स्वरूप का होता है। गर्भाशय के वातावरण में कुछ भौतिक अंगों का प्रभाव भी रहता है।

जन्मोत्तर वातावरण भी दो प्रकार का होता है-बच्चों के शरीर के अन्दर का वातावरण और शरीर के बाहर का वातावरण। बाहरी संसार की ठंडक, गर्मी, हवा, रोशनी, आदि बाह्य वातावरण के भौतिक अंग हुए। वातावरण में दूसरे लोगों की उपस्थिति, उनसे आपसी सम्पर्क, उनके बीच क्रिया-प्रतिक्रिया, इत्यादि सामाजिक वातावरण हुआ जो बच्चों के विकास को व्यापक रूप से प्रभावित करता है और जन्म के बाद ही ऐसे अंगों का प्रभाव आरम्भ होता है। बच्चों के व्यवहार विकास में सामाजिक वातावरण की महत्वपूर्ण भूमिका मानी गई है।

अब इस बात पर विचार करें कि बच्चों के विकास में आनुवंशिकता का महत्व अधिक है या वातावरण का। यदि एक अनपढ़ किसान से भी पूछें कि तुम्हारी खेती में बीज का महत्व अधिक है या मिट्टी, हवा, खाद, पानी, रोशनी, आदि का तो वह निश्चित ही उत्तर देगा कि बीज अच्छा नहीं है तो खाद-पानी की अच्छी से अच्छी व्यवस्था करने पर भी अच्छी फसल नहीं होगी। इसी प्रकार अच्छा से अच्छा बीज रहने पर भी यदि खाद-पानी की उचित व्यवस्था नहीं हो तो अच्छी फसल नहीं उग्रगी।यदि बीज भी उन्नत हो और अच्छी मिट्टी तथा पर्याप्त खाद और पानी हो तो अधिकतम उपज होगी। बाल-विकास का अध्ययन करने वाले विज्ञानियों में किसानों जितनी सच्चाई भी नहीं पायी गयी है। इनका एक दल गाल्टन के नेतृत्व में कहता है कि आनुवंशिकता ही विकास का एकमात्र निर्धारक है तो दूसरा दल वाट्सन के नेतृत्व में दावा करता है कि मुझे एक दर्जन सामान्य बच्चे दो जिन्हें हम केवल वातावरण के हेर-फेर से व्यापारी, वकील, डाक्टर, जो चाहें बना देंगे, यहां

तक कि चोर-डाकू भी बना दे सकते हैं। ऐसे ही एकतरफा दावों के कारण आनुवंशिकता प्रति वातावरण का विवाद खड़ा हुआ है।

विकास में आनुवंशिकता और वातावरण के महत्व निर्धारित करने में एक बड़ी कठिनाई यह है कि ये दोनों अंग एक दूसरे से एक क्षण के लिए भी अलग नहीं होते। व्यक्ति का एक क्षण भी ऐसा नहीं बीतता जिसमें वह केवल आनुवंशिकता के प्रभाव में हो और वातावरण रूका हुआ हो या केवल वातावरण के प्रभाव में हो और आनुवंशिकता रूकी हुई हो। इस कठिनाई के बावजूद कुछ ऐसे साधन हैं जिनसे इस विषय पर प्रकाश पड़ता है। आनुवंशिक गुण व्यक्ति के प्रयास बिना ही विकसित होते हैं जबकि वातावरण से अर्जित गुणों के लिए व्यक्ति को प्रयास करना पड़ता है। अब कुछ अध्ययनों के प्रकाश में इस विवाद को देखें।

केलौग एवं केलौग ने अपने 10 महीने के बेटे डोनैल्ड को गूआ नामक साढ़े सात महीने की माद चिम्पैंजी के साथ 9 महीने तक पोसा और दोनों को यथासंभव एक वातावरण में एक साथ रखा। जितनी बातें डोनैल्ड को सिखाई गयीं उतनी ही बातें गूआ को भी सिखाई गयीं। कपड़े पहनना, दो पाँव पर चलना, टेबुल पर खाना, कुछ मौखिक आदेशों को समझना, इत्यादि, गूआ सीख गयी, परन्तु उसे बोलना कभी नहीं आया। डोनैल्ड की भाषा और बौद्धिक योग्यता क्रमशः बढ़ती ही गयी। स्पष्ट हुआ कि गूआ की आनुवंशिकता में भाषा-योग्यता नहीं थी इसलिए वह बोल नहीं सकी। आनुवंशिकता के कारण ही गूआ का बौद्धिक विकास पहले ही रूक गया और डोनैल्ड आगे बढ़ता गया।

केलौग और केलौग ने एक पशु को मानव-समाज में पाला परन्तु उसे मानव-भाषा नहीं दे सके।डा0 इटार्ड ने एक ऐसे मानव बच्चे का अध्ययन किया जो पशु वातावरण में पाला गया। यह बच्चा ऐवेरौन के जंगल में पाया गया था, इसी कारण उसे ऐवेरौन का जंगली लड़का कहते हैं। यह बच्चा पशुओं की बोली बोलता था, चारों हाथ-पाँव पर चलता और कच्चा गोश्त खाता थां प्रयास के बावजूद उसमें बोलने या दूसरे बौद्धिक कार्य करने की योग्यता विकसित नहीं हो सकी। यह बच्चा अधिक दिनों तक मानव समाज में जीवित भी नहीं रह सका। कमला और बिमला नामक दो बच्चियाँ भारत के जंगलों में भी मिलीं जिनका पालन पोषण आरम्भ से ही पशुओं ने किया था। जिस समय ये बच्चियाँ मिलीं उनमें सारे लक्षण पशुओं जैसे थे। ये बच्चियाँ भी मानव समाज में अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सकी। पशु वातावरण में पाले गये मानव बच्चों के अध्ययन से पता चलता है कि कुछ विशेषताएँ जिन्हें हम मानव-विशेषता कहते हैं वे मानव-समाज की देन हैं, मानव आनुवंशिकता की नहीं। ये दोनों अध्ययन वातावरण के महत्व को दर्शाते हैं।

गाल्टन बहुत बड़े आनुवंशिकतावादी थे। उन्होंने परिवार के विभिन्न व्यक्तियों और विभिन्न परिवारों के व्यक्तियों के बीच समानता का अध्ययन किया। उनके अध्ययनों से पता चला कि एक परिवार के विभिन्न व्यक्तियों के अन्दर शरीर के रंग-रूप तथा मानसिक योग्यताओं की जितनी समानता होती है उतनी समानता दो परिवार के व्यक्तियों के बीच नहीं होती है। उन्होंने इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध साहित्यिक,

दर्शनशास्त्री, विज्ञानी तथा राजनीतिज्ञ परिवारों के 977 व्यक्तियों का अध्ययन करके हेरेडिटरी जीनियस (1869) नामक पुस्तक प्रकाशित की जिसमें दावा किया कि आनुवंशिकता की समानता के कारण बड़े बाप के बेटे भी महान होते हैं। उनका विश्वास था कि आनुवंशिकता के कारण में धावी परिवार के सभी लोग में धावी होते हैं। यह ठीक है कि गाल्टन ने जिन बड़े लोगों का अध्ययन किया उनकी सन्तान भी ऊँचे पदों पर थी, परन्तु प्रश्न यह उठता है कि क्या केवल आनुवंशिकता के कारण बड़ों के बच्चे बड़े हुए या इसमें वातावरण का भी कुछ योगदान था। बड़े लोगों के परिवार का वातावरण भी विकसित हो जाता है, बड़े लोगों से उनके सम्पर्क भी हो जाते हैं जिससे ऊँचेपदों पर पहुँचने में सहायता मिलती है, इत्यादि। यह बिल्कुल संभव है कि हक्सले परिवार का बच्चा किसी गरीब के घर पलता तो वह भी साधारण व्यक्ति हो जाता और गरीब परिवार का बच्चा हक्सले-परिवार में पलता तो वह भी हक्सले के बेटों के समान बड़ा विज्ञानी और महान हो जाता।

गाल्टन ने कलाकार परिवार के बच्चों की तुलना सामान्य परिवार के बच्चों से की। कलाकार माता-पिता के 64 प्रतिशत बच्चे कलाकार पाए गये जबकि सामान्य परिवार के केवल 21 प्रतिशत बच्चे कलाकार मिले। इस भेद की व्याख्या भी गाल्टन ने आनुवंशिकता के भेद के आधार पर की जो स्पष्टतः गलत है क्योंकि यह भेद तो वातावरण की देर मालूम होता है।

गोडार्ड की रिपोर्ट है कि कैलिकैक नामक एक सैनिक ने एक बुद्धिहीन स्त्री से शादी की जिससे हुए अधिकांश बच्चे बुद्धिहीन, अपराधी और कदाचारी हुए। कैलिकैक ने एक शादी एक सामान्य बुद्धिवाली महीला से भी की थी जिससे हुए अधिकांश बच्चे सामान्य थे। गोडार्ड ने कैलिकैक की दोनों पत्नियों की सन्तान के भेद की व्याख्या आनुवंशिकता भेद के आधार पर की जो सही नहीं है। बुद्धिहीन महिला ने खराब वातावरण बनाया होगा जिसमें पलने वाले बच्चे भी खराब हो गये होंगे।

बिनशिप की रिपोर्ट है कि एडवर्ड नामक एक व्यक्ति की एक पत्नी तीव्र बुद्धिवाली थी और दूसरी पत्नी साधारण बुद्धिवाली। बुद्धिमान पत्नी से जन्मे सभी बच्चे ऊँचे और प्रतिष्ठित पदवाले हुए जबकि कम बुद्धिवाली पत्नी से हुए सभी बच्चे साधारण और नीचे व्यक्ति ही हुए। बिनशिप ने भी निष्कर्ष निकाला कि बच्चों के इन दोनों समूहों का भेद दोनों माताओं की बुद्धि के भेद के कारण हुआ। ऐसा ही निष्कर्ष गोडार्ड का था जिस पर हम ऊपर संदेह कर चुके हैं।

एक अध्ययन डुगडेल एवं एस्टाब्रूक ने किया। ज्यूक्स नामक एक अमरीकी मछुआ साधारण बुद्धि का आदमी था जिसने एक भ्रष्ट स्त्री से विवाह किया। ज्यूक्स और उसकी भ्रष्टा पत्नी से चले परिवार के 1000 बच्चों में 30 प्रतिशत तो बचपन में ही मर गये, 31 प्रतिशत भिखारी हो गये, 24 प्रतिशत सदा बीमार रहे और 13 प्रतिशत किसी न किसी अपराध में जेल गये। इनमें से केवल 20 प्रतिशत ने सामान्य ढंग से जीवन बिताया। डुगडेल ने भी ज्यूक्स परिवार के बच्चों की यह दुर्गति माँ की दूषित आनुवंशिकता के कारण माना, परन्तु इसमें भी वातावरण के प्रभाव को अवैज्ञानिक ढंग से दबाया गया है।

गाल्टन के प्रिय विद्यार्थी पीयरसन ने 2000 भाई-बहनों का अध्ययन करके निष्कर्ष दिया कि उनकी शारीरिक और मानसिक समानता का आधार उनकी आनुवंशिकता थी। गोडार्ड ने मन्द बुद्धिवाले 300 परिवारों का अध्ययन करके निष्कर्ष दिया कि इन परिवारों के 77 प्रतिशत दोष आनुवंशिकता के दोषों के कारण थे। इसके विपरीत डौल के अनुसार केवल 33 प्रतिशत बुद्धिमन्दता दूषित आनुवंशिकता के कारण उत्पन्न होती है।

प्रायः बुद्धि को आनुवंशिकता की देन माना जाता है जो सही नहीं है। टर्मन के अनुसार बुद्धि आनुवंशिकता की देन है जबकि गोर्डन के अनुसार नाव पर रहने वाले मछुओं की बुद्धि अच्छा वातावरण नहीं मिलने के कारण घट गयी और उनकी बुद्धि का पिछड़ापन आयु बढ़ने के साथ और बढ़ता ही गया। प्रेसी एर्व थौमस ने देखा कि गाँव में रेने वाले बच्चों की तुलना में शहर के बच्चे कुछ अधिक बुद्धिमान होते हैं। यह सिद्ध हो चुका है कि बुद्धि के विकास में आनुवंशिकता का प्रमुख स्थान है परन्तु उसमें कुछ हाथ वातावरण का भी है।

आयोवा विश्वविद्यालय में अनाथालय में रहने वाले बच्चों का अध्ययन हुआ। इन बच्चों के दो वर्ग बनाए गये, एक को लिखने पढ़ने की सुविधाएँ दी गयीं और दूसरे वर्ग को वंचित रखा गया। सुविधाओं वाला वर्ग बुद्धि में देसरे वर्ग से कुछ ऊपर था। शिकागो में भी ऐसा ही अध्ययन हुआ और निष्कर्ष आयोवा-अध्ययन जैसे ही प्राप्त हुए। इन सभी अध्ययनों से स्पष्अ होता है कि वातावरण की सुविधाओं से बुद्धि में कुछ वृद्धि अवश्य होती है। व्यक्तित्व के विकास में आनुवंशिकता और वातावरण की भूमिका कुछ भिन्न दिखाई देती है। अभिन्न यमजों की आनुवंशिकता बिल्कुल एक होती है। न्युमैन ने में बुल और में री नामक दो बहनों का अध्ययन किया जो अभिन्न यमजा थीं और दा वातावरण में पाली गयी थीं। दोनों के स्वभाव और व्यक्तित्व में काफी अन्तर पाया गया। न्युमैन और उनके सहयोगियों ने रेमण्ड और रिवार्ड नामक दो भाइयों में शारीरिक विशेषताओं और बौद्धिक योग्यताओं में काफी समानता थी किन्तु उनके स्वभाव और व्यक्तित्व में बड़े भेद थे। अतः व्यक्तित्व विकास में वातावरण की स्पष्ट भूमिका होती है।

सबसे बड़े वातावरणवादी, वाट्सन ने भी 'सामान्य बच्चा' ही माँगा जिन्हें वे वातावरण के हेर-फेर से व्यापारी, वकील और इंजीनियर या चोर, डाकू और हत्यारा बना सकते थे। अतः छिपकर उन्होंने भी आनुवंशिकता के महत्व को स्वीकारा। वाट्सन जीवन भर प्रयास करके भी केलॉग की गूआ को दो शब्द भी बोलना नहीं सिखा सकते थे। स्पष्ट हुआ कि विकास को आनुवंशिकता द्वारा निर्धारित सीमाओं से नहीं ले बाहर जा सकते हैं चाहे वातावरण कितना ही अच्छा क्यों न कर दिया जाए।

आनुवंशिकता-वातावरण विवाद में कुछ राजनीतिक दृष्टिकोणों का भी हाथ रहा है। जो लोग पूँजीवादी दृष्टिकोण के हैं वे आनुवंशिकता की प्रधानता मानते हैं। उनके अनुसार भगवान ने ही आनुवंशिकता के माध्यम से किसी को अधिक और किसी को कम योग्यता दी है जिस कारण समाज में कोई ऊँचा और कोई नीचा है। इसके विपरीत समाजवादी दृष्टिकोण वाले यह मानते हैं कि योग्यताएँ तो सबों की समान हैं, केवल समाज में उपलब्ध बसमान सुविधाओं के कारण छोटे-बड़े

का भेद उत्पन्न होता है। दोनों दृष्टिकोण अपने अन्दर आंशिक सत्यता ही रखते हैं। विकास की मात्रा आनुवंशिकता × वातावरण × समय के बराबर होती है। यदि इन तीनों अंगों में से किसी को भी शून्य कर दें तो गुणनफल अर्थात विकास शून्य हो जाएगा।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

6. परिवार एवं विद्यालय मानव विकास को प्रभावित करने वाले कारक हैं-

   (क) आनुवंशिकता से सम्बद्ध (ख) वातावरण से सम्बद्ध

   (ग) दोनों से सम्बद्ध (घ) इनमें से किसी से सम्बद्ध नहीं

7. निम्नलिखित कथनों में सही/गलत बतायें -
   i. विकास के पैटर्न का पूर्व कथन नहीं हो सकता।
   ii. विकास का एक निश्चित क्रम होता है।
   iii. विकास विशिष्ट से सामान्य की ओर होता है।
   iv. विकास एक सतत प्रक्रिया है।
   v. विकास में वैयक्तिक भिन्नता पाई जाती है।
8. विकास को प्रभावित करने वाले दो महत्वपूर्ण कारकों के नाम लिखिए।

1.8 सारांश

वृद्धि और विकास वैसे तो पर्यायवाची शब्द है, परन्तु मानव विकास क परिप्रेक्ष्य में दोनों पदों में थोड़ी भिन्नता है।

वृद्धि से तात्पर्य मानव शरीर के विभिन्न अंगों के आकार, भार तथा प्रकार्य एवं शक्तियों में होने वाली वृद्धि से है जबकि विकास से तात्पर्य गर्भाधान से लेकर मृत्युपर्यन्त होने वाले परिवर्तनों के प्रगतिशील क्रम से है जिसके कारण व्यक्ति में नवीन विशेषताएं एवं योग्यताएं प्रकट होती है।

मानव विकास एवं वृद्धि जहां परिपक्वता एवं अधिगम का प्रतिफल है वहीं आनुवंशिकता एवं पर्यावरण का भी इसके निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसके अतिरिक्त मानव का विकास उसकी बुद्धि, लिंग, अन्तःस्रावी ग्रंथियां, पोषाहार, प्रजाति, जन्म-क्रम आदि से भी प्रभावित होता है।

1.9 शब्दावली

1. **वृद्धिः** बच्चों में उम्र के अनुसार होने वाला शारीरिक आकार, भार, हड्डियों, मांसपेशियों, दांत, तंत्रिका-तंत्र आदि का समुचित विकास।

2. **विकास**: जन्म से लेकर मृत्यु तक होने वाला क्रमिक तथा संगत परिवर्तनों का उत्तरोत्तर क्रम।

1.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

1. भौतिक, दैहिक
2. गेसेल
3. ''विकास प्रगतिशील परिवर्तनों का एक नियमित, क्रमबद्ध एवं सुसम्बद्ध पैटर्न है।''
4. मानसिक क्रियाओं
5. वृद्धि
6. ख वातावरण से सम्बद्ध
7. सही/गलत
   i. गलत
   ii. सही
   iii. गलत
   iv. सही
   v. सही
8. विकास को प्रभावित करने वाले दो महत्वपूर्ण कारकों के नाम हैं- परिपक्वता तथा अधिगम या सीखना

1.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शिक्षा मनोविज्ञान-अरूण कुमार सिंह - भारती भवन प्रकाशन, पटना
2. शिक्षा मनोविज्ञान एवं प्रारम्भिक सांख्यिकी-लाल एवं जोशी - आर.एल. बुक डिपो में रठ
3. बाल मनोविज्ञान: विषय और व्याख्या - अजीमुर्रहमान - मोतीलाल बनारसीदास पटना
4. मानव विकास का मनोविज्ञान - रामजी श्रीवास्तव
5. आधुनिक विकासात्मक मनोविज्ञान - जे.एन.लाल
6. विकासात्मक मनोविज्ञान (हिन्दी अनुवाद) - ई.बी. हर्लोक

1.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विकास से आप क्या समझते हैं? वृद्धि एवं विकास में अन्तर स्पष्ट करें।
2. मानव विकास एवं वृद्धि को प्रभावित करने वाले तत्वों की विवेचना करें।।
3. मानव विकास में निम्नलिखित की भूमिका पर प्रकाश डालें -
   (अ) परिपक्वता एवं अधिगम
   (ब) वंशानुक्रम एवं वातावरण

इकाई–2 मानव विकास की अवस्थाएं
Stages of Human Development

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 मानव विकास की अवस्थाएं
2.4 अवस्था विशेष की विशेषताएं
  2.4.1 पूर्व बाल्यावस्था
  2.4.2 उत्तर बाल्यावस्था
  2.4.3 किशोरावस्था
2.5 अवस्था विशेष के विकासात्मक कार्य
  2.5.1 पूर्व बाल्यावस्था के लिए विकासात्मक कार्य
  2.5.2 बाल्यावस्था के लिए विकासात्मक कार्य
  2.5.3 किशोरावस्था के लिए विकासात्मक कार्य
2.6 सारांश
2.7 शब्दावली
2.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर
2.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने मानव विकास एवं वृद्धि का अध्ययन किया तथा मानव विकास को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों के संबन्ध में जानकारी प्राप्त की।

प्रस्तुत इकाई में आप मानव विकास की विभिन्न अवस्थाओं का ज्ञान प्राप्त करेंगे तथा विभिन्न अवस्थाओं की विशेषताओं एवं उस अवस्था विशेष में सम्पादित विकासात्मक कार्यो का अध्ययन कर सकेंगे।इस इकाई के अध्ययन से आपको मानव विकास के विभिन्न अवस्थाओं को जानने-

समझने तथा उनकी विशेषताओं एवं विकासात्मक कार्यो के बारे में जानकारी प्राप्त करने की पर्याप्त सामग्री मिल पाए गी।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप -

1. मानव विकास के विभिन्न अवस्थाओं में अन्तर समझ सकेंगे।
2. विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तनों को रेखांकित कर सकेंगे।
3. मानव विकास की विभिन्न अवस्थाओं की विशेषताओं की व्याख्या कर सकेंगे।
4. विभिन्न अवस्थाओं के विकासात्मक कार्यो का वर्णन कर सकेंगे।

2.3 मानव विकास की अवस्थाएं

मनुष्य के सम्पूर्ण विकास काल को कई अवस्थाओं में बाँटा गया है। वैज्ञानिक अध्ययनों से पता चलता है कि गर्भकाल और परिपक्वता के बीच की प्रत्येक अवस्था में कुछ ऐसी प्रमुख विशेषतायें उत्पन्न हो जाती हैं जिनके कारण एक अवस्था दूसरी अवस्था से भिन्न दिखाई पड़ने लगती है। विकासात्मक अवस्थाओं को लेकर मनोवैज्ञानिकों के बीच मतभेद है गर्भाधान से मृत्यु तक का विकासात्मक अवस्थाओं को निम्नलिखित आठ भागों में बाँटा जा सकता है-

	विकास की अवस्था	**जीवन अवधि**
1	गर्भकालीन अवस्था या गर्भावस्था	गर्भाधान से लेकर जन्म तक
2	शिशुकाल या शैशवावस्था	जन्म से लेकर 3 वर्ष की अवस्था
3.	बाल्यकाल या बाल्यावस्था a) पूर्व- बाल्यावस्था b) उत्तर - बाल्यावस्था	3 वर्ष से लेकर 12 वर्ष तक 4 वर्ष से 6 वर्ष तक 7 वर्ष से 12 वर्ष तक
4	किशोरावस्था	13 से 19 वर्ष तक
5.	युवावस्था	20 से 25 वर्ष तक
6.	प्रौढ़ावस्था	26 से 60 वर्ष तक
7.	वृद्धावस्था- जीवन की अंतिम अवस्था होती है	इस अवस्था का प्रारम्भ 60 वर्ष के बाद

गर्भकालीन अवस्था

यह अवस्था गर्भाधान के समय से लेकर जन्म के पहले की अवस्था है। इस अवस्था की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि अन्य अवस्थाओं की अपेक्षा इसमें विकास की गति अधिक तीव्र होती है। किन्तु जो परिवर्तन इस अवस्था में उत्पन्न होते हैं वे विशेष रूप से शारीरिक होते हैं। समस्त शरीर-रचना, भार, आकार में वृद्धि तथा आकृतियों का निर्माण इसी अवस्था की घटनायें होती हैं।

सम्पूर्ण गर्भकालीन विकास को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से तीन अवस्थाओं में विभाजित किया जा सकता है। गर्भाधान से लेकर दो सप्ताह की अवस्था, इस अवस्था में प्राणी अंडे के आकार का होता है। इस अंडे में भीतर तो कोष्ठ-विभाजन की क्रिया होती रहती है परन्तु ऊपर से किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं दिखलाई पड़ता। लगभग एक सप्ताह तक यह अण्डाकार जीव गर्भाशय में तैरता रहता है जिसके कारण इसे कोई विशेष पोषाहार नहीं मिल पाता। परन्तु दस दिन बाद यह गर्भाशय की दीवार से सट जाता है और माता के शरीर पर भोजन के लिए आश्रित हो जाता है। तीसरे सप्ताह से लेकर दूसरे महीने के अन्त तक गर्भकालीन विकास की दूसरी अवस्था होती है जिसे भ्रूणावस्था कहा जाता है। इस अवस्था के जीव को भ्रूण कहते हैं। विकास की गति बहुत तीव्र होने के कारण इस अवस्था में भ्रूण के भीतर अनेक परिवर्तन हो जाते हैं। शरीर के प्रायः सभी मुख्य अंगों का निर्माण इसी अवस्था में होता है। दूसरे महीने के अन्त तक भ्रूण की लम्बाई सवा इंच से दो इंच तक तथा उसका भार लगभग दो ग्राम हो जाता है। परन्तु भ्रूण का स्वरूप वैसा नहीं होता जैसा नवजात शिशु का होता है। इस अवस्था में सिर का आकार अन्य अंगों के अनुपाव में बहुत बड़ा होता है। इस अवस्था में सिर का आकार अन्य अंगों के अनुपात में बहुत बड़ा होता है। कान भी सिर से काफी नीचे स्थित होते हैं नाक में भी केवल एक ही छिद्र होता है और माथे की चौड़ाई आवश्यकता से अधिक होती है। भ्रूण का निर्माण तीन परतों से होता है। बाहरी परत को एक्टोडर्म, बीच वाली परत को में सोडर्म और आन्तरिक परत को एण्डोडर्म कहा जाता है। इन्हीं तीन परतों से शरीर के विभिन्न अंगों का निर्माण होता है। बाहरी परत से त्वचा, नाखून, दाँत, बाल तथा नाड़ी मण्डल का निर्माण होता है। इनमें से मस्तिष्क का विकास तो बड़ी तेजी से होता है। चार सप्ताह की अवस्था में मस्तिष्क के विभिन्न भागों को पहिचाना जा सकता है। बीच की परत से त्वचा की भीतरी परत तथा मांस-पेशियों का निर्माण होता है। इसी प्रकार आन्तरिक परत से फेफड़े, यकृत, पाचन क्रिया से सम्बन्धित अंग तथा विभिन्न ग्रन्थियाँ बनती है।

गर्भकालीन विकास की तीसरी और अन्तिम अवस्था गर्भस्थ शिशु की अवस्था कही जाती है। यह तीसरे महीने के प्रारम्भ से जन्म लेने के पूर्व तक की अवस्था होती है। इस अवस्था को निर्माण की अवस्था नहीं बल्कि विकास की अवस्था समझना चाहिए, क्योंकि भ्रूणावस्था में जिन-जिन अंगों का निर्माण हो गया होता है उन्हीं का विकास इस अवस्था में होता है। प्रत्येक महीने गर्भस्थ शिशु के आकार तथा भार में वृद्धि होती रहती है। पाँच महीने में इसका भार दस औंस तथा लम्बाई दस इंच होती है। आठवें महीने में शिशु वजन में पाँच पौंड का हो जाता है और लम्बाई अठ्ठारह इंच तक हो

जाती है। जन्म के समय शिशु का भार सात-साढ़े-सात पौंड तथा लम्बाई बीस इंच होती है। इस अवस्था में हृदय, फेफड़े, नाड़ी, मण्डल कार्य भी करने लगते हैं। यहाँ तक कि यदि सातवें महीने में ही बच्चा पैदा हो जाए तो वह जीवित रह सकने योग्य होगा।

शैशवावस्था

जन्म से लेकर तीन वर्षों की अवस्था को शैशव की अवस्था कहा जाता है। इस आयु के बालक को नवजात शिशु भी कहते हैं। वैज्ञानिक अनुसन्धानों से पता चलता है कि इस अवस्था में बालक के भीतर कोई विशेष परिवर्तन नहीं दिखलाई पड़ता। जन्म लेने के बाद जिस नये वातावरण में बालक अपने को पाता है उसे समझना और उसमें अपने को समायोजित करना उसके लिए आवश्यक होता है। अतः इस अवस्था में समायोजन की प्रक्रिया के अतिरिक्त बालक के भीतर किसी विशेष मानसिक या शारीरिक विकास के लक्षण नहीं दिखलाई पड़ते।

बाल्यावस्था

जैसा पहले अध्याय में बताया जा चुका है, विकासात्मक मनोविज्ञान में 'बाल्यावस्था' का प्रयोग प्रायः उसके व्यापक अर्थ में किया जाता है। व्यापक अर्थ में बाल्यावस्था गर्भकाल से परिपक्वता तक के जीवन-प्रसार को कहा जाता है। परन्तु जब हम विकास की विभिन्न अवस्थाओं की चर्चा करते हैं तो 'बाल्यावस्था' का प्रयोग संकुचित अर्थ में ही होता है। उस सन्दर्भ में बाल्यावस्था अन्य अवस्थाओं की भाँति विकास की एक विशेष अवस्था समझी जाती है जिसमें कुछ प्रमुख मानसिक और शारीरिक विशेषताएँ आविर्भूत होती हैं।

अपने संकुचित अर्थ में बाल्यावस्था तीन से बारह वर्ष की अवस्था होती है। परंतु अध्ययन की सुविधा के लिए इस लम्बी अवस्था को पूर्व-बाल्यावस्था सात से बारह वर्ष तक मानी जाती है। निरन्तर वातावरण के सम्पर्क में रहने के कारण इस अवस्था में बालक उससे भली-भाँति परिचित हो जाता है और उस पर यथासम्भव नियन्त्रण करने लगता है। वातावरण में अपने को समायोजित करने के लिए वह नित्य प्रयास करता रहता है। इस प्रकार का समायोजन स्थापित करना ही बाल्यावस्था की प्रमुख समस्या होती है और इस प्रक्रिया में उसकी जिज्ञासा की प्रवृत्ति अपनी चरम सीमा पर पहुँचकर कार्य करती है। समूह-प्रवृत्ति इस अवस्था की एक दूसरी प्रमुख विशेषता मानी जाती है। इसी प्रवृत्ति के फलस्वरूप बालक के भीतर सामाजिक भावनाओं का विकास प्रारम्भ होता है और घर के भीतर की सीमित वातावरण से ऊबकर वह बहिर्मुखी प्रवृत्तियों का प्रदर्शन करने लगता है।

सामूहिक परिस्थितियों में पढ़कर बालक में अनुकरण, खेल, सहानुभूति तथा निर्देशग्राहकता का विकास होने लगता है। उसकी अधिकांश नैतिकता समूह द्वारा ही नियंत्रित और निर्देशित होती है। परन्तु अभी उससे उच्च नैतिक आचरण और आदर्श नैतिक निर्णय की आशा नहीं की जा सकती। जहाँ तक बाल्यावस्था में होने वाले सामाजिक विकास का प्रश्न है, बालक के भीतर सहयोग, सहानुभूति और नेवृत्व की भावनाओं के साथ ही अवज्ञा, स्पर्धा, आक्रामकता तथा द्वन्द्व आदि का

विकास शीघ्रता से होने लगता है। यह सारी बातें बालक के सामाजिक समायोजन तथा उसके मस्तिष्क के उचित विकास के लिए आवश्यक हैं, क्योंकि इन्हीं परिस्थितियों में पड़कर वह आत्मनिर्भर होना सीखता है। परन्तु द्वन्द्व और आक्रामकता के विकास के बावजूद भी किशोरावस्था की तुलना में बाल्यावस्था स्थिरता और शांति की अवस्था समझी जाती है। इस अवस्था में बालक घर के भीतर के संकुचित वातावरण से निकलकर पाठशाला और मित्रमण्डली में समय व्यतीत करता है। अतः उसे जीवन की अनेक वास्तविकताओं को भली- भाँति समझने का अवसर मिलता है। वह कठोरताओं और अभावों को चुपचाप सहन कर लेता है, किशोरों की भाँति क्रांतिकारी भावनाओं का प्रदर्शन नहीं करता।

वयःसन्धि

वयःसन्धि वास्तव में बाल्यावस्था और किशोरावस्था को मिलाने वाली अवस्था मानी गयी है। यद्यपि इस अवस्था का विस्तार बहुत छोटा होता है फिर भी इसका कुछ भाग बाल्यावस्था में और कुछ किशोरावस्था में पड़ जाता है। इस अवस्था की सबसे प्रमुख विशेषता काम-शक्ति का प्रथम उदय और तत्संबंधी इन्द्रियों की परिपक्वता मानी जाती है। चूँकि यौन-भिन्नता और व्यक्तिगत भिन्नता के कारण काम-शक्ति का प्रथम उदय और जनेन्द्रिय की परिपक्वता भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में अलग-अलग आयु में पायी जाती है, इसलिए यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि वयःसन्धि किस वर्ष से शुरू होती है। बालिकाओं में यह अवस्था सामान्यतः ग्यारह से तेरह वर्षो के बीच शुरू होती है। बालकों में इसके एक वर्ष बाद। इस अवस्था में होने वाले यौन-सम्बन्धी विकासों के कारण बालक अपने संवेगात्मक और सामाजिक नियन्त्रण को प्रायः खो बैठता है। अन्य शारीरिक और मानसिक विकासों की गति इस अवस्था में बड़ी तीव्र होती है।

किशोरावस्था

किशोरावस्था बाल-काल की अन्तिम अवस्था होती है। सम्पूर्ण बाल-विकास में इस अवस्था का बहुत ही महत्व समझा जाता है। इस अवस्था का सविस्तार उल्लेख एक अलग अध्याय में किया गया है। अतः यहाँ केवल दो शब्दों में इसका संक्षिप्त परिचय दिया जाए गा। यह अवस्था प्रायः तेरह से उन्नीस वर्ष के बीच की अवस्था मानी जाती है। इसके बाद परिपक्वता का प्रारम्भ होता है।

किशोरावस्था जीवन की सुनहली अवस्था समझी जाती है। इस अवस्था की अनेक विशेषतायें होती हैं जिनमें दो प्रमुख हैं- सामाजिकता और कामुकता। इन्हीं से सम्बन्धित अनेक परिवर्तन इस अवस्था में उत्पन्न होते हैं। यह अवस्था कई दृष्टियों से शारीरिक और मानसिक उथल-पुथल से भरी होती है। इसे शैशव की पुनरावृत्ति भी कहा जा सकता है, क्योंकि इस काल में बाल्यावस्था की स्थिरता और शांति नहीं दिखलाई पड़ती। स्वभाव से भावुक होने के कारण किशोर बालक न तो अपना शारीरिकऔर न ही मानसिक समायोजन उचित रूप से स्थापित कर पाता है। अतः शिशु की ही भाँति उसे वातावरण के साथ अपना नवीन समायोजन प्रारम्भ करना पड़ता है।

किशोरावस्था कामुकता के जागरण, संवेगात्मक अस्थिरता, विकसित सामाजिकता, कल्पना-बाहुल्य तथा समस्या-बाहुल्य की अवस्था मानी जाती है। जैसा ऊपर संकेत किया गया है, किशोर बालक और बालिका में घोर शारीरिक तथा मानसिक परिवर्तन होते हैं। उनके संवेगात्मक, सामाजिक और नैतिक जीवन का स्वरूप ही बदल जाता है। उनके हृदय स्फूर्ति और जोश से भर जाते हैं और संसार की प्रत्येक वस्तु में उन्हें एक नया अर्थ दिखलायी पड़ने लगता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो किशोरावस्था में प्रविष्ट होकर बालक एक नया जीवन ग्रहण करता है। परन्तु सत्य यह है कि किशोर बालक-बालिकाओं की इन अद्भुत उमंगों के पीछे उनकी यौन-परिपक्वता कार्य करती है। कामें च्छा जाग्रत हो जाने के कारण किशोरों को यह अवस्था बड़ी प्रिय और आनन्दमयी लगने लगती है। इसीलिए कोई किशोरावस्था को अपने जीवन की सुनहली अवस्था कहकर पुकारता है और कोई उसे अपने जीवन का बसन्त समझता है।

युवावस्था

सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में विगत 50-60 वर्षों में हुए परिवर्तनों के फलस्वरूप किशोरावस्था तथा प्रौढ़ावस्था के मध्य अवधि में वृद्धि हुई है। इन दोनों के मध्य की अवस्था को 'युवावस्था' का नाम दिया गया है। 20 वर्ष से 25-26 वर्ष तक की इस अवस्था में अयक्ति उच्च शिक्षा प्राप्त करने अथवा रोजगार के अवसरों की तलाश में रहता है। इस वर्ग के व्यक्तियों की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है। वर्तमान में भारतवर्ष में पुरुषों के लिए इस अवस्था के औसत आयु 26 वर्ष तथा महिलाओं की औसत आयु 22 वर्ष है। रोजगार के अवसर त्वरित गति से सभी के लिए उपलब्ध नहीं है। सम्यक रोजगार प्राप्त होने अथवा विवाह हो जाने तक के 20 से 25-26 वर्ष के व्यक्ति 'युवावस्था'के अंतर्गत समझे जाते हैं।

प्रौढ़ावस्था

प्रौढ़ावस्था का प्रसार 26 से 40 वर्ष तक समझा जाता है। इस अवस्था को नये कर्तव्यों और बहुमुखी उत्तरदायित्व की अवस्था समझा जाता है। व्यक्ति इसी अवस्था में बड़ी-बड़ी उपलब्धियों की ओर दत्तचित्त होता है। परन्तु यह तभी सम्भव है जब वह विभिन्न परिस्थितियों के साथ अपना स्वस्थ समायोजन स्थापित कर सकने में सफल हो। अन्य अवस्थाओं की भाँति प्रौढ़ावस्था में भी समायोजन की समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। व्यक्ति को अपने परिवार के सदस्यों, सम्बन्धियों, वैवाहिक जीवन तथा व्यवसाय के साथ स्वस्थ समायोजन स्थापित करने की आवश्यकता पड़ती है। जिन्हें अपने बाल्यकाल में माँ-बाप का अनावश्यक संरक्षण मिला होता है वे इस अवस्था में जल्दी आत्मनिर्भर नहीं हो पाते और फलस्वरूप उन्हें अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। वैवाहिक समायोजन ठीक न होने से प्रायः कुछ समाजों में तलाक की घटनाएँ देखने को मिलती है। व्यक्ति को अपने व्यवसाय में सफल और संतुष्ट होने के लिए उसकी उपलब्धियाँ ही नहीं वरन् समुचित समायोजन की क्षमता भी आवश्यक होती हैं।

मध्यावस्था

मध्यावस्था 41 से 60 वर्ष तक मानी जाती है। इस अवस्था में व्यक्ति के भीतर कुछ विशेष शारीरिक और मानसिक परिवर्तन देखे जाते हैं मध्यावस्था के प्रारम्भ में ही सामान्य स्त्री-पुरूषों के भीतर संतान उत्पन्न करने की क्षमता समाप्त सी हो जाती है। इसी अवस्था में व्यक्ति के भीतर ह्रास से लक्षण दृष्टिगोचर होने लगते हैं। धीरे-धीरे व्यक्ति की रूचियाँ भी बदलने लगती हैं वह पहले से अधिक गंभीर और यथार्थवादी हो जाता है और उसकी धार्मिक निष्ठाओं में भी दृढ़ता आने लगती है। धनाज्रन के प्रति भी व्यक्ति अब प्रायः कम उत्सुक देखा जाता है। इस अवस्था में एक सामान्य कोटि का व्यक्ति सुख, शान्ति और प्रतिष्ठा का अधिक इच्छुक हो जाता है। जहाँ तक समायोजन का प्रश्न है, इस अवस्था में पहुँचकर व्यक्ति अपने व्यवसाय से प्रायः संतुष्ट हो जाता है। सामाजिक सम्बन्धों के प्रति भी उसकी मनोवृत्तियाँ सुदृढ़ हो जाती है। परन्तु उसे अपने पुत्र-पुत्रियों के विचारों, दृष्टिकोणों तथा आवश्यकताओं को ठीक-ठीक समझना जरूरी हो जाता है। जिन व्यक्तियों का समायोजन अपने परिवार के सदस्यों के साथ अच्छा होता है उन्हें मध्यावस्था और वृद्धावस्था में अभूतपूर्व मानसिक संतुष्टि का अनुभव होता है।

वृद्धावस्था

वृद्धावस्था जीवन की अंतिम अवस्था होती है। इस अवस्था का प्रारम्भ 60 वर्ष के बाद समझा जाता है। शारीरिक और मानसिक शक्तियों का ह्रास इस अवस्था में बड़ी ही तीव्र गति से होता है। शारीरिक शक्ति, कार्य क्षमता तथ प्रतिक्रिया की गति में काफी मंदता आ जाती है। शारीरिक परिवर्तनों के साथ ही घोर मानसिक परिवर्तन भी इस अवस्था में घटित होते हैं। वृद्धजनों की रूचियों और मनोवृत्तियों में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिलता है। सामान्य बौद्धिक योग्यता, रचनात्मक चिन्तन तथा सीखने की क्षमताएँ शिथिल पड़ जाती हैं। वृद्धावस्था में स्मरण शक्ति का भी बड़ी तेजी से लोप होने लगता है वृद्धजनों की रूचियाँ संख्या में घटकर कम हो जाती हैं और उनके लिए उच्चकोटि की उपलब्धियाँ असंभव हो जाती हैं। शारीरिक शक्ति और मानसिक क्षमताओं में मंदता आ जाने के कारण वृद्ध व्यक्तियों का समायोजन प्रायः निम्नस्तरीय और असंतोषजनक हो जाता है और फलस्वरूप अनेक वृद्धजन बालकालीन आचरण का प्रदर्शन करने लगते हैं। वृद्धावस्था में व्यक्ति का का सामाजिक सम्पर्क घट जाता है और वह सामाजिक कार्यक्रमों में भाग नहीं ले पाता। व्यावसायिक जीवन से अवकाश प्राप्त कर लेने के बाद वृद्ध व्यक्ति ऐसा समझने लगता है मानो वह आर्थिक दृष्टि से दूसरों पर निर्भर है। अनेक वृद्धजनों के मत में यह धारणा कर लेती है कि समाज और परिवार में अब उनकी कोई आवश्यकता नहीं रही। अतः बुढ़ापे में एक प्रकार की उदासीनता का भाव विकसित होने लगता है। परन्तु जिन वृद्ध व्यक्तियों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति जितनी उत्तम होती है और अपने को समाज और परिवार के लिए जितना अधिक उपयोगी समझते हैं उन्हें उतनी ही अधिक प्रसन्नता और मानसिक संतुष्टि का अनुभव होता है।

विकास के स्वरूप तथा विकास की उपर्युक्त प्रमुख अवस्थाओं का समुचित ज्ञान होना तीन दृष्टियों से आवश्यक है। विकासात्मक अवस्थाओं का ज्ञान होने से हमें यह पता रहता हैं कि बालक के भीतर विभिन्न आयु-स्तर पर किस प्रकार के परिवर्तन दिखलाई पड़ेंगे। साथ ही हम यह भी जान पाते हैं कि कोई शारीरिक अथवा मानसिक गुण किस अवस्था में पहुँचकर परिपक्व होगा। अतः हम उसके समुचित विकास के लिए उपयुक्त वातावरण तथा शिक्षण का प्रबन्ध कर सकते हैं ताकि उस गुण-विशेष का विकास सुन्दर से सुन्दर ढंग से हो सके। विकास के स्वरूप तथा उसकी अवस्थाओं के ज्ञान का एक दूसरा लाभ यह है कि इस ज्ञान के आधार पर यह निश्चित किया जा सकता है कि किस बालक का विकास सामान्य ढंग से चल रहा है और किस बालक का विकास सामान्य ढंग से। ऐसा निश्चित करना इसलिए सम्भव है, क्योंकि प्रायः सभी बालकों के विकास की प्रणाली समान ही होती है। यदि किसी बालक का विकास सामान्य ढंग से नहीं चलता तो उस सम्बन्ध में उचित व्यवस्था की जा सकती है। अन्त में, बालकों को विभिन्न प्रकार का निर्देशन देना भी तभी सम्भव हो पाता है जब हमें उनके विकास की विशेषताओं की जानकारी हो। किसी अवस्था-विशेष में पहुँच कर बालक के भीतर जिन शारीरिक-मानसिक क्षमताओं का उदय एवं विकास होता है उन्हीं को दृष्अि में रखते हुए उन्हें व्यक्तिगत, शिक्षा-सम्बन्धी अथवा व्यवसाय-सम्बन्धी निर्देशन दिया जा सकता है। अतः बालकों के पालन-पोषण, उन्हें समझने तथा उन्हें निर्देशन देने की दृष्टियों से विकास तथा उसकी विभिन्न अवस्थाओं का वमुचित ज्ञान प्रत्येक माता-पिता, संरक्षक और शिक्षक के लिए श्रेयस्कर होता है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. जन्म से लेकर तीन वर्षों की अवस्था को ____________ कहा जाता है।
2. मानव विकास की वह अवस्था जो 12-13 वर्ष से लेकर 19-20 वर्ष तक रहती है.................. कहताली है। (बाल्यावस्था,युवावस्था,किशोरावस्था)
3. ____________ वास्तव में बाल्यावस्था और किशोरावस्था को मिलाने वाली अवस्था मानी गयी है।
4. ____________ बाल-काल की अन्तिम अवस्था होती है।
5. 20 वर्ष से 25-26 वर्ष तक की इस अवस्था को कहा ____________ जाता है।
6. ____________ का प्रसार 26 से 40 वर्ष तक समझा जाता है।
7. प्रौढ़ावस्था अवस्था को नये कर्तव्यों और बहुमुखी उत्तरदायित्व की अवस्था समझा जाता है। (सत्य/असत्य)
8. ____________ जीवन की अंतिम अवस्था होती है।

2.4 अवस्था विशेष की विशेषताएं

यदि हम विकासात्मक अवस्थाओं को शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में देख तो पाते है कि बाल्यावस्था और किशोरावस्था का शिक्षा ग्रहण करने का ख्याल से विशेष महत्व है। इन दोनों ही अवस्थाओं को पुनः पूर्व एवं उत्तर अवस्था के उपभागों में बाँटा गया है। इस प्रकार शिक्षा के दृष्टिकोण से ये अवस्थाएं अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। यहाँ इन विकासात्मक अवस्थाओं की विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है।

पूर्व बाल्यावस्था

इसे प्राक-स्कूल अवस्था भी कहते हैं। इस अवस्था में बच्चों में महत्वपूर्ण शारीरिक विकास, भाषा विकास, अवगमात्मक एवं संज्ञानात्मक विकास, बौद्धिक विकास, सामाजिक विकास, तथा सांवेगिक विकास होते देखा गया है। मनोवैज्ञानिकों ने इसे प्राक्-टोली अवस्था भी कहते हैं। इस अवस्था की निम्नलिखित विशेषताएं होती हैं।

1. **बाल्यावस्था एक समस्या अवस्था होती है-**इस अवस्था की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इस अवस्था में बच्चे एक विशिष्ट व्यक्तित्व विकसित करते हैं और स्वतंत्र रूप से कोई कार्य करने पर अधिक बल डालते हैं। इसके अलावा इस उम्र के बच्चे अधिक जिद्दी, झक्की, विरोधात्मक, निषेधवादक तथा बेकहा होते हैं। इन व्यवहारात्मक समस्याओं के कारण अधिकतर माता-पिता इस अवस्था को 'समस्या अवस्था' कहते हैं।
2. **पूर्व बाल्यावस्था में बच्चों की अभिरूचि खिलौनों में अधिक होती है-**इस अवस्था में बच्चे खिलौनों से खेलना अधिक पसंद करते हैं। बुरनर (1975), हेरोन (1971) एवं काज, (1991) ने अपने-अपने अध्ययनों के आधार पर यह बताया है कि इस अवस्था में बच्चों में खिलौनों से खेलने की अभिरूचि अधिकतम होती है और जब बच्चे स्कूल अवस्था में प्रवेश करने लगते हैं अर्थात वे 6 साल का होने को होते हैं तो उनकी यह अभिरूचि समाप्त हो जाती है।
3. **पूर्व बाल्यावस्था को शिक्षकों द्वारा तैयारी का समय बताया गया है-**इस अवस्था को शिक्षकों ने प्राक्स्कूली अवस्था कहा है, क्योंकि इस अवस्था में बच्चों को किसी स्कूल में औपचारिक शिक्षा के लिए दाखिला नहीं कराया जाता है। लेकिन, कुछ ऐसी संस्थाएँ हैं जिन्हें प्राक्स्कूल कहा जाता है जिनमें बच्चों को रखकर कुछ अनौपचारिक ढंग से या खेल के माध्यम से शिक्षा दी जाती है। नर्सरी स्कूल ऐसे स्कूलों के अच्छे उदाहरण हैं। लेकिन, कुछ बच्चे ऐसे नर्सरी स्कूल में न जाकर माता-पिता से घर पर ही कुछ शिक्षा पाते हैं। शिक्षकों का कहना है कि चाहे बच्चे किसी नर्सरी स्कूल में अनौपचारिक शिक्षा पा रहे हों या घर में माता-पिता द्वारा शिक्षा प्राप्त कर रहे हों, वे अपने-आपको इस ढंग से तैयार करते हैं कि स्कूल अवस्था प्रारंभ होने पर उन्हें किसी प्रकार की कोई कठिनाई नहीं हो।

4. **पूर्व बाल्यावस्था में बच्चों में उत्सुकता अधिक होती है**-इस अवस्था में बच्चों में अपने इर्द-गिर्द की वस्तुओं, चाहे वे जीवित हों या अजीवित, के बारे में जानने की उत्सुकता काफी अधिक रहती है। वे हमें शा यह जानने की कोशिश करते हैं कि उनके वातावरण में उपस्थित ये सब वस्तुएँ किस प्रकार की है, वे कैसे कार्य करती हैं, वे कैसे एक-दूसरे से संबंधित हैं आदि-आदि। शायद यही कारण है कि कुछ मनोवैज्ञानिकों ने पूर्व बाल्यावस्था को अन्वेषणात्मक अवस्था कहा है।
5. **पूर्व बाल्यावस्था में बच्चों में अनुकरण करने की प्रवृत्ति अधिक तीव्र होती है**-इस अवस्था के बच्चों में अपने माता-पिता एवं परिवार के अन्य वयस्कों के व्यवहारों तथा उनके बोलने-चालने के तौर-तरीकों का नकल उतारने की प्रवृत्ति देखी जाती है। चेरी तथा लेविस (1991) का मत है कि इस अवस्था के जिन बच्चों में ऐसी प्रवृत्ति अधिक होती है उन बच्चों में किशोरावस्था तथा वयस्कावस्था में आने पर सुझाव ग्रहणशीलता का शीलगुण तेजी से विकसित होता है।

उत्तर बाल्यावस्था

उत्तर बाल्यावस्था 7 वर्ष से प्रारंभ होकर बालिकाओं में 10 वर्ष की उम्र तक की होती है तथा बालकों में 7 वर्ष से प्रारंभ होकर 12 वर्ष की उम्र तक की होती है। यह वह अवस्था होती है जब बच्चे स्कूल जाना प्रारंभ कर देते हैं। इस अवस्था को माता-पिता, शिक्षकों तथा मनोवैज्ञानिकों द्वारा दिखाई गई विशेषताओं के आधार पर कई तरह के नाम भी दिए गए हैं। जैसे माता-पिता द्वारा इस अवस्था को उत्पाती अवस्था कहा गया है (क्योंकि अक्सर बच्चे माता-पिता की बात न मानकर अपने साथियों की बात अधिक मानते हैं), शिक्षकों ने इस अवस्था को प्रारंभिक स्कूल अवस्था कहा है (क्योंकि इस अवस्था में बच्चे स्कूल में औपचारिक शिक्षा के लिए जाना प्रारंभ कर देते हैं) मनोवैज्ञानिकों ने इस अवस्था को गिरोह अवस्था या ''गैंग एज'' कहा है (क्योंकि इस अवस्था में बच्चों में अपने गिरोह या समूह के अन्य सदस्यों द्वारा स्वीकृत किया जाना सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है)। इस अवस्था में भी बच्चों में महत्वपूर्ण शारीरिक विकास, भाषा विकास, सांवेगिक विकास, सामाजिक विकास, मानसिक विकास तथा संज्ञानात्मक विकास होते है जिनका ज्ञान होने से शिक्षक आसानी से बालकों का मार्गदर्शन कर पाते हैं। इस अवस्था की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. **उत्तर बाल्यावस्था को माता-पिता द्वारा एक उत्पाती या उधमी अवस्था कहा गया है**-इस अवस्था में बच्चे स्कूल जाना प्रारंभ कर देते हैं और उन पर अपने संगी-साथियों का गहरा प्रभाव पड़ना भी प्रारंभ हो जाता है। वे माता-पिता की बात को कम महत्व देते हैं जिसके कारण उन्हें डाँट-फटकार भी मिलती है। इस अवस्था में बच्चे अपनी व्यक्तिगत आदतों के प्रति लापरवाह होते हैं जिससे माता-पिता तथा शिक्षक दोनों ही काफी परेशान रहते हैं।

2. **उत्तर बाल्यावस्था में बच्चों में लड़ाई-झगड़ा करने की प्रवृत्ति भी अधिक होती है-** उत्तर बाल्यावस्था में बच्चों में आपस में लड़ने-झगड़ने की प्रवृत्ति अधिक होती है। यह बात वहाँ पर स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है जहाँ परिवार में भाई-बहनों की संख्या अधिक होती है। छोटी-छोटी बात को लेकर एक-दूसरे पर आरोप थोपते हैं, गाली-गलौच करते हैं और शारीरिक रूप से आघात करने में भी पीछे नहीं रहते।
3. **शिक्षकों द्वारा उत्तर बाल्यावस्था को प्रारंभिक स्कूली अवस्था कहा जाता है-** शिक्षकों ने इस बात पर बल डाला है कि यह वह अवस्था होती है, जिसमें छात्र उन चीजों को सीखते हैं जिनसे उन्हें वयस्क जिंदगी में सफल समायोजन करने में मद्द मिलती है। इस अवस्था में छात्र पाठ्यक्रम से संबद्ध कौशल तथा पाठ्यक्रम कौशल दोनों को ही सीखकर अपना भविष्य उज्जवल करने की नींव डालते हैं। कुछ शिक्षकों ने इस अवस्था को नाजुक अवस्था भी कहा है, क्योंकि इस उम्र में उपलब्धि-प्रेरक की भी नींव पड़ती है। बालकों में उच्च उपलब्धि-प्रेरणा, निम्न उपलब्धि-प्रेरणा, या साधारण उपलब्धि-प्रेणा की आदत बनती है। एक बार जिस प्रकार की आदत बन जाती है, वही आदत किशोरावस्था तथा वयस्कावस्था में भी बनी रहती है। कागन (1977) तथा ह्राईटमैन (1991) ने अपने-अपने अध्ययनों से इस बात की पुष्टि की है कि उत्तर अवस्था में दिखाए गए उपलब्धि-स्तर तथा वयस्कता में प्राप्त किए गए उपलब्धि-स्तर में अधिक सह-संबंध पाया जाता है जो अपने-आपमें इस बात का द्योतक है कि उत्तर बाल्यावस्था का उपलब्धि-स्तर बहुत हद तक वयस्क के उपलब्धि-स्तर का एक तरह का निर्धारक होता है।
4. **उत्तर बाल्यावस्था में बच्चा अपनी ही उम्र के साथियों के समूह द्वारा स्वीकृति पाने के लिए काफी लालायित रहता है-**इस अवस्था की एक विशेषता यह भी बताई गई है कि इस उम्र के बच्चे अपने साथियों के समूह में इतना अधिक खो जाते हैं कि उनके बोलने-चालने का ढंग, कपड़ा पहनने का ढंग, खाने-पीने की चीजों की पसंद आदि सभी इस समूह के अनुकूल हो जाता है। बच्चे ऐसे तौर-तरीकों पर इतना अधिक ध्यान देते हैं कि वे इस बात की भी परवाह नहीं करते कि इस ढंग का तौर-तरीका उनके परिवार तथा स्कूल के तौर-तरीकों से परस्पर विरोधी हैं।
5. **उत्तर बाल्यावस्था में बच्चों में सर्जनात्मक क्रियाओं की ओर अधिक झुकाव होता है-**इस उम्र के बच्चों में अपनी शक्ति तथा बुद्धि को नई चीजों में लगाने की प्रवृत्ति अधिक होती है। वे अक्सर नए ढंग की चित्रकारी तथा शिल्पकारी करते पाए जाते हैं और उससे उनमें एक तरह से सर्जनात्मक अंतःशक्तियों का विकास होता है। कुछ मनोवैज्ञानिकों जैसे सुसमैन (1988) का मत है कि हालाँकि इस ढंग की सर्जनात्मक अंतःशक्तियों का बीज प्रारंभिक बाल्यावस्था में ही बो दिया जाता है, इसका पूर्ण विकास तब तक नहीं होता है जब तक कि बच्चे की उम्र 10-12 साल की नहीं हो जाती है।

किशोरावस्था

शिक्षा मनोवैज्ञानिकों ने किशोरावस्था को अधिक महत्वपूर्ण अवस्था बताया है और अधिकतर शिक्षक इस बात से सहमत है कि उन्हें अपने शिक्षण कार्यो में सबसे अधिक चुनौती इस अवस्था के शिक्षार्थियों से प्राप्त होती है। किशोरावस्था 13 साल की उम्र से प्रारंभ होकर 19-20 साल तक की होती है और इस तरह से इस अवधि में तरूणावस्था या प्राक्किशोरावस्था, प्रारंभिक किशोरावस्था तथा उत्तर किशोरावस्था तीनों ही सम्मिलित हो जाते हैं। इस किशोरावस्था में भी किशोरों में महत्वपूर्ण शारीरिक विकास, सामाजिक विकास, संवेगात्मक विकास, मानसिक विकास तथा संज्ञानात्मक विकास होते हैं। इस अवस्था की प्रमुख विशेषताएं निम्नांकित है-

1. **किशोरावस्था एक महत्वपूर्ण अवस्थाहै-**किशोरावस्था को हर तरह से एक महत्वपूर्ण अवस्था माना गया है। यह वह अवस्था है जिसका छात्रों में तात्कालिक प्रभाव तथा दीर्घकालीन प्रभाव दोनों की देखने को मिलता है। इस अवस्था में शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक दोनों तरह के प्रभाव बहुत स्पष्अ रूप से उभरकर सामने आते हैं। अपने तीव्र शारीरिक विकास के कारण ही इस अवस्था में किशोर अपने-आपको वयस्क से किसी तरह से कम नहीं समझता तथा जैसा कि पियाजे (1969) ने कहा है, तीव्र मानसिक विकास होने के कारण बालक वयस्क के समाज में अपने-आपको संगठित मानता है और वह एक नई मनोवृत्ति, मूल्य तथा अभिरूचि विकसित करने में सक्षम हो पाता है।
2. **किशोरावस्था एक परिवर्ती अवस्था होती है-**किशोरावस्था सचमुच में बाल्यावस्था तथा वयस्कावस्था के बीच की अवस्था है। इस अवस्था में किशोरों को बाल्यावस्था की आदतों का परित्याग करके उसकी जगह नई आदतों, जो अधिक परिपक्व तथा सामाजिक होती है, को सीखना होता है। इस दिशा में शिक्षकों की अहम भूमिका होती है। शिक्षक वर्ग में उचित दिशानिर्देश प्रदान कर उन्हें एक परिपक्व तथा सामाजिक मनोवृत्ति कायम करने में मद्द करते हैं जो किशोरों को एक स्वस्थ समयोजन में काफी सहायक सिद्ध होती है।
3. **किशोरावस्था में एक अस्पष्ट वैयक्तिक स्थिति होती है-**इस अवस्था में किशोरों की वैयक्तिक स्थिति अस्पष्अ होती है और उसे स्वयं ही अपने द्वारा की जाने वाली सामाजिक भूमिका के बारे में संभ्रांति होती है। सचमुच एक किशोर अपने-आपको न तो बच्चा समझता है और न ही पूर्ण वयस्क। जब वह एक बच्चा के समान व्यवहार करता है तो उसे तुरन्त कहा जाता है कि उसे ठीक ढंग से व्यवहार करना चाहिए, क्योंकि वह अब बच्चा नहीं रह गया है। जब वह वयस्क के रूप में व्यवहार करता है तो उससे कहा जाता है कि वह अपनी उम्र से आगे बढ़कर नहीं व्यवहार करे, क्योंकि यह अच्छा नहीं लगता है। इसका नतीजा यह होता है कि किशोरों में अपने द्वारा की जाने वाली वैयक्तिक भूमिका के बारे में संभ्रांति मौजूद रहती है। इरिक्सन (1964) ने इस पर टिप्पणी करते हुए कहा है, ''जिस विशिष्टता का किशोर स्पष्टीकरण चाहते हैं, वे हैं-वह कौन है, उसकी समाज में क्या भूमिका होगी? वह बच्चा है या वयस्क है?''

4. **किशोरावस्था एक समस्या उम्र होती है-**ऐसे तो हर अवस्था की अपनी समस्याएँ होती है, परन्तु किशोरावस्था की समस्या लड़कों तथा लड़कियों, दोनों के लिए ही अधिक गंभीर होती है। इसके मुख्य दो कारण बताए गए है। पहला, उससे पिछली अवस्था यानी बाल्यावस्था में बालकों की समस्याओं का समाधान अंशतः शिक्षकों तथा माता-पिता द्वारा कर दिया जाता था। अतः, वे समस्याओं के समाधान के तरीकों से अनभिज्ञ होते हैं। फलतः, वे किशोरावस्था की अधिकतर समस्याओं का समाधान ठीक ढंग से नहीं कर पाते। दूसरा कारण यह बतलाया गया है कि किशोर प्रायः अपनी समस्या का समाधान करने का भरपूर प्रयास करते हैं जिसमें प्रायः उन्हें असफलता ही हाथ लगती है, क्योंकि सचमुच इन समस्याओं का सही ढंग से समाधान करने की क्षमता तो उनमें होती नहीं है। इसका परिणाम यह होता है कि किशोरावस्था में व्यक्ति समस्या से घिरा रहता है।
5. **किशोरावस्था विशिष्टता की खोज का समय होता है-**किशोरावस्था में किशोरों में अपने साथियों के समूह से थोड़ी विशिष्ट एवं अलग पदवी बनाए रखने की प्रवृत्ति देखी गई है। इस प्रवृत्ति के कारण वे अपने साथियों से भिन्न ढंग का ड्रेस पहनने तथा नए ढंग के साइकिल या स्कूटर आदि का प्रयोग करने पर अधिक बल डालते हैं। इसे इरिक्सन (1964) ने 'अहम पहचान की समस्या' कहा है।
6. **किशोरावस्था अवास्तविकताओं का समय होता है-**किशोरावस्था में अक्सर व्यक्ति ऊँची-ऊँची आकांक्षाएँ एवं कल्पनाएँ करता है जिनका वास्तविकता से कम मतलब होता है। वे अपने बारे में तथा दूसरों के बारे में वैसा ही सोचते है जैसा कि वे सोचना पसंद करते हैं न कि जैसी वास्तविकता होती है। इस तरह की अवास्तविक आकांक्षाओं से किशोरों में संवेगात्मक अस्थिरता भी उत्पन्न हो जाती है। रसियन (1975) ने अपने अध्ययन के आधार पर बताया है कि किशोरों में जितनी ही अधिक अवास्तविक आकांक्षाएँ होती हैं, उतनी ही उनमें अधिक कुंठा तथा क्रोध, विशेषकर उस परिस्थिति में अधिक होती है जब वे यह समझते हैं कि वे उस लक्ष्य पर नहीं पहुँच पाए जिस पर वे पहुँचना चाहते थे।
7. **किशोरावस्था वयस्कावस्था की दहलीज होती है-**किशोरावस्था एक तरह से वयस्कावस्था की दहलीज होती है क्योंकि इस अवस्था के समाप्त होते-होते, अर्थात 18-19 साल की अवस्था में किशोरों के मन में यह बात बैठ जाती है कि अब वे वयस्क हो गए हैं और उन्हें अब वयस्कता से संबंधित व्यवहार करने चाहिए। शायद यही कारण है कि वे इस उम्र में धूम्रपान, मंदिरापान, औषधि सेवन, यौन क्रियाओं आदि में स्वतंत्र रूप से भाग लेने लगते हैं।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

9. पूर्व बाल्यावस्थाइसे प्राक-स्कूल अवस्था भी कहते हैं। (सत्य/ असत्य)
10. किस अवस्था में बच्चे खिलौनों से खेलना अधिक पसन्द करते हैं?

क. पूर्व बाल्यावस्था
ख. उत्तर बाल्यावस्था
ग. पूर्व किशोरावस्था
घ. उत्तर किशोरावस्था

11. मानव विकास की किस अवस्था को माता-पिता द्वारा एक ''उत्पाती या उधमी अवस्था कहा गया है?
    क. पूर्व बाल्यावस्था
    ख. उत्तर बाल्यावस्था
    ग. पूर्व किशोरावस्था
    घ. उत्तर किशोरावस्था
12. ''जिस विशिष्टता का किशोर स्पष्टीकरण चाहते हैं, वे हैं-वह कौन है, उसकी समाज में क्या भूमिका होगी? वह बच्चा है या वयस्क है?'' यह टिप्पणी किसकी है?

2.5 अवस्था विशेष के विकासात्मक कार्य

प्रत्येक समाज में बच्चा एक विशेष उम्र में एक खास तरह के व्यवहार तथा कौशल को तेजी से सीखता है। यही कारण है कि शिक्षक, माता-पिता तथा समाज के अन्य लोग बच्चों से उनकी उम्र के अनुसार विशेष तरह की सामाजिक उम्मीदें बनाकर रखते हैं। वे लोग उम्मीद करते हैं कि बच्चे जिस उम्र के हो गए है उस उम्र की सारी अनुक्रियाएँ उन्हें करनी चाहिए। इस तरह की सामाजिक प्रत्याशा को हेबिगहर्स्ट (1972) ने विकासात्मक कार्य कहा है। हेबिगहर्स्ट (1972) के अनुसार विकासात्मक कार्य को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है, ''विकासात्मक कार्य वह कार्य या पाठ है जो व्यक्ति की जिंदगी की किसी खास अवधि में या अवधि के बारे में संबंधित होता है तथा जिसकी सफल उपलब्धि से व्यक्ति में खुशी होती है और परवर्ती कार्यो को करने में उसे आनंद आता है, परंतु असफल होने से व्यक्ति में दुःख होता है, समाज से तिरस्कार मिलता है और परवर्ती कार्यो को करने में उसे कठिनाई भी होती है।'' शिक्षा मनोवैज्ञानिकों के अनुसार विकासात्मक कार्य से निम्नांकित तीन तरह के उद्देश्यों की पूर्ति होती है-

1. विकासात्मक कार्य से शिक्षकों तथा अभिभावकों को यह जानने में सुविधा होती है कि एक खास उम्र पर बालक क्या सीख सकते है और क्या नहीं।
2. विकासात्मक कार्य बालकों को उन व्यवहारों को सीखने में एक प्रेरणा का काम करता है जिसे सामाजिक समूह उसे सीखने के लिए उम्मीद करता है।
3. विकासात्मक कार्य शिक्षकों तथा माता-पिता को यह बताता है कि उन्हें अपने बच्चों से निकट भविष्य तथा सुदूर भविष्य में क्या उम्मीद करनी चाहिए। अतः, विकासात्मक कार्य

शिक्षकों तथा अभिभावकों को अपने बच्चों को इस ढंग से तैयार करने की प्रेरणा देते हैं ताकि वे भविष्य की नई चुनौतियों का सामना कर सके।

हेबिगहर्स्ट (1972) ने पूर्व बाल्यावस्था उत्तर बाल्यावस्था, किशोरावस्था तथा वयस्कावस्था के लिए विकासात्मक कार्य तैयार कर रखा है जिससे शिक्षकों तथा अभिभावकों को बालकों के मार्गदर्शन में काफी सहायता मिली है तथा शिक्षा जगत में इसके परिणाम काफी अच्छे देखने को मिले हैं। इन विकासात्मक कार्यो का वर्णन अवस्था विशेष हेतु निम्नांकित है-

पूर्व बाल्यावस्था के लिए विकासात्मक कार्य

विद्यालय जाने से पूर्व की अवस्था यानी 10 वर्ष से पहले की अवस्था के विकासात्मक कार्य निम्नलिखित है-

1. चलना सीखना
2. ठोस आहार लेना सीखना
3. बोलना सीखना
4. मल-मूत्र त्याग करना सीखना
5. यौन अंतरों तथा यौन शालीनता को सीखना
6. शारीरिक संतुलन बनाए रखना सीखना
7. सामाजिक एवं भौतिक वास्तविकता के सरलतम संप्रत्यय को सीखना
8. अपने-आपको माता-पिता, भाई-बहनों तथा अन्य लोगों के साथ सांवेगिक रूप से संबंधित करना सीखना
9. सही तथा गलत के बीच विभेद करना सीखना तथा अपने में एक विवेक विकसित करना।

उत्तर बाल्यावस्था के लिए विकासात्मक कार्य

विद्यालय जाने की अवस्था, यानी 5-6 साल की अवस्था से लेकर प्राक्-किशोरावस्था, यानी, 11-12 साल की अवस्था तक के विकासात्मक कार्य निम्नलिखित है-

1. साधारण खेलों के लिए आवश्यक शारीरिक कौशल को सीखना।
2. अपने-आपके प्रति एक हितकर मनोवृत्ति विकसित करना।
3. अपनी ही उम्र के साथियों के साथ् मिलना-जुलना सीखना।
4. उपयुक्त पुरूषोचित तथा स्त्रियोचित यौन भूमिकाओं को सीखना।
5. पढ़ना, लिखना तथा गिनती करना से संबंधित मौलिक कौशल विकसित करना।
6. दिन-प्रतिदिन की सुचारू जिंदगी के लिए आवश्यक संप्रत्ययों को सीखना।
7. नैतिकता, मूल्य तथा विवेक को सीखना।

8. व्यक्तिगत स्वतंत्रता प्राप्त करने की कोशिश करना।
9. सामाजिक समूहों एवं संस्थानों के प्रति मनोवृत्ति विकसित करना।

किशोरावस्था के लिए विकासात्मक कार्य

किशोरावस्था की तीनों अवस्थाओं (प्राक्-किशोरावस्था, पूर्व किशोरावस्था तथा उत्तर किशोरावस्था) यानी, 12-13 साल से लेकर 19-20 साल की अवधि तक के विकसात्मक कार्य निम्नलिखित हैं-

1. दोनों यौन की समान उम्र के साथियों के साथ नया एवं एक परिपक्व संबंध कायम करना।
2. उचित पुरूषोचित या स्त्रियोचित सामाजिक भूमिकाएँ सीखना।
3. माता-पिता तथा अन्य वयस्कों से हटकर एक सांवेगिक स्वतंत्रता कायम करना।
4. किसी व्यवसाय का चयन करना तथा उसके लिए अपने-आपको तैयार करना।
5. जीवन की प्रतियोगिताओं के लिए आवश्यक संप्रत्यय तथा बौद्धिक कौशलताओं को सीखना।
6. पारिवारिक जीवन तथा शादी के लिए अपने-आपको तैयार करना।
7. सामाजिक रूप से उत्तरदायी व्यवहार का निर्धारण करना तथा उसे प्राप्त करने की भरपूर कोशिश करना।
8. आर्थिक स्वतंत्रता की प्राप्ति की ओर अग्रसर होना।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

13. नैतिकता, मूल्य तथा विवेक को सीखनाउत्तर बाल्यावस्था काविकासात्मक कार्य है। (सत्य/असत्य)
14. ''उचित पुरूषोचित या स्त्रियोचित सामाजिक भूमिकाएं सीखना'' एक विकासात्मक कार्य है-
    - क. बाल्यावस्था
    - ख. किशोरावस्था की
    - ग. वयस्कावस्था की
    - घ. इनमें से किसी की नहीं

2.6 सारांश

मानव विकास की निम्नलिखित महत्वपूर्ण अवस्थाएं हैं- गर्भावस्था, शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, वयस्कावस्था, प्रौढ़ावस्था, मध्यावस्था, वृद्धावस्था। शैक्षिक दृष्टिकोण से

बाल्यावस्था एवं किशोरावस्था का विशेष महत्व है क्योंकि इन दोनों ही अवस्थाओं में व्यक्ति को आगामी जीवन के लिए आवश्यक व्यवहारों का प्रशिक्षण दिया जाता है।

मानव विकास की प्रत्येक अवस्था की अपनी विशेषताएं होती है तथा अवस्था विशेष के अपने विकासात्मक कार्य होते हैं।

2.7 शब्दावली

1. **गिरोह अवस्था:** उत्तर बाल्यावस्था जो 5-6 वर्ष से लेकर 10-12 वर्ष तक रहती है तथा जिसमें बच्चों में अपने गिरोह या समूह के अन्य सदस्यों द्वारा स्वीकृत किया जाना सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है।
2. **विकासात्मक कार्य:** विकासात्मक कार्य वह कार्य है जो व्यक्ति की जिन्दगी की किसी खास अवधि में या अवधि के बारे में सम्बन्धित होता है तथा जिसकी सफल उपलब्धि से व्यक्ति में खुशी होती है और बाद के कार्यो को करने में उसे आनन्द की प्राप्ति होती है, परन्तु असफल होने से व्यक्ति में दुःख होता है, समाज से तिरस्कार मिलता है और बाद के कार्यो को करने में उसे कठिनाई भी होती है।

2.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

1. शैशवावस्था
2. किशोरावस्था
3. वयःसन्धि
4. युवावस्था
5. किशोरावस्था
6. प्रौढ़ावस्था
7. सत्य
8. वृद्धावस्था
9. सत्य
10. कपूर्व बाल्यावस्था
11. ख उत्तर बाल्यावस्था
12. इरिक्सन की
13. सत्य
14. ख किशोरावस्था की

2.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शिक्षा मनोविज्ञान-अरूण कुमार सिंह - भारती भवन प्रकाशन, पटना
2. शिक्षा मनोविज्ञान एवं प्रारम्भिक सांख्यिकी-लाल एवं जोशी - आर.एल. बुक डिपो में रठ
3. बाल मनोविज्ञान: विषय और व्याख्या - अजीमुर्रहमान - मोतीलाल बनारसीदास पटना
4. मानव विकास का मनोविज्ञान - रामजी श्रीवास्तव
5. आधुनिक विकासात्मक मनोविज्ञान - जे.एन.लाल
6. विकासात्मक मनोविज्ञान (हिन्दी अनुवाद) - ई.बी. हर्लोक

2.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. मानव विकास की विभिन्न अवस्थाओं का संक्षेप में वर्णन करें।
2. विकासात्मक कार्य से आप क्या समझते हैं? पूर्व एवं उत्तर बाल्यावस्था के विकासात्मक कार्यो का विवरण दें।
3. किशोरावस्था की विशेषताओं का उल्लेख करें तथा इस अवस्था के विकासात्मक कार्यो को रेखांकित करें।
4. टिप्पणी लिखें-
    i. बाल्यावस्था की विशेषताएं
    ii. किशोरावस्था

इकाई- 3 शैशवावस्था में शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक तथा सामाजिक विकास

Infancy with respect to Physical, Mental, Emotional and Social Development

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 शैशवावस्था
3.4 शैशवावस्था में शारीरिक विकास
3.5 शैशवावस्था में मानसिक विकास
3.6 शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास
3.7 शैशवावस्था में सामाजिक विकास
3.8 सारांश
3.9 शब्दावली
3.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर
3.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची
3.12 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

जन्म के समय बालक (शिशु) शारीरिक और मानसिक रुप से विकसित नहीं होता। वह एक मनोशारीरिक प्राणी के रुप में जन्म लेता है। धीरे-धीरे विकास के फलस्वरुप उसकी मानसिक और शारीरिक शक्ति का प्रस्फुटन होता है। बाल विकास की इस प्रक्रिया को मनोवैज्ञानिकों ने चार सोपानों में विभाजित किया है-

शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, प्रौढावस्था। प्रत्येक अवस्था की अपनी विशेषतएं होती हैं जो कि उसा अवस्था विशेष में परिलक्षित होतीं हैं। इस इकाई में आप मानव विकास की शैशवावस्था का अध्ययन करेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

1. शैशवावस्था के बारे में जान पायेंगे ।
2. शैशवावस्था में मानसिक विकास के बारे में समझ सकेंगे।
3. शैशवावस्था में शारीरिक विकास की व्याख्या सकेंगे।
4. शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास का वर्णन कर सकेंगे।
5. शैशवावस्था में सामाजिक विकास के बारे में जान पायेंगे।
6. शैशवावस्था में शिशु के विकास का अध्ययन करने के पश्चात माता-पिता की भूमिका की व्याख्या कर सकेंगे।

3.3 शैशवावस्था (Infancy)

सामान्यतः शिशु के जन्म के उपरान्त के प्रथम 6 वर्ष शैशवावस्था कहलाते हैं। शिशु को अंग्रेजी भाषा में इन्फैंट (Infant) कहते हैं। Infant लैटिन भाषा के शब्द से बना है। अतः इन्फैन्ट का शाब्दिक अर्थ है बोलने में अक्षम अतः इन्फैन्ट शब्द का प्रयोग शिशु की उस अवस्था तक के लिए किया जाता है जब वे सार्थक शब्दों का प्रयोग प्रारम्भ करते हैं। सामान्यतः तीन वर्ष की आयु तक का बालक शब्दों का सार्थक प्रयोग करना शुरु कर देता है। इसलिए तकनीकी दृष्टि से शून्य से तीन वर्ष की आयु की अवधि को शैशवावस्था कहते हैं। शैशवावस्था बालक का निर्माण काल है तथा शिशु जन्म के पश्चात मानव निर्माण की प्रथम अवस्था है **न्यूमैन (J. Newman)** के शब्दों में-

''पांच वर्ष तक की अवस्था शरीर तथा मस्तिष्क के लिए बड़ी ग्रहणशील होती है।''

फ्रायड- मनुष्य को जो कुछ भी बनाना होता है वह प्रथम चार पाँच वर्षों के बन जाता है। सब अवस्थाओं में शैशवावस्था सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। यह अवस्था ही वह आधार है जिस पर बालक का भविष्य या उसके जीवन का निर्माण होता है।

शैशवावस्था (जन्म से 6 वर्ष तक) में विकास का तात्पर्य यह है कि यह सामान्य बच्चों के औसत विकास से है। सामान्य का अर्थ यह भी है कि वंशानुक्रम से प्राप्त शक्तियों के आधार पर भी वह सामान्य होते हैं जिनका पर्यावरण भी सामान्य होता है। शिक्षा की दृष्टि से बच्चों के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास का अधिक महत्व होता है। इसीलिए प्रस्तुत भाग में शैशवावस्था के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास पर ही प्रकाश डालेंगे।

विकास एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है यह प्रक्रिया मानव के जन्म से प्रारम्भ होती है और मृत्यु पर्याप्त चलती रहती है। जन्म के समय बच्चे के शरीर की बनावट, बड़े बच्चे से भिन्न होती है, पहले

दो सप्ताह का बच्चा नवजात शिशु कहलाता है। नवजात शिशु की त्वचा लाल, सिकुडी हुयी तथा खुरदरी होती है। शिशु 18 से 22 घंटे रोता है। भूख लगने पर उठ जाता है एवं पेट भरने पर फिर सो जाता है।

वैलन्टाइन ने शैशवावस्था को सीखने का आर्दश काल (Ideal period of learing) माना है।
वाटसन ने कहा है ''शैशवावस्था में सीखने की सीमा और तीव्रता विकास की ओर किसी अवस्था की तुलना में बहुत अधिक होती है।''

3.4 शैशवावस्था में शारीरिक विकास (Physical Development in Infancy)

आकार एवं वजन (Size and Weight)- शिशु जब इस संसार में आता है उस समय बालक का भार 7.15 और बालिका का भार 7.13 पौंड होता है कभी-कभी उसका भार 5 से 8 पौंड तक तथा सिर का वजन पूर्ण शरीर के वजन का 22 प्रतिशत होता है। पहले 6 माह में शिशु का भार दुगुना और एक वर्ष के अन्त में तिगुना हो जाता है। दूसरे वर्ष में शिशु का भार केवल 1/2 पौंड प्रति माह के हिसाब से बढता है एंव पांचवें वर्ष के अन्त में 38 से 43 पौंड के बीच में होता है।

हावर्ड विश्व विद्यालय के एक 12 वर्षीय अध्ययन से ज्ञात हुआ कि जन्म से दो वर्ष की आयु तक बालक का विकास तीव्र गति से होता है। 2 वर्ष के बाद की वृद्धि निम्न प्रकार से पायी गयी है।

तालिका - वजन (Weight) पौंड में

वर्ष	**बालक**	**बालिका**
2.5	34.5	35.34
3	36.75	40.5
3.5	39	43.5
4	41.5	46.75
4.5	44	48.75
5	48.25	51.25
5.5	53	54.25
6	56.5	61.25

तालिका

शैशवावस्था में बालक तथा बालिका की औसत भार (किग्रा0 में)

आयु	जन्म के समय	3 माह	6 माह	9 माह	1 वर्ष	2 वर्ष	3 वर्ष	4 वर्ष	5 वर्ष	6 वर्ष
बालक	3.2	5.7	6.9	7.4	8.4	10.1	11.8	13.5	14.8	16.3
बालिका	3.0	5.6	6.2	6.6	7.8	9.6	11.2	12.9	14.5	16.0

लम्बाई (Length) - जन्म के समय एवं सम्पूर्ण शैशवावस्था में बालक की लम्बाई बालिका से अधिक होती है। जन्म के समय बालक की लम्बाई लगभग 20.5 इंच एवं बालिका की 20.3 इंच होती है। अगले 3 या 4 सालों में बालिकाओं की लम्बाई बालको से अधिक होती है। उसके बाद बालको की लम्बाई बालिकाओं से आगे निकलने लगती है। पहले वर्ष में शिशु की लम्बाई

हावर्ड विश्व विद्यालय के एक 12 वर्षीय अध्ययन के अनुसार - लगभग 10 इंच एवं दूसरे वर्ष में 4 या 5 इंच बढती है। तीसरे चौथे एवं पांचवे वर्ष में उसकी लम्बाई कम बढती है।

तालिका

ऊँचाई इंच में

वर्ष	बालक	बालिका
2.5	38	38
3	39.5	39.75
3.5	41	41.5
4	42.75	43
4.5	44.25	44.75
5	45.5	45.5
5.5	47.25	46.75

तालिका

शैशवावस्था में बालक तथा बालिका की औसत लम्बाई (से0मी0) में

आयु	जन्म के समय	3 माह	6 माह	9 माह	1 वर्ष	2 वर्ष	3 वर्ष	4 वर्ष	5 वर्ष	6 वर्ष
बालक	51.5	62.7	64.9	69.5	73.9	81.6	88.8	96.0	102.1	108.5
बालिका	51.0	60.9	64.4	66.7	72.5	80.1	87.2	94.5	101.4	107.4

सिर एवं मस्तिष्क (Head and Brain) - जब बालक जन्म लेता है तब शिशु के मस्तिष्क की माप 350 ग्राम अर्थात पूरे शरीर का 1/4 होती है। शैशवकाल में शिशु का मस्तिष्क तीव्र गति से विकसित होता है तथा पहले दो वर्षों में ही यह तीन गुना हो जाता है। 6 वर्ष की आयु में मस्तिष्क का वजन 1260 ग्राम हो जाता है। जो कि प्रौढ़ व्यक्ति के मस्तिष्क के भार का 90 प्रतिशत तक होता है। स्पष्ट है कि शैशवावस्था में मस्तिष्क का विकास तीव्र गति से होता है।

हड्डियाँ (Bones) - शरीर संरचना वास्तव में हड्डियों का ढाँचा होता है। नवजात शिशु में हडिड्यों की संख्या लगभग 270 होती है। शिशु की हड्डियाँ छोटी कोमल (Soft) लचीली (Pliable) होती हैं। उनकी हड्डियों का दृढीकरण तथा अस्थीकरण Ossification कैलिशयम Calcium, फासफोरस Phosphorus तथा अन्य खनिज वस्तुओं Minerals salts के सहयोग से होता है। बालकों की तुलना में बालिकाओं में अस्थिकरण अधिक शीघ्र होता है।

दाँत (Teeth) - जन्म के समय शिशु के दाँत नहीं होते हैं लगभग छठें या सातवें महीने में अस्थायी दूध के दाँत (Deciduous teeth) निकलने लगते हैं सबसे पहले नीचे के अगले दाँत निकलते हैं। एक वर्ष की आयु तक दूध के सभी दाँत निकल जाते हैं इसके पश्चात ये दाँत गिरने लगते हैं तथा पांचवे या छठें वर्ष की आयु में शिशु के स्थायी दाँत निकलने शुरु हो जाते हैं।

माँस पेशियाँ (Muscels) - नवजात शिशु की मांसपेशियों का भार उनके शरीर के कुल भार का लगभग 23 प्रतिशत होता है। मांसपेशियों के प्रतिशत भार में धीरे-धीरे बढोत्तरी होती जाती है।

अन्य अंग (Other Organs) - शिशु की भुजाओं एवं टांगों का विकास भी तीव्र गति से होता है प्रथम दो वर्षो में भुजायें दो गुनी तथा टाँगे लगभग डेढ़ गुनी हो जाती है। जन्म के समय शिशु के हदय की धडकन अनियमित होती है कभी तेज होती है तो कभी धीमी होती है जैसे- जैसे हृदय बड़ा होता है। वैसे-वैसे हृदय की धड़कन में स्थिरता आती है। प्रथम माह में शिशु के हृदय की गति प्रति एक मिनट में 140 लगभग बार धडकता है तथा 6 वर्ष की आयु में यह घटकर लगभग 100 हो जाती है।

शिशु के शरीर के ऊपरी भाग का लगभग पूर्ण विकास 6 वर्ष की आयु तक हो जाता है। टाँगों एवं भुजाओं का विकास अति तीव्र गति से होता है। शिशु के यौन-सम्बन्धी अंगो का विकास मन्द गति से होता है।

3.5 शैशवावस्था में मानसिक विकास (Mental Development in Infancy)

सोरेनसन (Sorenson) (P 31-32 के शब्दों में जैसे-जैसे शिशु प्रति दिन प्रतिमास, प्रतिवर्ष बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे उसकी शक्तियों में परिवर्तन होता जाता है। ये परिवर्तन निम्न है-

1. प्रथम सप्ताह **(First Week)** अर्थात उत्पत्ति के समय- बालक जब इस संसार में अवतीर्ण होता है तो वह कुछ मौलिक प्रवृत्तियों को लेकर जन्म लेता है। जॉन लॉक John Locke का मत है - नवजात शिशु का मस्तिष्क कोरे कागज के समान होता है जिस पर अनुभव लिखता है। फिर भी शिशु जन्म के समय से कुछ जानता है जैसे-छीकना, हिचकी लेना, दूध पीना, हाथ पैर हिलाना, आराम न मिलने पर रोना, भूख की प्रवृत्ति, सर्दी लगने पर कँपकपाहट एवं गर्मी लगने पर गर्मी का अनुभव करता है। रोशनी की चमक तथा तेज स्वर (आवाज) सुनकर चौंकना। जन्म के दो चार घंटे बाद पीड़ा संवेदना का अनुभव करता है तथा 24 घंटे में ही दूध एवं पानी के स्वाद को समझने लगता है।
2. द्वितीय सप्ताह **(Second Week)** - जब शिशु 9-10 दिन का हो जाता है तो वह रोशनी से नहीं घबराता उसकी ओर देख सकता है। चमकीली एवं बडे आकार की बस्तुओ को ध्यान से देखता है एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते समय प्रकाश का अनुसरण करता है।
3. पहला महीना **(First Month)**- शिशु कष्ट या भूख का अनुभव होने पर विभिन्न प्रकार से चिल्लाता है और हाथ में दी जानी वाली वस्तु के पकड़ने की चेष्टा करता है।
4. दूसरा महीना **(Second Month)** - इस अवस्था में शिशु एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जायी जाने वाली वस्तु को ध्यान पूर्वक सुनता है आवाज सुनने के लिए सिर घुमता है। वस्तुओं को अधिक ध्यान से देखता हैं उसके पास गाना गाय जो तो ध्यान पूर्वक सुनता है अपनी माँ को देखकर कभी हँसता है तो कभी खुश होता है सब स्वरों की ध्वनियाँ उत्पन्न करता है।
5. चतुर्थ महीना **(Fourth Month)**- चार महीने की अवस्था में शिशु चीजों को पकड़ने लगता है। खोये हुये खिलौनों को खोजता है खिलौनों आदि को ध्यान से परखता है। क्रोध भी करने लगता है एवं हँसने भी लगता है। शिशु सब व्यंजनों की ध्वनियाँ करता है।
6. पंचम महीना **(Fifth Month)** – पाँच महीने की अवस्था में शिशु अपनी माँ को भली प्रकार पहचान लेता है। एवं चीजों को पकड़ने के लिए हाथ आगे बढाता है।

7. छठा महीना **(Sixth Month)** - शिशु सुनी हुयी आवाज का अनुकरण करता है। अपना नाम समझने लगता है, शिशु को सहारा देकर वह बैठने लगता है। वस्तुओं को लेकर अपने मुख के पास ले जाने का प्रयास करता है। कुछ संकेतों को भी समझने लगता है। प्रेम और क्रोध में अन्तर जान लेता है। अपने एवं पराये में अन्तर समझने लगता है।
8. सप्तम् महीना **(Seven Month)** - सात महीने की अवस्था में शिशु मुख से अनेक प्रकार की आवाजें निकालने पर प्रसन्न होता है एवं अपने खिलौने भी पहचाने का प्रयत्न करता है।
9. अष्टम महीना **(Eight Month)**- इस आयु में शिशु खिलौने को लेने पर पुनः लेने के लिए रोने लगता है। अनेकों खिलौनों के बीच अपनी पसन्द का खिलौना छाँटने का प्रयास करता है। दूसरे बच्चों के साथ खेलने में आनन्द लेता है।
10. नवम् महीना **(Nine Month)** - नौ महीने का होने पर बालक अपने आप बैठने लगता है।
11. दशम महीना **(Ten Month)** - शिशु विभिन्न प्रकार की आवाजों और दूसरे शिशु की गतियों का अनुकरण करता है। शिशु घंटी की आवाज सुनकर उसका अनुसरण करता है एवं ढकी हुयी वस्तुओं को खोलने लगता है तथा अपना खिलौना छिन जाने पर विरोध करता है।
12. प्रथम वर्ष **(First Year)**- शिशु छोटे-छोटे शब्दों को (चार शब्द) को बोलने लगता है दूसरे व्यक्तियों की क्रियाओं का अनुकरण करता है। दर्पण में अपना मुँह देखने लगता है। एक वर्ष की आयु में चलने का प्रयत्न प्रारम्भ कर देता है।
13. द्वितीय वर्ष **(Second Year)** - दो वर्ष की आयु में शिशु छोटे-छोटे वाक्यों का उच्चारण करने लगता है या दो शब्दों के वाक्यों का प्रयोग करता है वर्ष के अन्त तक उसके पास 100 से 200 तक शब्दों का भण्डार हो जाता है। चित्र में कुछ पूछने पर वह हाथ रखकर बता देता है तथा इस अवस्था में वह चॉकलेट या टॉफी आदि पर लिपटा कागज खोलने का प्रयास करता है या खोलता है। शिशु का भाषा विकास, सरल प्रश्न करना, समस्याओं को समझना, विकास का प्रमुख साधन ज्ञानेन्द्रियाँ होती हैं। परिवेश के प्रत्येक पदार्थ को देखता है एवं जानने का प्रयास करता है।
14. तृतीय वर्ष **(Third Year)**- इस अवस्था में वह पूछने पर अपना नाम बता देता है। हाथ कान, मुख आदि अंगो को पूछने पर हाथ रखकर बता देता है। सीधी या लम्बी रेखा देखकर वैसी ही रेखा खींचने का प्रयत्न करता है। तीन अंको की संख्या दोहराने लगता है एवं छोटे-छोटे वाक्यों को दोहराने लगता है तथा आमतौर पर क्या? क्यों? और कैसे? से प्रश्न आरम्भ करता है। गुडएनफ व्यक्ति का जितना भी मानसिक विकास होता है उसका आधा तीन वर्ष की आयु तक हो जाता है। वर्ट ने 1938 में एक अध्ययन किया तथा बताया कि 3 वर्ष का शिशु 4 से 5 मिनट तक तथा 4 वर्ष का शिशु 5-6 मिनट तक अपना ध्यान किसी वस्तु पर केन्द्रित कर सकता है।

15. चतुर्थ वर्ष **(Fourth Year)** - छोटी एवं बड़ी रेखाओं में अन्तर जान जाता है। अक्षर लिखना आरम्भ कर देता है। वस्तुओं को क्रम से रखता है। लगभग 12 छोटे-छोटे शब्दों के वाक्यों को दोहराने लगता है। चतुर्भुज की नकल करने लगता है शिशु को ठण्ड, नींद, भूख लगने का अन्तर पूछा जाए तो बता सकता है।
16. पंचम वर्ष **(Fifth Year)**- पाँच वर्ष की अवस्था में शिशु टोपी, खिलौने, गेंद आदि शब्दों की परिभाषा करने लगता है, नीले, पीले, हरे लाल आदि रंगों का अन्तर बता सकता है, हल्की एवं भारी वस्तुओं में अन्तर बता सकता है। अपना नाम लिखने लगता है। संयुक्त एवं जटिल वाक्य बोलने लगता है, 10-11 शब्दों के वाक्यों को स्मरण कर सकता है। विभिन्न वस्तुओं को क्रमानुसार गिन सकता है, छोटी-छोटी आज्ञाओं को मानने लगता है एवं वजन के अन्तर को समझने लगता है।
17. षष्ठम वर्ष **(Sixth Year)**- शिशु गिनती याद कर लेता है सरल प्रश्नों के उत्तर दे देता है तथा चित्र दिखाने पर उसके लुप्त भागों को दिखाता है शरीर के विभिन्न अंगों के नमा बता देता हैं। छोटी-छोटी सुनी कहानी सुनाने का प्रयास करता है। स्मरण शक्ति, विकसित होने लगती है। जिज्ञासा भी उत्पन्न होने लगती है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. Infant लैटिन भाषा के शब्द से बना है जिसका शाब्दिक अर्थ है _________________ ।
2. पहले दो सप्ताह का बच्चा_________________ कहलाता है।
3. जब बालक जन्म लेता है तब उसके मस्तिष्क का माप____________ होता है।
4. नवजात शिशु में हडिड्यों की संख्या लगभग ____________होती है।
5. ''पांच वर्ष तक की अवस्था शरीर तथा मस्तिष्क के लिए बड़ी ग्रहणशील होती है।'' यह किसका कथन है?
6. किसने शैशवावस्था को सीखने का आर्दश काल (Ideal period of learing) माना है।
7. __________ ने कहा है ''शैशवावस्था में सीखने की सीमा और तीव्रता विकास की ओर किसी अवस्था की तुलना में बहुत अधिक होती है।''

3.6 शैशवावस्था में सांवेगिक विकास Emotional development in Infancy

Bridges (व्रिजेज) के अनुसार- शिशु में जन्म के समय केवल उत्तेजना होती है और 2 वर्ष की आयु तक उसमें लगभग सभी संवेगों का विकास हो जाता है।

- शिशु जन्म के समय से ही संवेगात्मक व्यवहार की अभिव्यक्ति करता है, बच्चे का रोना, चिल्लाना तथा हाथ पैर पटकना आदि शिशु के संवेगात्मक व्यवहार को परिलक्षित करते हैं।
- शिशु के संवेगात्मक व्यवहार में अत्यधिक अस्थिरता होती है उसका संवेग कुछ ही समय के लिए रहता है और फिर समाप्त हो जाता है इच्छापूर्ति में बाधा उत्पन्न होने पर उसमें संवेगात्मक उत्तेजना होती है तथा इच्छा पूर्ण होने पर उसकी उत्तेजना समाप्त हो जाती है। उदारहणार्थ रोता हुआ शिशु खिलौने, दूध, मिठाई या आपनी पसन्द की वस्तु पाकर तुरंत रोना बन्द कर हंसना शुरु कर देता है तथा आयु बढने के साथ-साथ उसकी संवेगात्मक व्यवहार के स्थिरता आ जाती है।
- शिशु की संवेगात्मक अभिव्यक्ति धीरे-धीरे परिवर्तित होती जाती है। आयु बढने के साथ ऋणात्मक संवेगों की तीव्रता में कमी आती है जबकि घनात्मक संवेगों की तीव्रता में बढोत्तरी होती है उदाहरणार्थ दो या तीन माह का शिशु भूख लगने पर तब तक रोता है जब तक उसको दूध (खाना) नहीं मिल जाता है 4 या 5 वर्ष का शिशु इस प्रकार का व्यवहार नहीं करता है।
- प्रारम्भ में शिशु के संवेग अस्पष्ट होते हैं परन्तु धीरे-धीरे उसके संवेगों में स्पष्टता आने लगती है उसके संवेगात्मक विकास में क्रमशः परिवर्तन होता चला जाता है। उदाहरणार्थ- शिशु आरम्भ में खुश होने पर मुस्कराता है कुछ समय बाद वह अपनी प्रसन्नता को हँसकर विभिन्न प्रकार की ध्वनियां उत्पन्न करके या बोलकर व्यक्त करता है।
- लगभग दो वर्ष की आयु तक शिशु में सभी संवेगों का विकास हो जाता है - गेसेल ने अपने अध्ययन में पाया कि 5 सप्ताह के शिशु की भूख, क्रोध एवं कष्ट का चिल्लाहट में अन्तर हो जाता है तथा उसकी माँ उसका अर्थ समझने लगती है।
- मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि इस अवस्था में कुछ विशेष संवेगों का विकास होता है जो मूल प्रवृत्तियों से सम्बन्धित होते हैं इस समय शिशु की प्रेम भावना काम प्रवृत्ति पर आधारित होती है। शिशु का अपने अंगों से प्रेम करना, इस प्रवृत्ति को द्योतक है। फ्रायड के अनुसार इस प्रकार के आत्मप्रेम को नारसीसिज्म कहते हैं। इस समय भावना ग्रन्थियों का भी विकास होता है जब शिशु 4 या 5 वर्ष का होता है तो उसमें मातृ प्रेम या पितृ विरोधी

भावना तथा पितृ प्रेम या मातृ विरोधी भावना ग्रन्थि का विकास क्रमशः बालक व बालिका में होता है।

- शिशु कुछ बातों से भयभीत होना सीख जाते हैं। जरसील्ड **(Jersild E.T.- Child Psychology)** के मतानुसार ऊँचा शोर, गिरने का डर, अप्रिय अनुभव और स्मृतियों, भयभीत, व्यक्तियों का अनुकरण आदि। किन्तु जिन बातों से शिशु डरते हैं - अंधेरा कमरा, जानवर, अपरिचित व्यक्ति, अपरिचित पदार्थ, ऊँची आवाज, ऊँचा स्थान शरीर के किसी अंग में पीडा, गिरना, ज्ञानेन्द्रिय पर चोट लगना, शिशु व्यक्ति अनुभवों से ही डरना सीखता है तथा ये व्यक्तिगत अनुभव शिशु के अलग-अलग होते हैं। शिशुओं का भय कई रूपों में प्रकट होता है जैसे रोना, चीखना, साँस का कुछ समय के लिए रूक जाना, काम करते हुये छोड देना मिमियाना, भयजन के स्थिति से दूर भाग जाना, छिप जाना आदि।
- दो से 6 वर्ष का शिशु बड़ी जल्दी क्रोध में आ जाता है क्रोध उत्पन्न करने वाली परिस्थितियाँ है खिलौने के लिए झगड़ा, कपड़ों के लिए झगड़ा, इच्छापूर्ति में बाधा, दूसरे बालक द्वारा आक्रमण, गाली गलौज क्रोध भी कई प्रकार से प्रकट करते हैं- लोट-पोट हो जाना, शरीर कडा करना, ऊपर नीचे उछलना, लात मारना, चिल्लाना, पैर पटकना, छिप जाना आदि।

Bridges के अनुसार विभिन्न प्रकार के संवेगों के उदय होने की आयु निम्न सारणी में प्रस्तुत है।

तालिका

शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास

आयु	संवेग							
जन्म के समय	उत्तेजना	-	-	-	-	-	-	-	-
3 माह	उत्तेजना	आनन्द	कष्ट	-	-	-	-	-	-
6 माह	उत्तेजना	आनन्द	कष्ट	क्रोध	धृणा	भय	-	-	-
12 माह	उत्तेजना	आनन्द	कष्ट	क्रोध	धृणा	भय	स्नेह	उल्लास	-
18 माह	उत्तेजना	आनन्द	कष्ट	क्रोध	धृणा	भय	स्नेह	उल्लास	ईर्ष्या
24 मास	उत्तेजना	आनन्द	कष्ट	क्रोध	धृणा	भय	स्नेह	उल्लास	ईर्ष्या

3.7 शैशवावस्था में सामाजिक विकास(Social Development in Infancy)

प्रथम माह (First Month)- प्रथम माह में शिशु साधारण आवाज एवं मनुष्य की आवाज में अन्तर नहीं जानता, किसी व्यक्ति या वस्तु को देखकर स्पष्ट प्रतिक्रिया नहीं करता, तीव्र प्रकाश तथा ध्वनि के प्रति प्रतिक्रिया अवश्य करता है। रोने एवं नेत्रों को घुमाने की प्रतिक्रिया करता है। जब शिशु को गोद में सुलाया जाता है कन्धे से लगाया जाता है नहलाया जाता है या उसके कपडे बदले जाते हैं तो वह किसी अन्य व्यक्ति की अनुभूति करता है तथा उसकी अनुभूति का साधन स्पर्श है।

द्वितीय माह (Second Month) - शिशु मनुष्य की आवाज पहचानने लगता है। दूसरे व्यक्ति को अपने पास देखकर मुस्कराता है जब कोई व्यक्ति शिशु से बात या ताली बजाना या खिलौना दिखाता है। तो आवाज को सुनकर सिर घुमाता है।

तृतीय माह (Third Month)- शिशु अपनी माँ को पहचानने लगता है जब कोई व्यक्ति शिशु से बात करता है या ताली बजाता है तो वह रोते-रोते चुप हो जाता है। माँ के उससे दूर जाने पर रोता है तीन मास के शिशु में सामाजिक चेतना आने लगती है।

चतुर्थ माह (Fourth Month) - चौथे माह में शिशु पास आने वाले व्यक्ति को देखकर हँसता है उसे देखता है, कोई उसके साथ खेलता है तो वह हँसता है तथा अकेला रह जाने पर रोने लगता है। किसी व्यक्ति की गोद पर आने के लिए हाथ उठाना प्रारम्भ करता है।

पंचम माह (Fifth Month) - पाँचवे माह शिशु प्रेम एवं क्रोध के व्यवहार में अन्तर समझने लगता है यदि कोई उसके सामने हँसता है तो वह भी हंसने लगता है तथा डाँटने पर सहम जाता है।

षष्ठम माह (Sixth Month) - परिचित एवं अपरिचित व्यक्तियों में अन्तर करने लगता है, वह अपरिचितों से डरता है परिचित व्यक्तियों को पहचान लेता है बडों के प्रति आक्रामक व्यवहार करता है, वह बडों के बाल पेन कपडे, चश्मा आदि खीचने लगता है।

अष्टम् माह (Eight Month)- शिशु बोले जाने वाले शब्दों और हाव-भाव का अनुकरण करने लगता है। शिशु दूसरे बालकों की उपस्थिति आवश्यक मानता है।

नवम माह (Nineth Month)- दूसरों के शब्दों, हाव भाव तथा कार्यों का अनुकरण उसी प्रकार से करने का प्रयास करता है। अपनी ही परछाई के साथ खेलने का प्रयास करता है तथा उसे चूमने का प्रयास करता है।

प्रथम वर्ष (First year) - एक वर्ष की आयु में मना किए जाने वाले कार्य को नहीं करता है। घर के सदस्यों से हिल-मिल जाता है। मना करने पर मान जाता है। अपरिचितों के प्रति भय तथा

नापसन्दगी व्यक्त करता है। एक वर्ष का शिशु अपनी सामाजिकता का परिचय कई रुपों में देता है वह घिसटता हुआ अन्य व्यक्ति तक पहुंचता है पदार्थों को उठाता एवं पटकता है। नवीन वस्तुओं में रुचि लेता है।

द्वितीय वर्ष (Second year) - दो वर्ष की आयु में शिशु घर के सदस्यों को उनके कार्यों में कोई न कोई सहयोग देने लगता है इस प्रकार वह परिवार का सक्रिय सदस्य बन जाता है। सामुहिक खेल में खेलने लगता है।

तृतीय वर्ष **(Third year)** - तीसरे वर्ष में वह अन्य बालकों के साथ खेलने लगता है। खिलौनों के आदान-प्रदान तथा परस्पर सहयोग के द्वारा वह अन्य बालकों से सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करता है।

चतुर्थ वर्ष **(Fourth year)** - इस समय उसका सामाजिक व्यवहार आत्म केन्द्रित हो जाता है। इस अवस्था में वह प्रायः नर्सरी कक्षा (विद्यालयों) में जाने लगता है उसके व्यवहार में परिवर्तन आने लगता है। वह नये-नये सामाजिक सम्बन्ध बनाता है तथा नये सामाजिक वातावरण में स्वयं को समायोजित करता है।

पंचम वर्ष **(Fifth year)**- शिशु में नैतिकता की भावना का विकास होने लगता है वह जिस समूह का सदस्य बनता है उसके द्वारा स्वीकृत प्रतिमानों के अनुरुप अपने को बनाने का प्रयास करता है।

हरलॉक ने लिखा है (Hurluck) (P-270)- शिशु दूसरे बच्चों के सामुहिक जीवन से अनुकूलन करना, उनसे लेन-देन करना और अपने खेल के साथियों को अपनी वस्तुओं में साझीदार बनाना सीख जाता है, वह जिस समूह का सदस्य होता है उसके द्वारा स्वीकृत प्रतिमान के अनुसार अपने को बनाने की चेष्टा करता है।

षष्ठम वर्ष **(Sixth year)** - इस वर्ष में वह प्राथमिक स्कूल में जाने लगता है वहाँ उसकी औपचारिक शिक्षा का प्रारम्भ हो जाता है वहाँ वह नये वातावरण से अनुकूलन करना, सामाजिक कार्यों में भाग लेना एवं नये मित्र बनाना सीखता है। लडकियाँ गुडिया खेलती हैं, लडका अनुकरणात्मक खेल खेलते हैं। इस आयु में बच्चे लडते भी हैं तथा वह लडाई क्षणिक होती है। सामुहिक खेलों में भाग लेते हैं।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

8. "शिशु में जन्म के समय केवल उत्तेजना होती है और 2 वर्ष की आयु तक उसमें लगभग सभी संवेगों का विकास हो जाता है" यह कथन किसका है?
9. लगभग __________ की आयु तक शिशु में सभी संवेगों का विकास हो जाता है।

10. ________में शिशु साधारण आवाज एवं मनुष्य की आवाज में अन्तर नहीं जानता।
11. _______________की आयु में शिशु परिवार का सदस्य बन जाता है। लगता है।

3.8 सारांश

प्रस्तुत इकाई में शैशवावस्था में शिशु के शरीरिक, मानसिक, संवेगात्मक एवं सामाजिक विकास की प्रक्रिया एवं इस प्रक्रिया में होने वाले लक्षणों तथा परिवर्तनो का उल्लेख किया गाया है। शैशवावस्था जन्म के पश्चात की सबसे प्रथम एवं महत्वपूर्ण अवस्था है। इस भाग में एक सामान्य शिशु की शैशवावस्था में विकास की चर्चा की गयी है। जो कि सभी क्षेत्रों में सामान्य हो। विकास निरतंर चलने वाली प्रक्रिया है। इस अवस्था में रहकर शिशु अपने जीवन के महत्वपूर्ण काल को पूर्ण करते हुये अगली अवस्था में पहुंचता है। शिशु इस अवस्था में चलने से लेकर बोलना, समझना एवं समाज के नियम कानून (प्रतिमान) के साथ आगे की यात्रा का शुभारम्भ इस अवस्था से करता है। शिशु का मुस्कराना, हँसना, विरोध करना प्रश्न पूछना, क्या? क्यो? कैसे? इस रहस्यमयी संसार के बारे में जानने के लिए उत्सुक रहता है अर्थात शिशु की जिज्ञासा।

कोई भी विकास हो, चाहे वह मानव का हो या अन्य प्राणी का निश्चित अवस्थाओं में होता है। विकास की एक अवस्था दूसरी से भिन्न होती है। मनोवैज्ञानिकों ने सुविधा के लिए मानव विकास को विभिन्न अवस्थाओं में बांटकर उनके प्रकट होने वाले परिवर्तनों एवं अभिलक्षणों को पहचान कर उनका अध्ययन किया।

वैलन्टाइन ने शैशवावस्था को सीखने का आर्दश काल (Ideal period of learing) माना है।

वाटसन ने कहा है ''शैशवावस्था में सीखने की सीमा और तीव्रता विकास की ओर किसी अवस्था की तुलना में बहुत अधिक होती है।''

3.9 शब्दावली

1. **शैशवावस्था -** सामान्यतः शिशु के जन्म के उपरान्त के प्रथम 3 वर्ष शैशवावस्था कहलाते हैं।
2. **इन्फैंट (Infant)**-शिशु को अंग्रेजी भाषा में इन्फैंट (Infant) कहते हैं। Infant लैटिन भाषा के शब्द से बना है। अतः इन्फैन्ट का शाब्दिक अर्थ है बोलने में अक्षम अतः इन्फैन्ट शब्द का प्रयोग शिशु की उस अवस्था तक के लिए किया जाता है जब वे सार्थक शब्दों का प्रयोग प्रारम्भ करते हैं।

3.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

1. बोलने में अक्षम
2. नवजात शिशु
3. 270
4. 350 ग्राम
5. न्यूमैन (J. Newman) का
6. वैलन्टाइन ने
7. वाटसन
8. Bridges(ब्रिजेज) का
9. दो वर्ष
10. प्रथम माह
11. दो वर्ष

3.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सारस्वत, डा0 मालती - ''शिक्षा मनोविज्ञान की रूप रेखा'' आलोक प्रकाशन, लखनऊ, इलाहाबाद
2. गुप्ता, डा0 एस0पी0, आधुनिक शिक्षा मनोविज्ञान, शरदा पुस्तक भवन 11 यूनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद।
3. पाठक, पी0डी0, शिक्षा मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा-2
4. भटनागर, डा0 ए0वी, मीनाक्षी, तथा राजाराम,अधिगमकर्ता का विकास एवं शिक्षण अधिगम प्रक्रिया, आर0 लाल बुक डिपो, में रठ।
5. पाण्डेय, डा0 राम शकल, शिक्षा मनोविज्ञान, आर0 लाल बुक डिपो, में रठ।
6. मुकर्जी, श्रीमती सन्ध्या, बाल मनोविज्ञान, रेलवे क्रासिंग सीतापुर रोड़, लखनऊ।
7. पचौरी, डा0 गिरीश, शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार, आर लाल बुक डिपो में रठ।
8. भाई, योगेन्द्रजीत - शिक्षा मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशस, आगरा-2

3.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. शैशवावस्था किसे कहते हैं
2. Bridges (ब्रिजेज) के अनुसार शैशवावस्था में विभिन्न प्रकार के संवेगों का उल्लेख कीजिये।
3. शैशवावस्था में भार एवं लम्बाई के बारे में लिखिये।
4. शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास का वर्णन कीजिए?

5. शैशवावस्था में विकास की प्रक्रिया के बारे में विस्तार से वर्णन कीजिये।
6. शैशवावस्था में मानसिक विकास किस प्रकार से होता है। समझाइए?

इकाई-4 बाल्यावस्था में शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक तथा सामाजिक विकास

Childhood -with respect to Physical, Mental, Emotional and Social development

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 बाल्यावस्था
 4.3.1 बाल्यावस्था में शारीरिक विकास
 4.3.2 बाल्यावस्था में मानसिक विकास
 4.3.3 बाल्यावस्था में सामाजिक विकास
 4.3.4 बाल्यावस्था में संवेगात्मक विकास
4.4 बाल्यावस्था में विभिन्न विकासों को प्रभावित करने वाले कारक
4.5 बाल्यावस्था में शिक्षा का स्वरूप
4.6 सारांश
4.7 शब्दावली
4.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर
4.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
4.10 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

बालक के विकास की प्रक्रिया उसके जन्म से पूर्व माता के गर्भ से ही प्रारम्भ हो जाती है और जन्म के पश्चात् यह विकास प्रक्रिया शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था तथा प्रौढ़ावस्था तक क्रमशः चलती रहती है। विकास की इन विभिन्न अवस्थाओं में बालक का कई प्रकार से विकास होता है यथा-शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक विकास आदि । इस प्रकार स्पष्ट है कि मानव विकास प्रक्रिया जन्म से लेकर जीवनपर्यन्त चलती रहती है। जन्म से लेकर 6 वर्ष की आयु तक शैशवावस्था होती है तथा उसके पश्चात् बालक बाल्यावस्था में प्रवेश करता है। यह अवस्था

बालक के व्यक्तित्व के निर्माण की अवस्था होती है। बालक में इस अवस्था में विभिन्न आदतों, व्यवहारों, रुचि एवं इच्छाओं के प्रतिरूपों का निर्माण होता है। कोल एवं ब्रूस ने इस अवस्था को जीवन का ' अनोखा काल' बताते हुए कहा है- " वास्तव में माता-पिता के लिए बाल विकास की इस अवस्था को समझना कठिन है।'' इस अवस्था को समझना इसलिए कठिन कहा गया है क्योंकि इस अवस्था में बालक के व्यवहार में अनेकों अनोखे परिवर्तन दिखाई देते हैं।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

- बाल्यावस्था की महत्ता की विवेचना कर सकेंगे।
- बाल्यावस्था में बालक के शारीरिक विकास को वर्णित कर सकेंगे।
- बाल्यावस्था में बालक के मानसिक विकास की व्याख्या सकेंगे।
- बाल्यावस्था में बालक के सामाजिक विकास के बारे में जान सकेंगे।
- बाल्यावस्था में बालक के संवेगात्मक विकास को वर्णित कर सकेंगे।
- बाल्यावस्था में बालक के शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों की समीक्षा कर सकेंगे।
- बाल्यावस्था में बालक के मानसिक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों पर चर्चा कर सकेंगे।
- बाल्यावस्था में बालक के सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- बाल्यावस्था में बालक के संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों की समीक्षा कर सकेंगे।
- बाल्यावस्था में बालकों की शिक्षा व्यवस्था को समझ सकेंगे।

4.3 बाल्यावस्था

शैशवावस्था के बाद बालक बाल्यावस्था में प्रवेश करता है। बाल्यावस्था में आने तक बालक इतना परिपक्व हो जाता है कि वह अपने आस-पास के वातावरण से पूर्ण रूप से अपरिचित नहीं रहता है। बाल्यावस्था को मानव जीवन का स्वर्णिम काल कहा जा सकता है क्योंकि बाल्यावस्था बालक के व्यक्तित्व निर्माण की अवस्था होती है। यह बालक की निर्माणकारी अवस्था होती है। इस अवस्था में वह जिस वैयक्तिक एवं सामाजिक व्यवहार को तथा शिक्षा सम्बंधी बातों को सीखता है वह उसके भावी जीवन की आधारशिला होती है। बालक के शैक्षिक, सामाजिक, नैतिक एवं संवेगात्मक

विकास की नींव बाल्यावस्था में ही मजबूत होती है, जो आगे चलकर उसे एक परिपक्व मानव बनाती है। बाल्यावस्था में जो व्यवहार बालक के साथ किया जाता है उसका प्रभाव बालक के व्यक्तित्व पर दूरगामी होता है। मानव जीवन में बाल्यावस्था के महत्व पर प्रकाश डालते हुए **जोन्स, सिमसन एवं ब्लेयर** का कहना है- शैक्षिक दृष्टिकोण से जीवन-चक्र में बाल्यावस्था से अधिक महत्वपूर्ण अवस्था और कोई नहीं है। जो अध्यापक इस अवस्था के बालकों को शिक्षा देते हैं, उन्हें बालकों की, उनकी आधारभूत आवश्यकताओं का, उनकी समस्याओं का और उन परिस्थितियों की पूर्ण जानकारी होनी चाहिए, जो उनके व्यवहार को रूपान्तरित और परिवर्तित करती है।

सामान्यतः बाल्यावस्था लगभग 6 से 12 वर्ष तक मानी जाती है। यह अवस्था आगे आने वाले जीवन की तैयारी की अवस्था होती है। बालक की शिक्षा आरम्भ करने की सबसे उपयुक्त आयु मानी गयी है। इसीलिए मनोवैज्ञानिकों ने इस आयु को 'प्रारम्भिक विद्यालय की आयु' कहा गया है

4.3.1 बाल्यावस्था में शारीरिक विकास

व्यक्ति के विकास में बाल्यावस्था में शारीरिक विकास का बहुत महत्व है। सामान्य रूप में यदि हम देखें तो यह स्पष्ट होता है कि शारीरिक विकास के अन्तर्गत बालक का कद, भार, शरीर का विकास, लम्बाई आदि आते हैं। वाह्य अंगों के साथ-साथ आंतरिक अंगों का भी विकास होता है और इनका उत्तम प्रकार से विकास बालक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को निर्धारित करता है। बाल्यावस्था में शारीरिक विकास निम्न प्रकार से होता है-

भार

इस अवस्था में बालिकाओं का भार बालकों की अपेक्षा अधिक होता है क्योंकि बालिकाओं में बालकों की अपेक्षा किशोरावस्था जल्दी आ जाती है। बालिकाओं के वजन में 9 से 12 वर्ष के बीच वृद्धि की दर तीव्र रहती है और प्रतिवर्ष लगभग 14 पौण्ड वजन बढ़ता है। इसके विपरीत बालकों का वजन कम बढ़ता है।

लम्बाई

लम्बाई में होने वाली वृद्धि पर वैयक्तिक भिन्नताओं, संतुलित भोजन, पर्यावरण, बीमारी एवं आनुवांशिक कारकों का प्रभाव पड़ता है। इस अवस्था में लम्बाई धीमी गति से बढ़ती है तथा बालकों की अपेक्षा बालिकाओं की लम्बाई अधिक बढ़ती है।

हड्डियां

इस अवस्था में आते-आते हड्डियों की संख्या में वृद्धि हो जाती है तथा इनकी संख्या 270 से बढ़कर 350 हो जाती है। बाल्यावस्था में बालक एवं बालिकाओं की हड्डियों में दृढ़ता आनी प्रारम्भ हो जाती हे।

दांत

लगभग 6-7 वर्ष में बालक एवं बालिकाओं के दूध के दांत टूटने लगते हैं तथा उनके स्थान पर स्थाई दांत निकलने लगते हैं तथा 12-13 वर्ष तक सभी स्थाई दांत निकल आते हैं।

अन्य अंगों का विकास

बाल्यावस्था के प्रारम्भ से लेकर, अंत तक बालक एवं बालिकाओं के सभी अंगों का लगभग पूर्ण विकास हो जाता है। बाल्यावस्था में बालकों की अपेक्षा बालिकाओं में विकास प्रक्रिया तीव्र गति से होती है।

बाल्यावस्था में मानसिक विकास

बालक का मानसिक विकास बाल्यावस्था में महत्वपूर्ण भूमिका रखता है। बाल्यावस्था में मानसिक विकास से तात्पर्य बालक की सोचने, समझने, स्मरण करने, विचार करने तथा समस्या समाधान करने, ध्यान लगाने की शक्ति, प्रत्यक्ष ज्ञान और संकल्पना, जिज्ञासा एवं चिंतन आदि से है। बाल्यावस्था में मानसिक योग्यताओं का लगभग पूर्ण विकास हो जाता है। बालक की मानसिक विशेषताओं को निम्न रूप से स्पष्ट किया जा सकता है-

- बाल्यावस्था के प्रथम वर्ष में अर्थात् छठे वर्ष में बालक सरल प्रश्नों के उत्तर दे सकता है। बिना रुके 15 तक गिनती सुना सकता है। समाचार पत्रों में बने चित्रों के नाम बता सकता है।
- सातवें वर्ष में छोटी-छोटी घटनाओं का वर्णन करने में सक्षम होता है तथा विभिन्न वस्तुओं में समानता एवं अंतर बता सकता है।
- ऑठवें वर्ष में 17-18 शब्दों को वाक्यों को दुहराने के साथ छोटी-छोटी कहानियों एवं कविताओं को कंठस्थ करके सुनाने की क्षमता विकसित हो जाती है।
- नौवें वर्ष में दिन, तारीख बताने के साथ पैसे गिनने की योग्यता उसमें आ जाती है।
- दसवें वर्ष में बालक 3-4 मिनट में 60-70 शब्द कह पाने में समर्थ हो जाता है।
- ग्यारहवें वर्ष में बालक में तर्क, जिज्ञासा एवं निरीक्षण शक्ति का विकास हो जाता है। यह प्रत्यक्ष ज्ञान एवं निरीक्षण द्वारा वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करता है।
- बाहरवें वर्ष में बच्चा विभिन्न परिस्थितियों की वास्तविकता को जानने का प्रयास करता है। इसमें विवेक एवं बुद्धि होने के कारण दूसरों को सलाह दे सकता है।
- बाल्यावस्था बालक के विकास की महत्वपूर्ण अवस्था है। इस अवस्था में अभिभावकों एवं शिक्षकों को बालक के प्रति ज्यादा सजग रहने की आवश्यकता है क्योंकि यह काल ऐसा होता है जिसमें बालक का मानसिक विकास पूर्णता की कगार पर होता है।

4.3.2 बाल्यावस्था में सामाजिक विकास

बालक लगभग 6 वर्ष की अवस्था में पारिवारिक वातावरण से निकलकर विद्यालय के सम्पर्क में आता है। बालक के लिए विद्यालय का वातावरण घर की अपेक्षा बिल्कुल भिन्न होता है। विद्यालय में बालक सामाजिक नियम सीखने के साथ- साथ नये मित्रों के साथ सम्पर्क स्थापित करना सीख जाता है। वह विद्यालय में होने वाले सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भी अपनी पूर्ण सहभागिता का प्रदर्शन करता है। विद्यालय में अनुकूलन स्थापित होने के पश्चात् बालक के व्यवहार में अनेक परिवर्तन होते है। बालक में चंचलता होने के कारण वह किसी भी मित्र मंडली का सदस्य बन जाता है और यह मित्र मंडली उसे उचित-अनुचित कार्यों के लिए दिशा निर्देश प्रदान करती है जिससे बालक के सामाजिक विकास को नयी दिशा मिलती है। इस अवस्था के अंतिम काल को 'टोली अथवा समूह की आयु' कहा गया है। वह अपने समूह के नियमों एवचं आदर्शों का निष्ठा से पालन करते हैं। परिणामतः बालक में स्वतंत्रता सहायता एवं उत्तरदायित्व के गुणों का विकास होता है। अपने चंचल स्वभाव के कारण बालक अपने शिक्षकों के सम्मान के साथ-साथ उनका उपहास करने से भी नहीं चूकता है।बाल्यावस्था में बालक अपनी कक्षा के सभी सहपाठी को मित्र न बनाकर अपने मित्रों का चुनाव करने लगता है। मित्रों के चुनाव में उनकी पारिवारिक एवं सामाजिक प्रस्थिति का भी प्रभाव पड़ता है।

इस अवस्था में बालक में नेता बनने की भावना अधिक दिखाई देती है। अच्छे गुणों के आधार पर वह प्रशंसा का पात्र बन जाता है और अपने समूह का नेता चुन लिया जाता है। बालक अच्छे एवं बुरे किसी भी समूह के सदस्य बन सकते हैं। अच्छे कार्यों में लिप्त समूह को समाज द्वारा स्वीकृति प्राप्त होती है तथा अवांछित कार्यों में लीन समूह समाज में निंदा का पात्र होता है।

इस काल में बालक को अपने प्रिय कार्यों में अत्याधिक रुचि हो जाती है, जो बालक एवं बालिकाओं में पृथक-पृथक होती है। इसी प्रकार बालक में अपने पास-पड़ोस के स्थानों, घटनाओं एवं व्यक्तियों के बारे में जानने की रुचि उत्पन्न हो जाती है और उनके बारे में अपने मित्रों को बताकर स्वयं को गौरान्वित महसूस करते हैं। इस प्रकार बाल्यावस्था में बालक के वांछित एवं अवांछित व्यवहार में निरंतर प्रगति होती रहती है। इस प्रकार वह एक सामाजिक प्राणी बनने की दिशा में अग्रसर होता है।

4.3.3 बाल्यावस्था में संवेगात्मक विकास

बालक की बाल्यावस्था को संवेगात्मक विकास का अनोखा काल माना जाता है। सम्पूर्ण बाल्यावस्था में बालक के संवेगों में अस्थिरता देखने को मिलती है। बाल्यावस्था में संवेगों की अभिव्यक्ति एक विशिष्ट प्रकार से होने लगती है। संवेगों में सामाजिकता का भाव आने से समाज के अनुकूल व्यवहार करने के लिए प्रेरित होने लगता है। इस प्रकार वह संवेगों की अभिव्यक्ति पर नियंत्रण करना सीख जाता है। भाषा ज्ञान सुदृढ़ होने से वह अपने भावों की अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से करना प्रारम्भ कर देता है। इसके साथ ही साथ बालक के अंदर भय के संवेग सक्रिय हो

जाते हैं परन्तु उसमें उत्पन्न भय शैशवावस्था से भिन्न होता है। यह भय उसके भविष्य में सफलता की चिंता, अभिभावको एवं शिक्षकों द्वारा कड़े व्यवहार से जुड़ा होता है।

इसी प्रकार बालक में निराशा, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, जिज्ञासा, स्नेह भाव एवं प्रफुल्लता के संवेग देखने को मिलते हैं। इस प्रकार बालक के चरित्र एवं व्यक्तित्व के निर्माण में संवेगों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। अतः शिक्षकों एवं अभिभावकों को उनके संवेगों के उचित दिशा में विकास के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए ताकि बालक के चरित्र एवं व्यक्तित्व का समुचित विकास हो सके।

शैशवावस्था में बालक के संवेगात्मक व्यवहार में आंधी तूफान जैसी स्थिति होती है और वह सामान्यतः रोना, चीखना, चिल्लाना जैसी गत्यात्मक क्रियाओं से अभिव्यक्त होते हैं परन्तु बाल्यावस्था में विशेषतः बाल्यावस्था के अंतिम वर्षों में बालक अपने संवेगों को उचित माध्यम से अभिव्यक्त करने ने समर्थ हो जाते हैं। वह सांवेगिक रूप से कुछ स्थिर होने लगते हैं, क्योंकि इस अवस्था तक बालक में भाषा का पूर्ण विकास हो जाता है एवं वे कुछ सामाजिक हो जाते हैं।

बाल्यावस्था में प्रदर्शित संवेग

बाल्यावस्था में बालक में अनेक नये संवेगों का प्रादुर्भाव होता है। इस अवस्था में बालक में प्रदर्शित होने वाले कुछ प्रमुख संवेग निम्नलिखित हैं-

1. भय
2. क्रोध
3. ईर्ष्या
4. आकुलता
5. स्नेह
6. हर्ष
7. प्रेम
8. प्रसंनता

4.3.4 बाल्यावस्था में संवेगों की विशेषताएं

इस अवस्था में बालकों के संवेग प्रौढ़ों से काफी भिन्नता रखते हैं। इनके संवेगों में अनेक विशेषताएं पायी जाती हैं जो इस प्रकार हैं-

लघु कालिक संवेग

बाल्यावस्था में बालकों के संवेग क्षणिक होते हैं। उनके संवेगों में स्थायित्वता का अभाव होता है। उनके संवेग कुछ मिनट तक ही प्रदर्शित होते हैं, उसके बाद समाप्त हो जाते हैं।

तीव्रता

यद्यपि इस अवस्था में बालक के संवेग लघु कालिक होते हैं तथापि उनमें तीव्रता अधिक पायी जाती है। इस अवस्था के बालक अपने संवेगों का प्रदर्शन अत्यंत द्रुत गति से करते हैं। जैसे यदि बालक में भय का संवेग उत्पन्न होता है तो उसमें अपने भय को छिपाने की क्षमता नहीं होती है, वह तुरन्त प्रदर्शित कर देते हैं।

परिवर्तनशीलता

इस अवस्था में बालकों के संवेग शीघ्र ही परिवर्तित भी हो जाते हैं। उनमें हँसने, रोने, मुस्कुराने, ईर्ष्या, प्रेम आदि संवेग जितनी जल्दी उत्पन्न होते हैं उतनी ही शीघ्रता से परिवर्तित भी हो जाते हैं।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. ______________ ने बाल्यावस्था को जीवन का 'अनोखा काल' कहा है
2. बाल्यावस्था को मानव जीवन का स्वर्णिम कालक्यों कहा जा सकता है ?
3. मनोवैज्ञानिकों ने बाल्यावस्था को _________________ कहा है।
4. बाल्यावस्था में आते-आते हड्डियों की संख्या में वृद्धि हो जाती है तथा इनकी संख्या 270 से बढ़कर _________ हो जाती है।
5. बाल्यावस्था के अंतिम काल को________________ कहा गया है।
6. सम्पूर्ण बाल्यावस्था में बालक के संवेगों में ______________ देखने को मिलती है।
7. बाल्यावस्था में बालक में प्रदर्शित होने वाले कुछ प्रमुख संवेगों के नाम लिखिए।

4.4 बाल्यावस्था में विभिन्न विकासों को प्रभावित करने वाले कारक

विकास में आनुवंशिकता तथा पर्यावरण के संप्रत्यय का अपना एक विशेष महत्व है। इनके महत्व पर प्रकाश डालने के पहले आपको यह बता देना उचित समझते हैं कि आनुवंशिकता तथा वातावरण जैसे शब्दों का प्रयोग मनोविज्ञान में किस अर्थ में होता है। माता-पिता से उनके बच्चों में शारीरिक गुणों तथा संगठनों का जीन्स द्वारा होने वाले संचरण का अध्ययन करने वाले विज्ञान को आनुवंशिकता की संज्ञा दी जाती है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने माता-पिता से उनके गुणों एवं शारीरिक संगठनों को प्राप्त करता है।

पर्यावरण से तात्पर्य उन सभी चीजों से होता है, जो गर्भधारण से मृत्यु तक उसे प्रभावित करती हैं तथा व्यक्ति को उत्तेजित और प्रभावित करता है। आनुवंशिकता द्वारा व्यवहार के

रचनातन्त्र के आवरण का निर्माण होता है जिसके अन्तर्गत व्यवहार एक निश्चित दिशा में वातावरण द्वारा विकसित होता है। अतः व्यक्ति का प्रत्येक व्यवहार आनुवंशिकता तथा वातावरण दोनों के अन्तःक्रिया का परिणाम तथा दोनों द्वारा ही निर्धारित होता है।

व्यक्ति का जीवन वंशानुक्रम द्वारा ही सम्भव होता है। व्यक्ति जिन गुणों एवं विशेषताओं को अपने वंश से प्राप्त करता है वे गुण एवं विशेषतायें वंशानुक्रम विशेषतायें होती हैं। है। व्यक्ति जिन गुणों एवं विशेषताओं को अपने वंश से प्राप्त करता है वे गुण एवं विशेषतायें वंशानुक्रम विशेषतायें होती हैं। उसकी मनोशारीरिक रचना पर वंशानुक्रम सम्बन्धी कारकों का विशेष प्रभाव पड़ता है। बालक की शारीरिक तथा मानसिक रचना का जनक वंशानुक्रम है। वंशानुक्रम, मानव जीवन सम्भव बनाता है तथा उनमें संवेग, तर्क शक्ति, बात-चीत करने की शक्ति, बुद्धि, विकासात्मक गुण, आन्तरिक शक्ति तथा कार्यात्मक क्षमता का समावेश करता है।

विकास को प्रभावित करने वाले वातावरण और संगठित साधनों के कुछ ऐसे विशेष कारक हैं, जो बच्चे के विकास की दशा पर निश्चित और विशिष्ट प्रभाव डालते हैं। बच्चों के विभिन्न विकासों पर प्रभाव डालने वाले निम्नलिखित प्रकार के कारक हैं:-

बाल्यावस्था में शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

शरीर वैज्ञानिकों ने स्पष्ट कि है कि गर्भाधान के समय स्त्री-पुरुष के शरीर सम्बन्धी जिस प्रकार के पित्रैकों (जीन्स) का संयोग होता है बच्चे के शरीर (लिंग, आकार-प्रकार, लम्बाई-मोटाई, रंग-रूप एवं आँख-नाक आदि की बनावट आदि) का विकास तदनुकूल ही होता है। पित्रैक ही शारीरिक रोगों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित करते हैं जो बच्चे किसी रोग के लक्षण साथ में लेकर पैदा होते हैं, वे प्रायः उन रोगों से ग्रस्त रहते हैं और उनका शारीरिक विकास सही रूप में नहीं हो पाता। शरीर वैज्ञानिकों ने यह भी स्पष्ट किया कि गर्भस्थ बच्चे के विकास में अन्तःस्रावी ग्रंथियों का बहुत प्रभाव पड़ता है। बाल्यावस्था में बालक का शारीरिक विकास अति तीव्र गति से होता है। उसका शारीरिक विकास अनेक वाह्य एवं आंतरिक कारणों से प्रभावित होता है जिसमें से कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं-

1. बालक की शारीरिक रचना एवं स्वास्थ्य अपने माता पिता से प्रभावित होता है। सामान्यतः स्वस्थ माता-पिता के बच्चों को स्वास्थ्य भी अच्छा ही होता है। शारीरिक विकार वाले माता-पिता की संतान भी तदनुरूप शारीरिकरूप से दुर्बल होते हैं।
2. बालक के समुचित विकास पर उसके आस-पास के वातावरण का भी प्रभाव पड़ता है। उनके स्वाभाविक विकास में उनका वातावरण जैसे-शुद्ध वायु, स्वच्छता, सूर्य का प्रकाश आदि महत्वपूर्ण रूप से सहायक होते हैं। बालक के पहनने के कपड़े एवं रहने का स्थान स्वच्छ तथा भोजन में पौष्टिकता उसके शारीरिक विकास को गति प्रदान करता है। बालक के शारीरिक विकास पर उसके द्वारा सेवन किए जाने वाले भोजन का भी प्रभाव पड़ता है।

चूंकि इस अवस्था में बालक अधिक क्रियाशील होता है। अतः उसे पर्याप्त मात्रा में पौष्टिक भोजन मिलना आवश्यक होता है अन्यथा इस उम्र के बालकों का शारीरिक विकास उतना नहीं होता जितना कि होना चाहिए।

3. स्वस्थ शारीरिक विकास के लिए दिनचर्या की नियमितता भी आवश्यक है। यदि बालक सोने, खाने, खेलने, पढ़ने जैसे अपने सभी कार्य नियमित रूप से तथा निश्चित समयानुसार करें तो इसका उसके शरीर पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है तथा वे सामान्यतः स्वस्थ रहते हैं।
4. शरीर की स्वस्थता के लिए पूर्ण निद्रा एवं विश्राम भी आवश्यक है। बाल्यावस्था में कम से कम 10 घंटे की नींद लेना अत्यंत आवश्यक है ताकि बालक के द्वारा दिन भर किए गये शारीरिक परिश्रम की थकान कम हो सके।
5. माता-पिता का स्नेहपूर्ण व्यवहार तथा शिक्षकों की सहानुभूति एवं सहयोग उनके शारीरिक विकास में सहयोग देता है।

बाल्यावस्था में मानसिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

क्लिनबर्ग के अनुसार वृद्धि प्रजाति पर निर्भर करती है। वंशानुक्रम सम्बन्धी जितने भी अध्ययन एवं प्रयोग किए गए हैं उनसे यह स्पष्ट होता है सामान्यता जिस प्रकार का मानसिक स्तर माता पिता का होगा वैसे ही बच्चे भी उसी प्रकार के होगें।

जो इसके अपवाद होते हैं उसका कारण प्रजाति और पूर्वज ही होते हैं और बुद्धि पर निर्भर करती हैं मानसिक शक्तियाँ-स्मरण, कल्पना एवं तर्क आदि। तब कहना न होगा कि मनुष्य के मानसिक विकास का भी मूल आधार वंशानुक्रम ही होता है।

1. बालक के मानसिक विकास पर उसके वंशानुक्रम का प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ता है। अधिकतर यही दृष्टिगत होता है कि बुद्धिमान माता-पिता की संतान बुद्धिमान तथा जड़ बुद्धि माता-पिता की संतान जड़ होती है।
2. बालक का पारिवारिक वातावरण भी उसके मानसिक विकास को प्रभावित करता है। चूंकि इस अवस्था में बालक पूरी तरह से परिपक्व नहीं हुआ होता है जिस कारण उस पर परिवार के वातावरण का प्रभाव अधिक पड़ता है।
3. परिवार की सामाजिक-आर्थिक स्थिति भी बालक के मानसिक विकास में सहयोग देती है। साधनों की उपलब्धता के कारण उच्च सामाजिक-आर्थिक स्थिति से आने वाले बालकों का मानसिक विकास निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले परिवार से आने वाले बालकों की अपेक्षा अधिक होता है।

4. बालक के मानसिक विकास में विद्यालय एक महत्वपूर्ण कारक है। विद्यालय में दी जाने वाली शिक्षा के द्वारा ही बालक के बौद्धिक विकास को उचित दिशा मिलती है। यही कारण है कि आज की शिक्षा व्यवस्था में बालक का पाठ्यक्रम उनकी रुचि एवं योग्यतानुसार रखा जाता है ताकि प्रत्येक बालक अपनी-अपनी क्षमताओं के अनुसार विकसित हो सकें।
5. बालक का शारीरिक स्वास्थ्य उसके मानसिक विकास को सर्वाधिक प्रभावित करता है क्योंकि जब तक हम पूर्णतः स्वस्थ नहीं होंगे तब तक हम किसी भी कार्य को बुद्धिमत्ता के साथ नहीं कर सकते। अतः बालक की मानसिक स्वस्थता उसकी शारीरिक स्वस्थता से प्रत्यक्ष रूप से सम्बंधित है।

बाल्यावस्था में सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

सामान्यतया व्यक्ति अकेला नहीं रहना चाहता क्योंकि जन्म के समय से ही वह दूसरों पर निर्भर होता है। प्रारम्भ में उसका सामाजिक भागीकरण कम होता है परन्तु धीरे-धीरे इसमें वृद्धि होती जाती है। प्रत्युत्तर में भी भिन्नता देखने को मिलती है। इन प्रत्युत्तरों का कारण व्यक्ति का दूसरों पर आश्रित होना है। इन प्रत्युत्तरों का प्रकार सामाजिक सम्बन्धों की विशिष्टता पर निर्भर होता है। सामाजिक सम्बन्ध सामाजिक प्रतिमान निश्चित करते हैं तथा व्यक्ति इन प्रतिमानों के अनुसार व्यवहार करता है। मनुष्य सामूहिकता की मूल प्रवृत्ति लेकर पैदा होता है और सीखने की सब शक्तियाँ भी लेकर पैदा होता है पर सीखता तो वह वही भाषा है जो उसके समाज में बोली जाती है, सीखता तो वह वही व्यवहार प्रतिमान है जो उसके समाज के होते हैं और इसी को उसका सामाजिक विकास कहते हैं। बाल्यावस्था में बालक का सामाजिक विकास भी अनेक कारकों से प्रभावित होता है जो इस प्रकार हैं-

1. बालक के सामाजिक विकास पर कुछ सीमा तक उसके वंशानुक्रम का भी प्रभाव पड़ता है।
2. बालक का शारीरिक एवं मानसिक विकास भी उसके सामाजिक विकास को प्रभावित करता है। स्वभावतः यदि बालक शारीरिक रूप से स्वस्थ एवं मानसिक रूप से परिपक्व होगा तभी उसमें सामाजिकता का तीव्रता से विकास सम्भव है।
3. बालक के सामाजिक विकास को उसकी सांवेगिक परिपक्वता भी प्रभावित करती है क्योंकि समाज में हर तरह के लोग मिलते हैं, उनसे समायोजन तभी स्थापित हो सकता है जब हम अपने क्रोध, भय, ईर्ष्या, द्वेष जैसे संवेगों को नियंत्रित रख व्यवहार प्रदर्शित करें।
4. बालक के जीवन में सामाजीकरण की प्रक्रिया घर से ही आरम्भ होती है। वह अपने परिवार में रहकर ही विभिन्न प्रकार के आचार-विचार, रीति-रिवाजों संस्कृति आदि को सीखता है जो उसके सामाजिक विकास पर बहुत प्रभाव डालते हैं।
5. बाल्यावस्था में बालक समूह में रहना प्रारम्भ कर देता है। वह अपना अधिकांश समय अपने मित्र समूह में व्यतीत करना पसंद करता है। इन समूहों में रह कर वह उसमें समायोजन करना

सीख जाता है। इस प्रकार से वह धीरे-धीरे सामाजिकता के गुणों को ग्रहण करना प्रारभ करता है।

6. परिवार की आर्थिक स्थिति भी बालक को अधिक अथवा कम सामाजिक बनने में सहायक होती है। धनी परिवार के बालक के रहने का स्थान तथा वहाँ का वातावरण निर्धन परिवार की अपेक्षा अधिक स्वस्थ होता है। उनके घर में सभी साधन उपलब्ध होते हैं। जो बालक में उचित सामाजिक गुणों के विकास में सहायक होते हैं।
7. विद्यालय का वातावरण भी बालक में सामाजिकता का विकास करने में सहायक होता है। यदि विद्यालय का वातावरण एकतंत्रीय हो तो बालक का सामाजिक विकास स्वस्थ रूप से उचित दिशा में नहीं होगा तथा इसके विपरीत विद्यालय के लोकतंत्रीय वातावरण में बालक स्वतंत्रतापूर्वक पूर्ण कुशलता के साथ अपने मित्रों एवं शिक्षकों के साथ व्यवहार करता है जो उसके सामाजिकरण का ही एक हिस्सा है।

बाल्यावस्था में संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

मैक्डूगल के अनुसार “मनुष्य में कुछ संवेग जन्मजात होते हैं और इनकी तीव्रता भिन्न-भिन्न मनुष्यों में भिन्न-भिन्न होती है” सच बात यह है कि मनुष्य की संवेगात्मक स्थिति उसके शरीर और मस्तिष्क पर निर्भर करती है और उसी पर उसका शारीरिक एवं मानसिक विकास निर्भर करता है ।बाल्यकाल तक बालक में लगभग सभी संवेग विकसित हो जाते हैं। बालक जैसे-जैसे बड़ा होता जाता है उसकी दुनिया भी बड़ी होने लगती है। बालक के संवेगात्मक व्यवहार को विद्यालय का वातावरण, हमजोलियों का साथ एवं व्यवहार तथा सामाजिक जीवन के लोग प्रभावित करने लगते है। ये सभी कारक बालक के संवेगों को सही दिशा प्रदान करने में प्रभावशाली भूमिका का निवर्हन करते है। कुछ प्रमुख कारक निम्नवत् हैं-

1. बालक के संवेगात्मक व्यवहार को थकान अत्यधिक प्रभावित करती है। थकान के कारण वह क्रोध, चिड़चिड़ेपन जैसे अवांछित संवेग अभिव्यक्त करने लगता है।
2. शारीरिक स्वस्थ्ता भी उसके संवेगात्मक विकास को उचित दिशा प्रदान करती है। बालक यदि शारीरिक रूप से स्वस्थ होगा तो वह किसी भी कार्य को पूर्ण उत्साह, लगन एवं प्रसन्नतापूर्वक करने का प्रयत्न करता है अतः बालक के स्वास्थ्य की दशा का उसके संवेगात्मक व्यवहार से घनिष्ठ सम्बंध होता है।
3. बालक के संवेगात्मक व्यवहार को न केवल स्वास्थ्य वरन् मानसिक योग्यता भी प्रभावित करती है। अधिक मानसिक एवं बौद्धिक योग्यता एवं क्षमता वाले बालकों का संवेगात्मक क्षेत्र अधिक विस्तृत होता है।
4. बालक का सांवेगिक व्यवहार उसके परिवार, वहां के वातावरण, परिवार की स्थिति आदि से बहुत अधिक प्रभावित होता है क्योंकि यदि परिवार का वातावरण आनंदमय एवं शांतिपूर्ण है तो बालक में भी स्वस्थ संवेगों का संचरण होगा। इसके विपरीत यदि परिवार में

कलह-क्लेश, लड़ाई-झगड़े का वातावरण उसके सांवेगिक पक्ष पर नकारात्मक प्रभाव डालता है तथा उसकी संवेगात्मक नकारात्मकता उसके सामाजिक व्यवहार को भी प्रभावित करती है।

5. यदि परिवार में माता-पिता का बालक के प्रति दृष्टिकोण सहयोगी एवं सहानुभूति पूर्ण है तथा उनके परस्पर सम्बंधों में मधुरता है तो बालक में संवेगों का विकास सकारात्मक रूप में होता है।

4.5 बाल्यावस्था में शिक्षा का स्वरुप

बाल्यावस्था बालक के जीवन की आधारशिला होती है। अतः यह आवश्यक है कि बालक के विकास के सभी पक्षों की विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षा की व्यवस्था की जाये क्योंकि शिक्षा एवं विकास एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बंधित है। अतः बालक की शिक्षा की उचित व्यवस्था का दायित्व न केवल शिक्षक पर वरन् माता-पिता तथा समाज पर भी है। उनकी शिक्षा व्यवस्था करते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है-

1. **शारीरिक विकास पर ध्यान-** इस अवस्था में बालक के शारीरिक विकास पर अधिक ध्यान देना चाहिए। जैसा कि कहा ही गया है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का विकास होता है। अतः बालक के स्वास्थ्य को बनाने के लिए भोजन की पौष्टिकता पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए साथ ही उन्हें खेलने की भी स्वतंत्रता दी जानी चाहिए। खेलकूद बालक के शरीर को स्वस्थ बनाने में एवं शारीरिक विकास में सहायक होते हैं।
2. **बाल मनोविज्ञान-**बालक के उचित विकास के लिए बाल मनोविज्ञान का ध्यान रखना बहुत आवश्यक है। अतः न केवल शिक्षक वरन् अभिभावक को भी बालक के मनोविज्ञान का ध्यान रखकर ही विकास करना चाहिए।
3. **मानसिक स्तर पर ध्यान-** मानसिक विकास के लिए बालकों को बौद्धिक वातावरण मिलना चाहिए। घर में और विद्यालय में उन्हें आवश्यकतानु सार वो सभी साधन उपलब्ध होने चाहिए जिसकी उन्हें आवश्यकता है। बालक में अनुकरण की शक्ति अधिक होली है। अतः माता-पिता एवं शिक्षकों को अच्छे आदर्श एवं आचरण प्रस्तुत करने चाहिए।
4. **संवेगात्मक विकास पर ध्यान-**बालक के सांवेगिक विकास के लिए माता-पिता एवं शिक्षकों को बालक के साथ सहानुभूतिपूर्ण एवं सहयोगी व्यवहार प्रदर्शित करना चाहिए ताकि वे अपने संवेगों को उचित रूप से व्यवस्थित करना सीख सकें। बालक में उत्पन्न होने वाले अवांछित संवेग जैसे क्रोध, घृणा, ईर्ष्या,द्वेष आदि को दमित तथा वांछित संवेग जैसे प्रेम, सहयोग, सहानुभूति आदि संवेगों को विकसित करने का प्रयत्न करना चाहिए।

5. **सामूहिक प्रवृत्ति का विकास-** इस अवस्था में पहुँचकर बालक अपना एक सामाजिक समूह विकसित कर लेता है। वह किसी भी कार्य को अकेले करना नहीं पसंद करता है वरन् समूह में अपने मित्रों के साथ करने में उसकी अधिक रुचि होती है। अतः उनमें सामूहिक प्रवृत्ति विकसित करने के लिए उन्हें सामाजिक समूहों जैसे स्काउट एवं गाइड, आदि में सम्मिलित होने के लिए अवसर प्रदान करना चाहिए।
6. **सामाजिक गुणों का विकास-** बाल्यावस्था में परिवार के बाद बालक विद्यालय में प्रवेश करता है। परिवार के बाद विद्यालय ही वह संस्था है जहाँ बालक का सामाजीकरण होता है। अतः शिक्षक का यह कर्तव्य है कि वह विद्यालय में बालकों के लिए सामूहिक खेलों, प्रतियोगिताओं आदि का आयोजन कर उनमें रूप से समायोजित ढंग से सामूहिक कार्यों को करने की प्रवृत्ति विकसित करे।
7. **रचनात्मक प्रवृत्तियों का विकास -** इस अवस्था में बालक में नई-नई चीजों के बारे में जानने व समझने की जिज्ञासा अधिक होती है। वे अपने खेलने की छोटी-छोटी चीजों से कुछ नया बनाने के लिए प्रयत्नशील होते हैं। उनकी इस रचनात्मकता को विकसित करने के लिए विद्यालय एवं घर में विभिन्न रचनात्मक कार्यों की व्यवस्था होनी चाहिए।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. विकास में____________ तथा___________ के संप्रत्यय का अपना एक विशेष महत्व है।
2. ___________ से तात्पर्य उन सभी चीजों से होता है, जो गर्भधारण से मृत्यु तक उसे प्रभावित करती हैं तथा व्यक्ति को उत्तेजित और प्रभावित करता है।
3. व्यक्ति जिन गुणों एवं विशेषताओं को अपने वंश से प्राप्त करता है वे गुण एवं विशेषतायें___________ होती हैं।
4. “मनुष्य में कुछ संवेग जन्मजात होते हैं और इनकी तीव्रता भिन्न-भिन्न मनुष्यों में भिन्न-भिन्न होती है” यह कथन किसका है?
5. स्वस्थ _________ में ही स्वस्थ _________ का विकास होता है।

4.6 सारांश

शैशवावस्था के पश्चात् बालक बाल्यावस्था में प्रवेश करता है। यह बालक का निर्माणकारी काल माना जाता है। सामान्यतः बाल्यावस्था 6 वर्ष से लेकर 12 वर्ष तक मानी जाती है। इस अवस्था में बालक का लगभग पूर्ण शारीरिक एवं मानसिक विकास हो जाता है। इस अवस्था में बालक में

सामाजिकता के भाव का भी प्रवेश हो जाता है एवं संवेगों में भी स्थायित्वता देखी जाती है। बच्चा जन्म से विशेष प्रकार की बुद्धि और विशेष प्रकार की अभिक्षमता लेकर पैदा होता है परन्तु इनके आधार पर वह सीखता वही है जो उसे सिखाया जाता है और सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को शिक्षा कहते हैं। आप किसी भी प्रकार की योग्यताओं को लीजिए, चाहे मानसिक योग्यताओं को, चाहे सामाजिक व्यवहार सम्बन्धी योग्यताओं को, चाहे कला-कौशल सम्बन्धी योग्यताओं को और चाहे व्यवसाय सम्बन्धी योग्यताओं को, इन सबके उचित विकास के लिए उचित शिक्षा की आवश्यकता होती है, उचित पर्यावरण की आवश्यकता होती है। बालक में होने वाले इन शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं संवेगात्मक परिवर्तनों एवं विकास के लिए अनेक उत्तरदायी कारक हैं जो बालक के उक्त विकास में सहयोगी के रूप में कार्य करते हैं। अतः यह आवश्यक है कि बालक के विकास के सभी पक्षों की विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षा की व्यवस्था की जाये

4.7 शब्दावली

1. **आनुवंशिकता**- माता-पिता से उनके बच्चों में शारीरिक गुणों तथा संगठनों का जीन्स द्वारा होने वाले संचरण का अध्ययन करने वाले विज्ञान को आनुवंशिकता की संज्ञा दी जाती है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने माता-पिता से उनके गुणों एवं शारीरिक संगठनों को प्राप्त करता है।
2. **पर्यावरण**- पर्यावरण से तात्पर्य उन सभी चीजों से होता है, जो गर्भधारण से मृत्यु तक उसे प्रभावित करती हैं तथा व्यक्ति को उत्तेजित और प्रभावित करता है।

4.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

1. कोल एवं ब्रूस
2. बाल्यावस्था को मानव जीवन का स्वर्णिम काल कहा जा सकता है क्योंकि बाल्यावस्था बालक के व्यक्तित्व निर्माण की अवस्था होती है।
3. प्रारम्भिक विद्यालय की आयु
4. 350
5. 'टोली अथवा समूह की आयु'
6. अस्थिरता
7. बाल्यावस्था में बालक में प्रदर्शित होने वाले कुछ प्रमुख संवेग निम्नलिखित हैं-भय, क्रोध, ईर्ष्या, आकुलता, स्नेह, प्रेम,प्रसंनता
8. आनुवंशिकता तथापर्यावरण
9. पर्यावरण
10. वंशानुक्रम विशेषतायें

11. मैक्डूगल
12. शरीर, मन

4.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. पाठक, पी0डी0, शिक्षा मनोविज्ञान, अग्रावाल पब्लिकेशन्स, आगरा, वर्ष 2010-2011
2. सिंह, अरूण कुमार, उच्चत्तर सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारूसीदास, दिल्ली, वर्ष 2009
3. मिश्रा, पी0डी0, मिश्रा, बीना, समाज कार्य विभाग, व्यक्ति और समाज, न्यू रायल बुक कम्पनी लखनऊ वर्ष 2010
4. तिवारी, रमें श चन्द्र, मनश्चिकित्सकीय समाज कार्य, न्यू रायल बुक कम्पनी लखनऊ वर्ष 2010
5. सिंह, डी0के0, पालिवाल, सौरभ, मिश्रा, रोहित, मानव समाज संगठन एवं विघटन के मूल तत्व, न्यू रायल बुक कम्पनी लखनऊ वर्ष 2010

4.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. बाल्यावस्था में शारीरिक विकास का शैक्षिक महत्व बताइए।
2. बाल्यावस्था में सामाजिक विकास किस प्रकार होता है ?
3. बाल्यावस्था में मानसिक विकास की विशेषताएं बताइए।
4. बाल्यावस्था को बालक के विकास का स्वर्णिम काल क्यों कहा जाता है ?
5. बाल्यावस्था में बालकों के संवेगों में किस प्रकार का परिवर्तन देखा जाता है ?
6. बालक के संवेगों को उचित दिशा प्रदान करने में सहायक कारकों को व्याख्यित कीजिए।
7. बालक की मानसिक वृद्धि एवं विकास किन कारकों से प्रभावित होता है ?
8. विद्यालय एवं परिवार किस प्रकार बालक में सामाजिकता का विकास करने में सहायक हैं ?
9. बाल्यावस्था में बालक का शारीरिक विकास किन कारकों से प्रभावित होता है ?
10. बाल्यावस्था में बालक की शिक्षा व्यवस्था किस प्रकार की जानी चाहिए ?

इकाई-5 किशोरावस्था में शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक तथा सामाजिक विकास
Adolescence -with respect to Physical, Mental, Emotional and Social development

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 किशोरावस्था
 5.3.1 किशोरावस्था में शारारिक विकास
 5.3.2 किशोरावस्था में मानसिक विकास
 5.3.3 किशोरावस्था में सामाजिक विकास
 5.3.4 किशोरावस्था में संवेगात्मक विकास
5.4 किशोरावस्था में विभिन्न विकासों को प्रभावित करने वाले कारक
5.5 किशोरावस्था में शिक्षा का स्वरूप
 5.5.1 शारीरिक विकास के लिए शिक्षा
 5.5.2 मानसिक विकास के लिए शिक्षा
 5.5.3 सामाजिक विकास के लिए शिक्षा
 5.5.4 संवेगात्मक विकास के लिए शिक्षा
 5.5.5 किशोर मनोविज्ञान का ज्ञान
5.6 सारांश
5.7 शब्दावली
5.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर
5.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
5.10 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

सम्पूर्ण शारीरिक आकार व शरीर के प्रत्येक भाग के बढ़ने में जो शारीरिक बदलाव परिलक्षित होते हैं, जो कि कोशिकाओं के आकार की बढ़त का प्रतिफल है, इसे वृद्धि कहते हैं। विकास कोशिकाओं के जुड़ाव और व्यक्तित्व में होने वाले परिवर्तनों को प्रदर्शित करता है। एक बच्चा शरीर से बड़ा हो सकता है लेकिन विकसित भी हो यह आवश्यक नहीं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वृद्धि पूर्णता शारीरिक होती है। वर्तमान मनोविज्ञान में मनुष्य का अध्ययन एक मनोशारीरिक एवं सामाजिक प्राणी के रूप में किया जाता है और उसके शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक तीनों पक्षों का अध्ययन किया जाता है। शरीर के होने वाले बदलाव जोकि बढ़त के साथ होते हैं और सम्पूर्ण शरीर के आकार व प्रकार को प्रभावित करते हैं। यह प्रभाव कुछ गुणों द्वारा परिलक्षित होते रहते हैं। शारीरिक पक्ष में उसकी शारीरिक अभिवृद्धि एवं विकास का अध्ययन किया जाता है, मानसिक पक्ष में उसके मानसिक विकास, बुद्धि एवं मानसिक क्षमताओं का अध्ययन किया जाता है और सामाजिक पक्ष में उसकी सामाजिकता, समायोजन क्षमता, सामाजिक व्यवहार और व्यक्तित्व का अध्ययन किया जाता है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चातआप –

- किशोरावस्था के अर्थ के बता सकें।
- किशोरावस्था में बालक के शारीरिक विकास के विषय में समीक्षा कर सकेंगे।
- किशोरावस्था में बालक के मानसिक विकास की विवेचना कर सकेंगे।
- किशोरावस्था में बालक के सामाजिक विकास को वर्णित कर सकेंगे।
- किशोरावस्था में बालक के संवेगात्मक विकास पर चर्चा कर सकेंगे।
- किशोरावस्था में बालक के शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- किशोरावस्था में बालक के मानसिक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों की व्याख्या कर सकेंगे।
- किशोरावस्था में बालक के सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों की समीक्षा कर सकेंगे।
- किशोरावस्था में बालक के संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- किशोरावस्था में बालकों की शिक्षा व्यवस्था को समझ सकेंगे।

5.3 किशोरावस्था

किशोरावस्था विकास की अत्यन्त महत्वपूर्ण सीढ़ी है। किशोरावस्था का महत्व कई दृष्टियों से दिखाई देता है, प्रथम यह युवावस्था की ड्योढ़ी है जिसके ऊपर जीवन का समस्त भविष्य आधारित होता है। द्वितीय यह विकास की चरमावस्था है। तृतीय यह संवेगात्मक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण मानी जाती है। इस अवस्था में बालक में अनेकों परिवर्तन होते रहते हैं तथा विभिन्न विशेषताएं परिपक्वता तक पहुँच जाती है। किशोरावस्था के लिए अंग्रेजी का शब्द Adolescence है यह लैटिन भाषा Adolecere शब्द से लिया गया है जिसका अर्थ है- ''परिपक्वता की ओर बढ़ना। अतः स्पष्ट है कि किशोरावस्था वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति बाल्यावस्था के बाद पदार्पण करता है।'' इस अवस्था का प्रसार 11-13 वर्ष से 21 तक होता है। किशोरावस्था के प्रारम्भिक वर्षों में विकास की गति अत्यधिक तीव्र होती है।

किशोरावस्था अत्यंत संक्रमणकाल की अवधि होती है। इस अवस्था में किशोर स्वयं को बाल्यावस्था तथा प्रौढ़ावस्था के मध्य अनुभव करता है जिस कारण वह न तो बालक और न ही प्रौढ़ की तरह व्यवहार कर पाता है फलतः वह अपने व्यवहार को निश्चित करने में कठिनाई का अनुभव करता है। किशोरावस्था में अनेक प्रकार के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक एवं व्यवहारिक परिवर्तन एवं विकास दिखाई देते हैं। इन परिवर्तनों के कारण उनकी रुचियों, इच्छाओं आदि भी परिवर्तित हो जाती हैं। इन्हीं सब कारणों किशोरावस्था का जीवन के विकास कालों में काफी महत्व है।

5.3.1किशोरावस्था में शारारिक विकास

मनुष्य के शारीरिक विकास से तात्पर्य उसके शारीरिक ढांचे नाड़ी तन्त्र, हृदय तथा रक्त संचार तन्त्र श्वसन तन्त्र, पाचन संस्थान, मांसपेशियों और अन्तस्त्रावी ग्रंथियों में होने वाली वृद्धि और उसकी मनोशारीरिक क्रियाओं में होने वाले परिवर्तनों से होता है। मनुष्य का शारीरिक व्यवहार उसके मानसिक व्यवहार से प्रभावित होता है। सच बात यह है कि मनुष्य का शारीरिक एवं मानसिक व्यवहार एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं। मनुष्य के शारीरिक विकास के अन्तर्गत इन सभी का अध्ययन किया जाता है।

शारीरिक विकास के अन्तर्गत शरीर रचना, स्नायु मण्डल, मांसपेशीय वृद्धि अंतः स्त्रावी ग्रन्थियों आदि प्रमुख रूप से आती हैं। बच्चे के शारीरिक विकास का उसके मानसिक तथा सामाजिक विकास पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि शैक्षिक दृष्टि से शारीरिक विकास को अत्यधिक महत्वपूर्ण स्वीकार किया जाता है। विकास की विभिन्न अवस्थाओं में शारीरिक विकास की प्रक्रिया भिन्न-भिन्न होती है। किशोरावस्था में बालक एवं बालिकाओं के शरीर के भार, आकार लम्बाई आदि सभी में परिवर्तन दिखाई देता है। इन्हीं परिवर्तनों के कारण बालक एवं बालिकाओं में

शारीरिक परिपक्वता आती है। किशोरावस्था में शारीरिक विकास सम्बंधी होने वाले शारीरिक परिवर्तन निम्नांकित है-

भार

किशोरावस्था 12 वर्ष की अवस्था से प्रारम्भ होती है। 12 से 15 साल तक बालको की अपेक्षा बालिकाओं का शारीरिक वजन अधिक होता है परन्तु 16 वर्ष के बाद बालकों का भार बालिकाओं की अपेक्षा अधिक होता है।

लम्बाई

इस अवस्था में बालक एवं बालिकाओं दोनों की ही लम्बाई बढ़ती है। बालकों की लम्बाई 18 वर्ष के बाद तक बढ़ती है, परन्तु लड़कियों की लम्बाई 16 वर्ष की आयु तक ही बढ़ती है।

अस्थि-विकास

इस अवस्था में अस्थियों में नमनीयता नहीं रह जाती है। वे दृढ़ एवं पूरी तरह से मजबूत हो जाती हैं।

सिर तथा मस्तिष्क

इस अवस्था में मस्तिष्क का भार 1200 तथा 1400 ग्राम के बीच होता है। 15-16 वर्ष की आयु तक पूर्ण मस्तिष्क का विकास हो जाता है।

इन्द्रियों का विकास

इस अवस्था में बालक एवं बालिकाओं की ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों का पूर्ण विकास हो जाता है।

आवाज में परिवर्तन

इस अवस्था में बालक एवं बालिकाओं की गले की थायराइड ग्रंथि की सक्रियता के कारण बालकों की आवाज में भारीपन आ जाता है तथा बालिकाओं की आवाज में मधुरता व कोमलता आ जाती है।

लैंगिक ग्रंथि

उत्तर किशोरावस्था में लैंगिक ग्रंथियों का आकार पूरा हो जाता है परन्तु कार्य के दृष्टिकोण से परिपक्वता कई वर्षों बाद आती है।

पाचन तंत्र

इस अवस्था में बालक के आंतरिक अंगों में भी परिवर्तन आ जाता है। जैसे किशोरावस्था में बालक का आमाशय लम्बा हो जाता है। आंत की लम्बाई तथा परिधि भी बढ़ जाती है तथा मांसपेशियां भी मोटी हो जाती हैं। यकृत का वजन कम बढ़ता है तथा ग्रासनली लम्बी हो जाती है।

विभिन्न ग्रंथियों का प्रभाव

विशेषज्ञों का मानना है कि किशोरावस्था में होने वाले इन परिवर्तनों का आधार ग्रंथियां होती हैं। इन ग्रंथियों में गलग्रंथि, उप गलग्रंथि, उपवृक्क ग्रंथि पौष ग्रंथि तथा प्रजनन ग्रंथि आदि प्रमुख हैं जिनमें होने वाले स्राव के कारण ही व्यक्ति के शरीर में विभिन्न परिवर्तन देखे जाते हैं।

5.3.2किशोरावस्था में मानसिक विकासः

किशोरावस्था में शारीरिक परिवर्तन की भाँति मानसिक परिवर्तन भी तेजी से होता है। इस अवस्था के अंत तक बालक का अधिकतम मानसिक विकास हो जाता है तथा आगे के जीवन में इन क्षमताओं का मात्र सुदृढ़ीकरण होता है। किशोरावस्था में होने वाले मानसिक विकास के प्रमुख पहलू इस प्रकार है-

चिंतन में औपचारिक संक्रियाएं

इस अवस्था में बालक में चिंतन शक्ति विकसित हो जाती है। वह किसी अमूर्त विषय अथवा घटना पर चिंतन करने में सक्षम हो जाता है। उसके चिंतन में क्रमबद्धता आ जाती है जिसकी सहायता से वह आलोचना एवं व्याख्या करने में सक्षम होता है।

एकाग्रचितता

इस अवस्था में किशोरों में एकाग्रचितता के लक्षण परिलक्षित होती हैं। वह अधिक समय तक किसी विषय विशेष पर ध्यान केन्द्रित कर पाने में सक्षम हो जाते हैं।

नैतिकता की समझ

किशोरावस्था के मानसिक विकास की एक विशेषता यह भी है कि इस अवस्था में किशोरों में नैतिक मूल्यों का विकास हो जाता है। वह उचित-अनुचित में अंतर करना सीख जाते हैं जिससे वह मूल्यों का आलोचनात्मक मूल्यांकन करने में सक्षम होते हैं।

बुद्धि का अधिकतम उपयोग

किशोरावस्था तक किशोर एवं किशोरियों की बुद्धि का भी अधिकतम विकास हो जाता है। उनमें बौद्धिक शक्ति विकसित हो जाती है जिसके माध्यम से ही वह समाज में अपना एक स्थान बनाने में सक्षम होता है।

तर्क शक्ति का विकास

किशोरावस्था में बालक की तार्किक शक्ति विकसित हो जाती है। वह प्रत्येक बात को तर्क के साथ स्पष्ट करने का प्रयत्न करता है तथा छोटी-छोटी बात पर सदा विवाद के लिए तत्पर रहता है।

समस्या समाधान शक्ति का विकास

तर्क शक्ति के विकास के कारण ही किशोरों में इस अवस्था में समस्या समाधान शक्ति का भी विकास हो जाता है। इस अवस्था में बालक अपनी समस्या पर चिंतन कर तर्क-वितर्क के आधार पर उसका समाधान करने का प्रयत्न करता है।

निर्णय शक्ति का विकास

इस अवस्था में उनके मानसिक परिवक्वता का स्तर इतना ऊँचा हो जाता है कि वह किसी भी विषय पर सोच विचार कर स्वयं को निर्णय लेने के योग्य स्वयं को समझने लगता है। वह वास्तकिता एवं आदर्शों में अंतर करने लगता है।

स्मृति शक्ति का विकास

किशोरावस्था तक आते-आते बालक का शब्द भण्डारण और अधिक हो जाता है और उनका प्रयोग वह विभिन्न परिस्थिति में अधिक करने लगते हैं। परिणामतः किशोरों की स्मृतिशक्ति और अधिक विकसित होती जाती है।

5.3.3किशोरावस्था में सामाजिक विकास

मनुष्य के सामाजिक विकास से तात्पर्य उसके द्वारा अपने समाज की जीवन शैली को सीखने और अपने समाज में समायोजन करने से होता है। मनुष्य जिस समाज के बीच जन्म लेता है और जिस समाज के बीच रहता है उसे उस समाज की भाषा, रहन-सहन एवं खान-पान की विधियों, रीति-रिवाजों और आचरण की विधियों को सीखना होता है; बिना इनको सीखे वह उस समाज में समायोजन नहीं कर सकता। यह कार्य वह धीरे-धीरे सीखता है, इसे ही मानव का सामाजिक विकास कहते हैं। मनोवैज्ञानिकों ने लम्बे अध्ययनों के बाद यह पाया कि मनुष्य का सामाजिक विकास उसके शारीरिक, मानसिक और संवेगात्मक विकास पर निर्भर करता है; जैसे-जैसे वह बड़ा होता जाता है, समाज की भाषा एवं रीति-रिवाज आदि को सीखता जाता है और समाज में समायोजन करता जाता है। मनुष्य दूसरों के व्यवहार को प्रभावित करता है और उसके व्यवहार से प्रभावित होता है। इस परस्पर व्यवहार के व्यवस्थापन पर ही सामाजिक सम्बन्ध निर्भर होते हैं। इस परस्पर व्यवहार में रुचियों, अभिवृत्तियों, आदतों आदि का बड़ा महत्व है। सामाजिक विकास में इन सभी का विकास सम्मिलित

किशोरावस्था में किशोर एवं किशोरियों का सामाजिक परिवेश अत्यन्त विस्तृत हो जाता है। शारीरिक, मानसिक तथा संवेगात्मक परिवर्तनों के साथ-साथ उनके सामाजिक व्यवहार में भी परिवर्तन आना स्वाभाविक है। किशोरावस्था में होने वाले अनुभवों तथा बदलते सामाजिक सम्बन्धों के फलस्वरूप किशोर-किशोरियाँ नए ढंग के सामाजिक वातावरण में समायोजित करने का प्रयास करते हैं।

इस अवस्था में किशोरों एवं किशोरियों का सामाजिक जीवन के क्षेत्र में भी विस्तारण आता है। शारीरिक, मानसिक एवं संवेगात्मक विकास के साथ-साथ किशोर एवं किशोरियों में सामाजिक विकास भी अति आवश्यक है क्योंकि सामाजिक विकास के द्वारा ही बालक एवं बालिकाएं सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप स्वयं को व्यवस्थित कर समाज स्वीकृत कार्य करने की ओर उत्प्रेरित होते हैं। इस अवस्था में सामाजिक विकास का स्वरूप निम्न बिन्दुओं के आधार पर देखा जा सकता है-

मैत्री भाव का विकास

किशोरावस्था में किशोरों में अपने मित्र समूह के प्रति मैत्री भाव की प्रधानता होती है। पूर्व बाल्यावस्था तक यह भावना बालक की बालक के प्रति तथा बालिकाओं की बालिकाओं के प्रति ही होती थी, परन्तु उत्तर बाल्यावस्था से परस्पर विपरीत लिंग के लिए आकर्षण उत्पन्न हो जाता है और वे एक दूसरे के सामने स्वयं को सर्वोत्तम रूप में उपस्थित करने का प्रयत्न करने लगते हैं।

समूहों के प्रति भक्ति भावना

किशोर जिस समूह में रहता है उसमें उस समूह के प्रति भक्ति भाव होता है। वह उस समूह द्वारा स्वीकृत विचारों, व्यवहारों आदि को ही उचित समझता है और उसी का आचरण करता है। सामान्यतः देखा जाता है कि इस प्रकार के समूह के सभी व्यक्तियों के आचार-विचार, व्यवहार आदि लगभग समान ही होते हैं।

सामाजिक कार्यों में अधिक सहभागिता

किशोरावस्था में व्यक्ति सामाजिक कार्यों में अधिक भाग लेने लगता है। परिणामतः उसकी सामाजिक समझ में वृद्धि होती है। व्यक्ति में सामाजिक अन्तर्दृष्टि बढ़ जाती है तथा आत्म विश्वास में भी उन्नति होती है।

विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण

बालक एवं बालिकाओं में विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण एवं खिंचाव उत्पन्न हो जाता है। इस अवस्था में विपरीत लिंग से दूरी समाप्त हो जाती है।

समूह में विशिष्ट स्थान प्राप्त करने की इच्छा

किशोरावस्था में बालकों में नेतृत्व की भावना का विकास हो जाता है। वे अपनी योग्यताओं के आधार पर समूह में विशिष्ट स्थान प्राप्त करते हैं तथा समूह के नेता के रूप में स्वीकार किए जाते हैं।

समाज स्वीकृत कार्यों को महत्व

किशोरावस्था में बालक एवं बालिकाओं का सामाजिक विकास इस अवस्था तक हो जाता है कि वह स्वयं को सामाजिक मूल्यों एवं आदर्शों के अनुरूप व्यवस्थित करने का प्रयत्न करने लगते हैं। वह कोई भी ऐसा कार्य करने को इच्छुक नहीं होते जो समाज विरोधी हो।

व्यवसायिक रुचि का विकास

किशोर सदा अपने भावी व्यवसाय के लिए चिंतित रहते हैं। किशोर अधिकतर उन्हीं व्यवसायों को चुनना पसंद करते हैं जिनका समाज में सम्मान हो।

5.3.4किशोरावस्था में संवेगात्मक विकास

मनोवैज्ञानिकों ने मानव व्यवहार को तीन पक्षों में विभाजित किया है- ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक। सर्वप्रथम मनुष्य ज्ञानेन्द्रियों द्वारा किसी वस्तु अथवा क्रिया का ज्ञान प्राप्त करता है, फिर इस ज्ञान के आधार पर उसके मन में किसी भाव की उत्पत्ति होती है और इसके बाद वह इसके प्रति अनुक्रिया करता है; जैसे किसी भयानक वस्तु अथवा क्रिया के ज्ञान से मनुष्य के मन में भय उत्पन्न होता है और भय की उत्पत्ति के कारण वह पलायन करता है। सामान्यतः किसी वस्तु अथवा क्रिया से उत्पन्न मनोभाव को संवेग कहते हैं; जैसे प्रेम, घृणा एवं भय आदि। मनोवैज्ञानिक मैक्डूगल ने स्पष्ट किया कि मनुष्य के सभी मूल-प्रवृत्यात्मक व्यवहारों के पीछे कोई न कोई संवेग छिपा होता है; जैसे पलायन के पीछे भय और जिज्ञासा के पीछे आश्चर्य, परन्तु सभी भाव संवेग नहीं होते। केवल तीव्र अनुभूति के आधार पर विकसित और व्यवहार को प्रभावित करने वाले भाव ही संवेग की कोटि में आते हैं। मनोवैज्ञानिक ने स्पष्ट किया कि जैसे-जैसे मनुष्य का शारीरिक एवं मानसिक विकास होता जाता है तैसे-तैसे उसमें संवेगों का विकास भी होता जाता है। मनुष्य में संवेगों के विकास को ही संवेगात्मक विकास कहते हैं। संवेगों के विकास के सन्दर्भ में दो मत हैं-

(1) संवेग जन्मजात होते हैं- इस मत को मानने वालों में वेकविन तथा हांलिगवर्थ आदि। हांलिगवर्थ का मानना है कि प्राथमिक संवेग जन्मजात होते हैं। वाटसन ने बताया कि जन्म के समय बच्चे में तीन प्राथमिक संवेग भय, क्रोध व प्रेम होते हैं।

(2) संवेग अर्जित किए जाते हैं - कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि संवेग विकास एवं वृद्धि की प्रक्रिया के दौरान प्राप्त किए जाते हैं। जन्म के समय संवेग निश्चित रूप से विद्यमान नहीं होते हैं।

संवेगों की विशेषताएँ

1. संवेगात्मक अनुभव किसी मूल प्रवृत्ति या जैविकीय उत्तेजना से जुड़े होते हैं। जो कि प्रत्यक्षकरण का उत्पाद होते हैं।
2. प्रत्येक संवेगात्मक अनुभव के दौरान प्राणी में अनेक शारीरिक परिवर्तन होते हैं।
3. संवेग किसी स्थूल वस्तु या परिस्थिति के प्रति अभिव्यक्त किए जाते हैं।
4. विकास के सभी स्तरों में संवेग होते हैं और बच्चे व बूढ़ों में उत्पन्न किए जा सकते हैं।

5. एक ही संवेग को अनेक प्रकार के उत्तेजनाओं (वस्तुओं या परिस्थितियों) से उत्पन्न किया जा सकता है।
6. संवेग शीघ्रता से उत्पन्न होते हैं और धीरे-धीरे समाप्त होते हैं।

किशोरावस्था में बालक एवं बालिकाओं में सांवेगिक विकास भी तीव्रता से होता है जिसके कारण उनमें अनेक संवेगात्मक परिवर्तन दिखाई पड़ते हैं जो इस प्रकार हैं-

आत्म सम्मान के प्रति सचेष्ट

किशोरावस्था में बालक भावना प्रधान हो जाते है। उनमें आत्म सम्मान की भावना अधिक जाग्रत हो जाती है। छोटी सी छोटी बात उनके आत्म सम्मान को ठेस पहुँचाती है जिसके कारण उनमें क्रोध, ईर्ष्या, घृणा जैसे संवेग उत्पन्न हो जाते है।

जिज्ञासा प्रवृत्ति की प्रबलता

इस आयु में बालकों में जिज्ञासा प्रवृत्ति इतनी अधिक होती है कि वह प्रति पल कुछ नया जाने को उत्सुक रहते हैं। वह सिर्फ क्या है से सन्तुष्ट नहीं होते वरन् क्यों है और किस प्रकार है का उत्तर चाहिए होता है।

संवेगों की अभिव्यक्ति में स्थिरता

किशोरावस्था में किशोरो एवं किशोरियों के सामान्य संवेगों जैसे- क्रोध, भय, प्रेम, दया आदि में चंचलता समाप्त होकर स्थिरता आ जाती है।

क्रियाशीलता एवं सक्रियता

इस अवस्था में क्रियाशीलता एवं सक्रियता की प्रवृत्ति अधिक होती है। बालक बाहर के खेलों में तथा बालिकाएं घर के कामों में अधिर सक्रिय रहती हैं। वे इनके माध्यम से अपने संवेगों को भी अभिव्यक्त करते हैं।

काल्पनिक जीवन पर विश्वास

किशोरो का जीवन कल्पनाओं से परिपूर्ण होता है और अपनी इन कल्पनाओं का साकार रूप वह अपने स्वप्नों में देखने लगते है। वह वास्तविक जीवन की अपेक्षा काल्पनिक जीवन में अधिक रहने लगते है।

5.4 किशोरावस्था में विभिन्न विकासों को प्रभावित करने वाले कारक

किशोरावस्था में बालक में अनेक प्रकार के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं संवेगात्मक परिवर्तन एवं विकास होते हैं। इन परिवर्तनों में से कुछ परिवर्तन स्वभावतः होते हैं परन्तु कुछ कारक भी होते हैं जिसके कारण बालक में ये परिवर्तन परिलक्षित होते हैं। नीचे इन्हीं कारको का वर्णन किया गया है।

किशोरावस्था में शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

किशोरावस्था में बालक का शारीरिक विकास अनेक वाह्य एवं आंतरिक परिवर्तन होते हैं। सामान्यतः देखा जाता है कि किशोरावस्था के अंत तक बालक पूर्ण रूप से परिपक्व व्यक्ति बन जाता है। किशोरावस्था में किशोर के शारीरिक विकास को अनेक आंतरिक एवं वाह्य कारक प्रभावित करते हैं जिसमें से कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं-

1. किशोर की शारीरिक रचना एवं स्वास्थ्य अपने माता पिता से प्रभावित होता है। सामान्यतः स्वस्थ माता-पिता के बच्चों को स्वास्थ्य भी स्वस्थ ही होता है।
2. किशोर के समुचित विकास पर उसके आस-पास के वातावरण का भी प्रभाव पड़ता है। उनके स्वाभाविक विकास में उनका वातावरण जैसे-शुद्ध वायु, स्वच्छता, सूर्य का प्रकाश आदि महत्वपूर्ण रूप से सहायक होते हैं। यदि किशोर के पहनने के कपड़े एवं रहने का स्थान स्वच्छ तथा भोजन में पौष्टिकता हो तो उनका शारीरिक विकास अत्यंत दुरत गति से होता है। बालक के शारीरिक विकास पर उसके द्वारा सेवन किए जाने वाले भोजन का भी प्रभाव पड़ता है। यदि एक किशोरावस्था के बालक को पर्याप्त मात्रा में पौष्टिक भोजन न मिले तो इस उम्र के किशोरों का शारीरिक विकास उतना नहीं होता जितना कि होना चाहिए।
3. स्वस्थ शारीरिक विकास के लिए दिनचर्या की नियमितता भी आवश्यक है। यदि बालक सोने, खाने, खेलने, पढ़ने जैसे अपने सभी कार्य नियमित रूप से तथा निश्चित समयानुसार करें तो इसका उसके शरीर पर सकारातमक प्रभाव पड़ता है तथा वे सामान्यतः स्वस्थ रहते हैं।
4. शरीर की स्वस्थता के लिए पूर्ण निद्रा एवं विश्राम भी आवश्यक है। किशोरावस्था में कम से कम 8 घंटे की नींद लेना अत्यंत आवश्यक है ताकि उसकी थकान दूर हो सके।
5. किशोरावस्था अत्यंत तनाव एवं संघर्ष की अवस्था होता है। अतः इस स्थिति में माता-पिता का स्नेहपूर्ण व्यवहार तथा शिक्षकों की सहानुभूति एवं सहयोग उनके शारीरिक विकास में सहयोग देता है।
6. इस अवस्था में बालक पूर्णतः परिपक्व होता है। अतः उस पर उसके परिवार की स्थिति का भी प्रभाव पड़ता है। परिवार की आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति भी उसके विकास को प्रभावित करती है।

किशोरावस्था में मानसिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

किशोरावस्था में बालक का मस्तिष्क अत्यंत उथल-पुथल की स्थिति में होता है। इस अवस्था में बालक अनेकों प्रकार के विचारों में उलझा होता है जिसका प्रभाव उसके मानसिक विकास पर निश्चित रूप में पड़ता है। किशोरों के मानसिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक निम्नलिखित हैं-

1. किशोर के मानसिक विकास पर उसके वंशानुक्रम का प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ता है। अधिकतर यही दृष्टिगत होता है कि बुद्धिमान माता-पिता की संतान बुद्धिमान तथा जड़ बुद्धि माता-पिता की संतान जड़ होती है।
2. किशोर के मानसिक विकास को उसका पारिवारिक वातावरण भी प्रभावित करता है। यदि परिवार का वातावरण सुखद एवं तनावमुक्त है तो बालक का मानसिक विकास उत्तम रूप से होगा और इसके विपरीत यदि उसके परिवार का वातावरण कलह-क्लेश से युक्त हो तो अक्सर बालक का मस्तिष्क गलत दिशा की ओर अग्रसर हो जाता है न केवल परिवार के वातावरण का वरन् उसका सामाजिक वातावरण भी उसे प्रभावित करता है। वह जिस तरह के वातावरण में रहता है उसी तरह से उसका बौद्धिक विकास होता है। चूंकि किशोरावस्था परिपक्वता की अवस्था होती है इसलिए किशोर अपने मित्र समूह का चयन बहुत सोच विचार कर करता है।
3. परिवार की सामाजिक-आर्थिक स्थिति भी किशोर के मानसिक विकास में सहयोग देती है। उच्च सामाजिक-आर्थिक स्थिति से आने वाले किशोरों का मानसिक विकास निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले परिवार से आने वाले बालकों की अपेक्षा अधिक होता है।
4. किशोर के मानसिक विकास में विद्यालय एक महत्वपूर्ण कारक है। विद्यालय में दी जाने वाली शिक्षा के द्वारा ही बालक के बौद्धिक विकास को उचित दिशा मिलती है। यही कारण है कि आज की शिक्षा व्यवस्था में किशोर का पाठ्यक्रम उनकी रुचि एवं योग्यतानुसार रखा जाता है ताकि प्रत्येक बालक अपनी-अपनी क्षमताओं के अनुसार विकसित हो सकें।
5. बालक के मानसिक विकास को प्रभावित करने वाला सबसे महत्वपूर्ण कारक उसका शारीरिक स्वास्थ्य है। जैसा कि अरस्तू द्वारा कथित यह कथन विदित है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का वास होता है। अतः बालक का मानसिक विकास काफी हद तक उसके स्वास्थ्य पर निर्भर करता है।

किशोरावस्था में सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

किशेरावस्था में बालक का सामाजक विकास भी अनेक कारकों से प्रभावित होता है जो इस प्रकार हैं-

1. किशोर के सामाजिक विकास पर कुछ सीमा तक उसके वंशानुक्रम का भी प्रभाव पड़ता है।

2. किशोर का शारीरिक एवं मानसिक विकास भी उसके सामाजिक विकास को प्रभावित करता है। स्वभावतः यदि किशोर शारीरिक रूप से स्वस्थ एवं मानसिक रूप से परिपक्व होगा तभी उसमें सामाजिकता का तीव्रता से विकास सम्भव है।
3. किशोर के सामाजिक विकास को उसकी सांवेगिक परिपक्वता भी प्रभावित करती है क्योंकि समाज में हर तरह के लोग मिलते हैं, उनसे समायोजन तभी स्थापित हो सकता है जब हम अपने क्रोध, भय, ईर्ष्या, द्वेष जैसे संवेगों को नियंत्रित रख व्यवहार प्रदर्शित करें।
4. परिवार की आर्थिक स्थिति भी बालक को अधिक अथवा कम सामाजिक बनने में सहायक होती है। धनी परिवार के किशोर के रहने का स्थान तथा वहाँ का वातावरण निर्धन परिवार की अपेक्षा अधिक स्वस्थ होता है। उनके घर में सभी साधन उपलब्ध होते हैं। जो किशोर में उचित सामाजिक गुणों के विकास में सहायक होते हैं।
5. विद्यालय का वातावरण भी किशोर में सामाजिकता का विकास करने में सहायक होता है। यदि विद्यालय का वातावरण एकतंत्रीय हो तो बालक का सामाजिक विकास स्वस्थ रूप से उचित दिशा में नहीं होगा तथा इसके विपरीत विद्यालय के लोकतंत्रीय वातावरण में बालक स्वतंत्रतापूर्वक पूर्ण कुशलता के साथ अपने मित्रों एवं शिक्षकों के साथ व्यवहार करता है जो उसके सामाजिकरण का ही एक हिस्सा है।

किशोरावस्था में संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

किशोरावस्था तूफानों एवं प्रतिबलों की अवस्था होती है। इस अवस्था में किशोर के लिए समाज में अपनी प्रस्थिति निश्चित करना बहुत कठिन होता है क्योंकि वह यह निश्चित नहीं कर पाता कि किस प्रकार का व्यवहार अपेक्षित है। फलतः उसमें सांवेगिक अस्थिरता का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। अतः किशोरावस्था में किशोर में उचित संवेगात्मक विकास होना अत्यंत आवश्यक है। किशोर के संवेगात्मक विकास को अनेक कारक प्रभावित करते हैं जो इस प्रकार हैं-

1. बालक के संवेगात्मक व्यवहार को थकान अत्यधिक प्रभावित करती है। थकान के कारण वह क्रोध, चिड़चिड़ेपन जैसे अवांछित संवेग अभिव्यक्त करने लगता है।
2. शारीरिक स्वस्थता भी उसके संवेगात्मक विकास को उचित दिशा प्रदान करती है। किशोर यदि शारीरिक रूप से स्वस्थ होगा तो वह किसी भी कार्य को पूर्ण उत्साह, लगन एवं प्रसन्नतापूर्वक करने का प्रयत्न करता है अतः बालक के स्वास्थ्य की दशा का उसके संवेगात्मक व्यवहार से घनिष्ठ सम्बंध होता है।
3. किशोर के संवेगात्मक व्यवहार को न केवल स्वास्थ्य वरन् मानसिक योग्यता भी प्रभावित करती है। अधिक मानसिक एवं बौद्धिक योग्यता एवं क्षमता वाले बालकों का संवेगात्मक क्षेत्र अधिक विस्तृत होता है।
4. किशोर का सांवेगिक व्यवहार उसके परिवार, वहां के वातावरण, परिवार की स्थिति आदि से बहुत अधिक प्रभावित होता है क्योंकि यदि परिवार का वातावरण आनंदमय एवं

शांतिपूर्ण है तो बालक में भी स्वस्थ संवेगों का संचरण होगा। इसके विपरीत यदि परिवार में कलह-क्लेश, लड़ाई-झगड़े का वातावरण उसके सांवेगिक पक्ष पर नकारात्मक प्रभाव डालता है तथा उसकी संवेगात्मक नकारात्मकता उसके सामाजिक व्यवहार को भी प्रभावित करती है।

5. यदि परिवार में माता-पिता का किशोर के प्रति दृष्टिकोण सहयोगी एवं सहानुभूति पूर्ण है तथा उनके परस्पर सम्बंधों में मधुरता है तो बालक में संवेगों का विकास सकारात्मक रूप में होता है।

5.5 किशोरावस्था में शिक्षा का स्वरूप

किशोरावस्था में विकास सम्बंधी परिवर्तनों को देखने के पश्चात् यह स्पष्ट है कि यह जीवन का सबसे कठिन एवं नाजुक समय होता है जिसमें यदि बालक पर ध्यान न दिया जाये तो उसका विकास बाधित भी हो सकता है। बालक के विकास को उचित दिशा प्रदान करने में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अतः उनकी शिक्षा व्यवस्था का एक निश्चित स्वरूप अवश्य होना चाहिए। किशोरावस्था में बालक की शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं संवेगात्मक आवश्यकताओं के अनुरूप ही शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए। किशोरावस्था में बालकों के व्यक्तित्व का समुचित विकास करने के लिए यह आवश्यक है कि उनकी आवश्यकताओं एवं समस्याओं से परिचित होकर उनकी संतुष्टि एवं निराकरण के लिए यथासम्भव प्रयत्न किए जाने चाहिए। इस सम्बंध में शिक्षकों, अभिभावकों एवं विद्यालय सभी के सम्मिलित प्रयास की आवश्यकता है। इस सम्बंध ध्यान देने योग्य कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु इस प्रकार हैं-

5.5.1 शारीरिक विकास के लिए शिक्षा

किशोरावस्था वृद्धि की दृष्टिकोण से सबसे महत्वपूर्ण अवस्था होती है। किशोरावस्था में बालक का शारीरिक विकास बहुत तीव्रता के साथ होता है। अतः उसके स्वास्थ्य के प्रति अधिक सचेष्टता की आवश्यकता है। शरीर को स्वस्थ एवं सबल बनाने के लिए उसके लिए पौष्टिक भोजन की व्यवस्था करनी चाहिए। भोजन के साथ आस-पास के स्वस्थ वातावरण की भी व्यवस्था करनी चाहिए। शरीर की स्वस्थता के लिए नियमित खेलकूद एवं व्यायाम भी आवश्यक है। किशोरों की शारीरिक गति के लिए विद्यालय में व्यायाम एवं खेलकूद सम्बंधी क्रियाएं जैसे कुश्ती, कसरत, फुटबाल, तैराकी, हॉकी आदि का आयोजन किया जाना चाहिए। देखा जाये तो शारीरिक विकास पर ही पूरा विकास निर्भर करता है। यदि बालक शारीरिक रूप से स्वस्थ नहीं होगा तो वह किसी भी क्रिया को लगन से नहीं कर सकेगा फलतः मानसिक, सामाजिक, भावात्मक, क्रियात्मक आदि सभी विकास कहीं न कहीं अवरुद्ध होंगे।

5.5.2 मानसिक विकास के लिए शिक्षा

किशोरावस्था में मानसिक विशेषताओं के अनुसार किशोरों की बुद्धि निरीक्षण शक्ति, तर्क, चिंतन, स्मृति एवं कल्पना शक्ति का विकास उनकी रुचि, योग्यता, क्षमता के अनुसार किया जा सकता है। इसके लिए किशोरों के पाठ्यक्रम में कला, विज्ञान, भूगोल, इतिहास आदि के साथ विद्यालय पाठ्यक्रम में पाठ्य विषयान्तर विषयों को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए। विद्यालयों में बालको के उचित विकास के लिए पुस्तकालयों, वाचनालयों, प्रयोगशाला आदि की व्यवस्था की जानी चाहिए ताकि बालक अपने अवकाश के समय का भी सदुपयोग कर अपने ज्ञान को बढ़ा सके। किशोरों में जिज्ञासा की प्रवृत्ति बहुत तीव्र होती है। अतः उनकी जिज्ञासाओं का सही समाधान उनको बता कर उन्हें शांत करने का प्रयत्न करना चाहिए।

5.5.3 सामाजिक विकास के लिए शिक्षा

बालक में सामाजिक का विकास करना शिक्षा के महत्वपूर्ण कार्यों में से एक है। सामाजिक विकास के बिना व्यक्ति अपने वातावरण में समायोजन नहीं कर सकता है। किशोरों के सामाजिक विकास में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। विद्यालय में आयोजित होने बाले विभिन्न कार्यक्रम जैसे स्काउट एवं गाइड, एन0 सी0सी0, एन0एस0एस0 में बालकों को भाग लेने के लिए शिक्षकों को प्रोत्साहित करना चाहिए। केवल विद्यालय ही बालक के सामाजिक विकास के लिए उततरदायी है वरन् परिवार की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। परिवार का यह कर्तव्य है कि वह बालक को अपने देश की सभ्यता एवं संस्कृति से अवगत कराए ताकि वे स्वयं को अपनी सभ्यता एवं संस्कृति के अनुरूप बनाने का प्रयत्न कर सकें। किशोर में सामाजिकता विकसित करने के लिए उसमें समायोजन क्षमता विकसित करना अत्यंत आवश्यक होता है क्योंकि जब तक वह स्वयं को समाज के अनुरूप समायोजित नहीं करेंगे तब तक वह समाज स्वीकृत व्यवहार को प्रदर्शित नहीं कर सकेंगे। अतः किशोरों में सामाजिकता का विकास उचित एवं व्यवस्थित रूप से होना अत्यंत आवश्यक है क्योंकि यही सामाजिकता ही मानव को पशु से भिन्न करती है। अतः उनके सामाजिक विकास की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए अन्यथा वह समाज एवं देश का एक कुशल व्यक्ति एवं नागरिक नहीं बन सकेगा।

5.5.4 संवेगात्मक विकास के लिए शिक्षा

किशोरों में संवेग अधिक प्रबल होते हैं। उनके संवेगात्मक जीवन में उथल-पुथल मची होती है। वह पूर्व के स्थायी संवेग एवं नवीन विकसित संवेगों को नियंत्रित एवं समायोजित करने में कठिनाई का अनुभव करते हैं। बालक में उत्पन्न होने वाली नई भावनाओं में कुछ अच्छी एवं कुछ बुरी भावनाओं का समावेश होता है। कभी-कभी तो उन्हें ऐसी परिस्थिति का सामना करना पड़ता है कि वह अपने कर्तव्य को समझ पाने में असमर्थ हो जाते हैं। किशोरावस्था में उनके संवेगात्मक व्यवहार में अस्थिरता होती है। इस आयु के बालकों संवेगात्मक अपरिपक्वता होने के कारण आसानी से इन्हें

विध्वंसात्मक कार्यों में संलग्न किया जा सकता है। अतः माता-पिता एवं शिक्षकों को चाहिए कि वह बालकों के संवेगों को उचित दिशा में उन्मुख करने के लिए प्रयत्नशील रहें ताकि विभिन्न राजनैतिक समूह अपने निजी स्वार्थ के लिए उनका उपयोग न कर सकें। अतः शिक्षा के द्वारा बालक के निकृष्ट संवेगों को दमित अथवा मार्गान्तरीकरण कर उत्तम संवेगों को बढ़ावा देना चाहिए। यदि शिक्षक एवं अभिभावक वास्तविकता में बालक के संवेगों को प्रशिक्षित करना चाहते हैं तो उन्हे सर्वप्रथम उनके संवेगात्मक व्यवहार को भली-भंति समझना आवश्यक है क्योंकि बिना संवेगों को समझे उन्हें सही दिशा नहीं प्रदान कर सकते हैं।

5.5.5 किशोर मनोविज्ञान का ज्ञान

किशोर के मन एवं प्रौढ़ों के मनःस्तर में बहुत भिन्नता होती है। किशोरों को यदि उनके स्तर के अनुरूप शिक्षा न प्रदान की जाये तो प्रायः यह देखा जाता है कि उनका ध्यान पढ़ाई से हटकर अन्य कार्यों में लगने लगता है। अतः माता-पिता एवं शिक्षकों को उनके मनोविज्ञान को जानना अत्यंत आवश्यक है। उन्हें उनकी आवश्यकताओं, वृद्धि एवं विकास के विभिन्न पहलुओं तथा उनके द्वार अनुभव की जाने वाली कठिनाइयों एवं समस्याओं का ज्ञान होना भी आवश्यक है तभी वे उनके उचित विकास एवं समायोजन में पूरी-पूरी सहायता करने में सक्षम हो सकेंगे क्योंकि जब तक वह उनके स्वभाव, रुचि, योग्यता आदि को अच्छे से नहीं समझेंगे तब तक वह उनके लिए उचित शिक्षा की व्यवस्था नहीं कर सकेंगे।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. किशोरावस्था ______________ की ड्योढ़ी है जिसके ऊपर जीवन का समस्त भविष्य आधारित होता है।
2. _______________ तूफानों एवं प्रतिबलों की अवस्था होती है।
3. मनोवैज्ञानिकों ने मानव व्यवहार को किन तीन पक्षों में विभाजित किया है?
4. ______________तूफानों एवं प्रतिबलों की अवस्था होती है।

5.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई में किशोरावस्था में बालक में होने वाले शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास के विषय में विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। विकास की विभिन्न अवस्थाओं में किशोरावस्था का महत्वपूर्ण स्थान है। किशोरावस्था वह समय है जिसमें विकासशील व्यक्ति बाल्यावस्था से निकलकर तारुणयता की ओर अग्रसर होता है। किशोरावस्था में बालक में होने वाले शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास को अनेक कारक प्रभावित करते

हैं। यहाँ यह कहना अनुचित नहीं होगा कि ये सभी विकास क्षेत्र परस्पर सम्बंधित हैं एवं एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।

किशोरावस्था में विकास सम्बंधी परिवर्तनों को देखने के पश्चात् यह स्पष्ट है कि यह जीवन का सबसे कठिन एवं नाजुक समय होता है जिसमें यदि बालक पर ध्यान न दिया जाये तो उसका विकास बाधित भी हो सकता है। बालक के विकास को उचित दिशा प्रदान करने में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

बालक में सामाजिक का विकास करना शिक्षा के महत्वपूर्ण कार्यों में से एक है। सामाजिक विकास के बिना व्यक्ति अपने वातावरण में समायोजन नहीं कर सकता है। किशोरों के सामाजिक विकास में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है।

किशोर के मन एवं प्रौढ़ों के मनःस्तर में बहुत भिन्नता होती है। किशोरों को यदि उनके स्तर के अनुरूप शिक्षा न प्रदान की जाये तो प्रायः यह देखा जाता है कि उनका ध्यान पढ़ाई से हटकर अन्य कार्यों में लगने लगता है। अतः माता-पिता एवं शिक्षकों को उनके मनोविज्ञान को जानना अत्यंत आवश्यक है।

5.7 शब्दावली

1. **किशोरावस्था-** 12 से 21 वर्ष तक की अवस्था को किशोरावस्था कहते हैं।
2. **वृद्धि:** बच्चों में उम्र के अनुसार होने वाला शारीरिक आकार, भार, हड्डियों, मांसपेशियों, दांत, तंत्रिका-तंत्र आदि का समुचित विकास।
3. **विकास**: जन्म से लेकर मृत्यु तक होने वाला क्रमिक तथा संगत परिवर्तनों का उत्तरोत्तर क्रम।

5.8 स्वमूल्यांकन हेतु पश्नों के उत्तर

1. युवावस्था
2. किशोरावस्था
3. मनोवैज्ञानिकों ने मानव व्यवहार को निम्न तीन पक्षों में विभाजित किया है-ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक।
4. किशोरावस्था

5.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह आर0 एन0, आधुनिक विकासात्मक मनोविज्ञान, गंगासागर एण्ड गे ैण्ड सन्स, वाराणसी वर्ष 1980
2. पाठक, पी0डी0, शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, वर्ष 2011

3. लाल, रमन बिहारी, जोशी सुरेश चन्द्र, आर0 लाल बुक डिपो में रठ, वर्ष 2010
4. लाल, रमन बिहारी, जोशी सुरेश चन्द्र, शिक्षा मनोविज्ञान एवं प्रारम्भिक सांख्यिकी, आर0 लाल बुक डिपो में रठ, वर्ष 2010
5. शर्मा, प्रवीन, शर्मा, सरोज, साइलोजिकल फाउण्डेशन ऑफ एजूकेशन, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, वर्ष 2011
6. सिंह, अरूण कुमार, आधुनिक असमान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली वर्ष 2004
7. सारस्वत, मालती, शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा, आलोक प्रकाशन, लखनऊ 2010
8. मंगल, एस0 के0, शिक्षा मनोविज्ञान, पी0 एच0 आई0 लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली 2009

5.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. किशोरावस्था में मानसिक विकास किस प्रकार होता है?
2. किशोरावस्था में बालक की सांवेगिक विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
3. किशोरावस्था में बालक में होने वाले शारीरिक परिवर्तनों को बताइए।
4. किशोरावस्था को जीवन का सबसे कठिन काल क्यों कहा जाता है ?
5. किशोरावस्था में बालक समाज स्वीकृत व्यवहार क्यों प्रस्तुत करने लगता है ?
6. बालक का संवेगात्मक विकास सामाजिक विकास को किस प्रकार प्रभावित करता है?
7. किशोरावस्था में बालक का शारीरिक विकास किन प्रमुख कारकों से प्रभावित होता है ?
8. किशोरावस्था में बालक में होने बाले मानसिक परिवर्तनों को प्रभावित करने वाले कौन-कौन से कारक होते हैं ?
9. किशोरावस्था में बालक के शारीरिक एवं मानसिक विकास के में शिक्षा की क्या भूमिका है ?

इकाई 6- ज्याँ पियाजे का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त एवं इसके शैक्षिकनिहितार्थ (Jean Piaget's Theory of Cognitive Development and Its Educational Implications)

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 परिचय
6.4 पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त को समझने हेतु कुछ महत्वपूर्ण संप्रत्यय
6.5 संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाएँ
6.6 संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त का मूल्यांकन
6.7 शैक्षिक निहितार्थ
6.8 सारांश
6.9 शब्दावली
6.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर
6.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची
6.12 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

विकासात्मक मनोविज्ञान के अनेक सिद्धांतों में से एक बहुत ही महत्वपूर्ण सिद्धान्त ज्याँ पियाजे (Jean Piaget) का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त है जिसका मूल उद्देश्य बच्चों के विकास के अंतर्गत जो क्रमिक परिवर्तन होते हैं, जिसके कारण मानसिक क्रियाएं और भी जटिल (Complex/ Sophisticated) हो जाती हैं,उनका सरलता से व्याख्या करना है। संज्ञानात्मक विकास के अध्ययन में ज्याँ पियाजे (Jean Piaget)का अभूतपूर्व योगदान है। पियाजे ने अपने सिद्धान्त में शैशवस्था से वयस्कावस्था के बीच चिन्तन-क्रिया में जो विकास होते हैं उनकी व्याख्या की है। प्रस्तुत इकाई में

आप ज्याँ पियाजे (Jean Piaget) के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के महत्वपूर्ण पहलुओं का अध्ययन करेंगे।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

1. संज्ञान का अर्थ स्पष्ट कर पाएंगे।
2. संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के महत्वपूर्ण संप्रत्यय (Important concepts) की व्याख्या कर सकेंगे।
3. ज्याँ पियाजे के अनुसार संज्ञानात्मक विकास के विभिन्न अवस्थाओं की व्याख्या कर सकेंगे।
4. संज्ञानात्मक विकास के विभिन्न अवस्थाओं के मध्य अंतर स्पष्ट कर सकेंगे।
5. ज्याँ पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त का मूल्यांकन कर सकेंगें।
6. ज्याँ पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के शैक्षिक निहितार्थ की व्याख्या कर सकेंगे।

6.3 परिचय

संज्ञान (Cognition) का तात्पर्य उन सारी मानसिक क्रियाओं से है जिसका संबंध चिंतन (Thinking), समस्या-समाधान, भाषा संप्रेषण तथा और भी बहुत सारी मानसिक प्रक्रियाओं से है। निस्सर (Neisser 1967)ने कहा है कि 'संज्ञान' संवेदी सूचनाओं (Sensory Information)को ग्रहण करके उसका रूपान्तरण (Transformation), विस्तारण (Elaboration), संग्रहण (Storage), पुनर्लाभ (Recovery) तथा इसके समुचित प्रयोग करने से होता है।

ज्याँ पियाजे (Jean Piaget) संज्ञानात्मक विकास के क्षेत्र में कार्य करने वाले मनोविज्ञानिकों में सर्वाधिक प्रभावशाली माने जाते हैं। पियाजे का जन्म, 9 अगस्त सन् 1896 को स्विट्जरलैंड में हुआ था। उन्होंने जन्तु-विज्ञान (Zoology) में पी०एच०डी० की उपाधि प्राप्त की। मनोविज्ञान के प्रशिक्षणके दौरान वे अल्फ्रेड बिने (Alfred Binet) के प्रयोगशाला में बुद्धि-परीक्षण (Intelligence Tests) पर जब कार्य कर रहे थे उसी समय उन्होंने विभिन्न आयु के बच्चों के द्वारा अपने चारों ओर के बाह्य जगत के बारे में ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया का अध्ययन करना शुरू कर दिया। उनकी 1923 और 1932 के बीच पाँच पुस्तकें प्रकाशित हुई जिनमें उन्होंने संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। पियाजे के सिद्धान्त की प्रमुख मान्यता यह है कि बालक के ज्ञान के विकास में वह खुद एक सक्रिय साझेदार की भूमिका अदा करता है और वह धीरे-धीरे वास्तविकता के स्वरूप को भी समझने लगता है।

6.4 पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त को समझने हेतु कुछ महत्वपूर्ण संप्रत्यय

पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त को समझने हेतु कुछ महत्वपूर्ण संप्रत्ययों (Important concepts) को समझना आवश्यक है जिनका वर्णन निम्नवत है-

i. **स्कीमाटा (Schemata)** – पियाजे के अनुसार अनुभव (Experience) या व्यवहार (Behavior) को संगठित करने की ज्ञानात्मक संरचना को स्कीमाटा कहते हैं। एक नवजात शिशु में स्कीमाटा एक सहजात प्रक्रिया है, जैसे शिशु की चूसने की प्रतिक्रिया। बच्चा जैसे ही बाहरी दुनिया के साथ अन्त:क्रिया करना प्रारम्भ करता है, इन स्कीमाटा में भी तेजी से परिवर्तन होना शुरू हो जाता है। धीरे-धीरे बच्चे स्कीमाटा के सहारे समस्या समाधान के नियम तथा वर्गीकरण करना जान लेते हैं। इस तरह स्कीमाटा का संबंध मानसिक संक्रिया (mental operation) से है।

ii. **संगठन (Organization)**– संगठन से तात्पर्य प्रत्यक्षीकृत तथा बौद्धिक सूचनाओं (perceptual and cognitive information) को सही तरीके से बौद्धिक संरचनाओं (cognitive structure) में व्यवस्थित करने से है जो इसे वाह्य वातावरण के साथ समायोजन करने में उसके कार्यों को संगठित करता है। व्यक्ति मिलनेवाली नई सूचनाओं को पूर्व निर्मित संरचनाओं के साथ संगठित करने की कोशिश करता है, परन्तु कभी-कभी इस कार्य में सफल नहीं हो पाता है, तब वह अनुकूलन करता है।

iii. **अनुकूलन (Adaptation)** – पियाजे के अनुसार अनुकूलन वह प्रक्रिया है जिसमें बालक अपने को बाहरी वातावरण (External Environment) के साथ समायोजन करने की कोशिश करता है। यह एक जन्मजात, प्रवृत्ति (Inborn Tendency) है जिसके अंतर्गत दो प्रक्रियाएं सम्मिलित हैं-

   a. **आत्मसातीकरण (Assimilation)**
   b. **समाविष्टिकरण (Accommodation)**

मूलरूप से आत्मसातीकरण एक नई वस्तु अथवा घटना को वर्तमान अनुभवों में सम्मिलित करने की प्रक्रिया है। उदाहरण के लिए यदि एक बालक के हाथ में टॉफी रख दीजाती है तो उसे वह तुरंत मुँह में डाल देता है, क्योंकि उसे यह पता है कि टॉफी एक खाद्य वस्तु है। यहाँ बालक ने अनुकूलन के द्वारा खाने की क्रिया को आत्मसात कर रहा है अर्थात पुरानी बौद्धिक क्रिया को नवीन क्रिया के साथ समायोजित करता है। अनुकूलन की यह प्रक्रिया जीवनपर्यंत चलती रहती है।

समाविष्टिकरण (Accommodation)से तात्पर्य वह प्रक्रिया है, जिसमें बालक नए अनुभवों की दृष्टि से पूर्ववर्ती संरचना में सुधार लाने या परिवर्तन लाने की कोशिश करता है। जिससे वह वातावरण के साथ समायोजन कर सके। उदाहरण के लिए जब बालक को टॉफी के स्थान पर रसगुल्ला देते हैं तो बालक यह जानता है,टॉफी मीठी होती है पर अब वह अपने मानसिक सरंचना (Mental structure) में परिवर्तन लाता है, और इसमें नई बातें जोड़ता है कि टॉफी और रसगुल्ले दोनों अलग-अलग खाद्य-पदार्थ हैं जबकिदोनों का स्वाद मीठा है।

आत्मसातीकरण तथा समाविष्टिकरण तभी संभव है जब वातावरण के उद्दीपक बालक के बौद्धिक स्तर (Intellectual level) के अनुरूप होते हैं।

iv. **साम्यधारण (Equilibration)** –साम्यधारण (Equilibration) वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक आत्मसातीकरण (Assimilation) और समाविष्टिकरण (Accommodation) के बीच संतुलन (Balance) स्थापित करता है। पियाजे के अनुसार अगर किसी बालक के सामने जब कोई समस्या आती है जिसका पूर्व अनुभव उसे नहीं होता है तो वह पूर्व अनुभूति के साथ उसे आत्मसात (Assimilate) करता है। फिर भी अगर समस्या का हल नहीं होता है तो वह अपने पूर्व अनुभव को अपने अनुसार रूपान्तरित (Modification) करता है। अर्थात वह संतुलन कायम रखने के लिए आत्मसातीकरण और समायोजन दोनों प्रक्रिया करना शुरू कर देते हैं।

v. **संरक्षण (Conservation)** –प्याजे के अनुसार संरक्षण का अर्थ वातावरण में परिवर्तन तथा स्थिरता को समझने और वस्तु के रंग-रूप में परिवर्तन तथा उसके तत्व के परिवर्तन में अन्तर करने की प्रक्रिया से है। दूसरे शब्दों में, संरक्षण वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा बालक में एक ओर वातावरण के परितर्वन तथा स्थिरता में अन्तर करने की क्षमता और दूसरी ओर वस्तु के रंग-रूप में परिवर्तन तथा उसके तत्व में परिवर्तन के बीच अन्तर करने की क्षमता से है।

vi. **संज्ञानात्मक सरंचना (Cognitive structure)** – प्याजे ने मानसिक योग्यताओं के सेट (Set) को संज्ञानात्मक संरचना की संज्ञा दी है। भिन्न-भिन्न आयु में बालकों की संज्ञानात्मक संरचना भिन्न-भिन्न हुआ करती है। बढ़ती हुई आयु के साथ यह संज्ञानात्मक संरचना सरल से जटिल बनती जाती है।

vii. **मानसिक प्रचालन (Mental Operation)** –मानसिक-प्रचालन का अर्थ संज्ञानात्मक संरचना की सक्रियता से है। जब बालक किसी समस्या का समाधान करना शुरू करता है तो उसकी मानसिक संरचना सक्रिय बन जाती है। इसे ही मानसिक संक्रिया या मानसिक प्रचालन कहते हैं।

viii. **स्कीम्स (Schemes)** –प्याजे के सिद्धान्त का यह संप्रत्यय वास्तव में मानसिक प्रचालन (Mental operation) संप्रत्यय का बाह्य रूप है। जब मानसिक प्रचालन बाह्य रूप से अभिव्यक्त (Expressed) होता है तो इसी अभिव्यक्त रूप को स्कीम्स कहते हैं।

ix. **स्कीमा (Schema)** –प्याजे के अनुसार स्कीमा का अर्थ ऐसी मानसिक संरचना है, जिसका समान्यीकरण (Generalization) संभव हो। यह संप्रत्यय वस्तुत: संज्ञानात्मक संरचना तथा मानसिक प्रचालन के संप्रत्ययों से गहरे रूप से सम्बद्ध है।

x. **विकेन्द्रण (De centering)** –इस संप्रत्यय का संबंध यथार्थ चिंतन से है। विकेन्द्रण का अर्थ है कि कोई बालक किसी समस्या के समाधान के संबंध में किस सीमा तक वास्तविक ढंग से सोच-विचार करता है। इस संप्रत्यय का विपरीत (Opposite) आत्मकेन्द्रण (Ego centering) है। शुरू में बालक आत्मकेन्द्रित रूप से सोचता है और बाद में उम्र बढ़ने पर विकेन्द्रित ढंग से सोचने लगता है।

xi. **पारस्परिक क्रिया (Interaction)** –प्याजे के अनुसार बच्चों में वास्तविकता (Reality) को समझने तथा उसकी खोज करने की क्षमता न केवल बच्चों की प्रौढ़ता (Maturity) पर बल्कि उनके शिक्षण पर निर्भर करती है। यह दोनों की पारस्परिक क्रिया (Interaction)पर आधारित होतेहैं।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. अनुकूलन (Adaptation)के अंतर्गत दो प्रक्रियाएँ सम्मिलित हैं आत्मसातीकरण तथा ______________________.
2. ___________________ संबंध यथार्थ चिंतन से है।
3. पियाजे का जन्म, 9 अगस्त सन् 1896 को ________________ में हुआ था।
4. _____________ ने संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।
5. मानसिक योग्यताओं के सेट (Set) को __________________कहते हैं।

6.5संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाएँ (Stages of Cognitive Development)

1. संवेदी पेशीय अवस्था (Sensory Motor stage)
2. पूर्व-संक्रियात्मक अवस्था (Pre-operational stage)
3. मूर्त-सक्रिय अवस्था (Period of concrete operation)
4. अपौचारिक सक्रिय अवस्था (Period of formal operation)

1. **संवेदी-पेशीय अवस्था (Sensory Motor stage)**

   यह अवस्था जन्म से दो साल तक की होती है। इस अवस्था में बालक कुछ संवेदी-पेशीय क्रियाएँ जैसे पकड़ना, चूसना, चीजों को इधर-उधर करना आदि स्वत: सहज क्रियाओं से व्यवस्थित क्रियाओं की ओर अग्रसित होता है। पियाजे के अनुसार इस अवस्था में शिशुओं का बौद्धिक और संज्ञानात्मक विकास निम्नलिखित छ: उप-अवस्थाओं से होकर गुजरता है-

   i. पहली अवस्था को **प्रतिवर्त्त क्रिया की अवस्था (Stage of Reflex Actions)**कहा जाता है जो जन्म से एक महीना तक की होती है। इस प्रतिवर्त्त क्रिया की अवस्था में शिशु अपने को नए वातावरण में अभियोजन करने की कोशिश करता है। इस समय चूसने की क्रिया सबसे प्रबल होती है।

   ii. दूसरी अवस्था को **प्रमुख वृत्तीय प्रतिक्रिया की अवस्था (Stage of Circular Reaction)** कहा जाता है जो 1 से 4 महीने तक होती है। इस अवस्था में शिशुओं की प्रतिवर्त्त क्रियाएँ(Reflex activities) में कुछ हद तक परिवर्तन होता है। शिशु अपने को नए वातावरण में अभियोजन करने की कोशिश करता है। वह अपने अनुभवों को दोहराता हैतथा उसमें रूपान्तरण लाने का प्रयास करता है। इसे प्रमुख (Primary)इसलिए कहा जाता है क्योंकि ये प्रतिवर्त्त क्रियाएँ प्रमुख होती है एवं उन्हें वृत्तीय (Circular) इसलिए कहा जाता है क्योंकि इन क्रियाओं को वे बार-बार दोहराते हैं।

   iii. तीसरी अवस्था **गौण वृत्तीय प्रतिक्रिया की अवस्था (Stage of secondary circular reaction)** – होती है जो 4 से 8 महीने तक की होती है। इस अवस्था में शिशु ऐसी क्रियाएँ करता है जो रूचिकर होती हैं तथा अपने आस-पास की वस्तुओं को छूने की कोशिश करता है। जैसे चादर पर पड़े खिलौने को पाने के लिए चादर को खींचकर अपनी तरफ करता है, और फिर खिलौनेको ले लेता है।

   iv. चौथी अवस्था **गौण – स्कीमटा के समन्वय की अवस्था (Stage of coordination of secondary schemata)**जो 6 महीने से 12 महीने तक होती है। इस अवधि में शिशु अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सहज क्रिया को इच्छानुसार प्रयोग करना सीख जाता है। वह वयस्कों द्वारा किए गएकार्यों का अनुकरण (Imitation)करने की कोशिश करता है। जैसे यदि हम बच्चे के सामने हाथ हिलाते हैं तो वह उसी तरह हाथ हिलाता है। वह इस अवधि में स्कीमटा का उपयोग कर एक परिस्थिति से दूसरे परिस्थिति के समस्या का हल करता है।

v. **तृतीय वृत्तीय प्रतिक्रिया की अवस्था (Tertiary circular reaction)** – 12 महीने से 18 महीने तक होती है। इस अवस्था में बालक प्रयास एवं त्रुटि के आधार पर अपनी परिस्थितियों को समझाने की कोशिश करने से पहले सोचना प्रारंभ कर देता है। इस अवधि में बच्चे में उत्सुकता (Curiosity) उत्पन्न होती है तथा भाषा का भी प्रयोग करना शुरू कर देता है।

vi. **मानसिक संयोग द्वारा नए साधनों की खोज अवस्था (Stage of the new means through mental combination)** 18 महीनों से 2 साल तक में शिशु प्रतिमा (Image) का उपयोग करना सीख जाता है। अब वह खुद ही समस्या का हल प्रतीकात्मक चिंतन क्रिया (Symbolic thought process) द्वारा ढूँढ लेता है। इस अवस्था में संज्ञानात्मक विकास के साथ बौद्धिक-विकास भी बहुत तेजी से होता है।

2. **पूर्व सक्रियात्मक अवस्था (Pre operational stage)**

संज्ञानात्मक विकास की पूर्व-संक्रियात्मक अवस्था लगभग दो साल से प्रारंभ होकर सात साल तक होती है। इस अवस्था में संकेतात्मक कार्यों की उत्पत्ति (Emergence of symbolic functions) तथा भाषा का प्रयोग (Use of language) होता है। पियाजे ने इस अवस्था को दो भागों में बॉटा है।

i. **प्राकसंप्रत्यात्मक अवधि (Pre conceptual period)** – जो कि 2 से 4 साल तक होता है। यह अवस्था वस्तुत: परिवर्तन की अवस्था है जिसे खोज (Exploration)की अवस्था भी कही जाती है। इस अवस्था में बच्चे जो संकेत (Symbol)का प्रयोग करते हैं वह थोड़ी-सी अव्यवस्थित (Disorganized)होती है। इस अवस्था में बच्चे बहुत सारी ऐसी क्रियाएँ करते हैं जिसे इससे पहले वह नहीं कर सकते थे। जैसे संकेत (Symbol), व चिन्ह (Signs)का प्रयोग कब और कहाँ किया जाता है। वे शब्दों (Words)का प्रयोग कर समस्याओं का समाधान करते हैं। बालक विभिन्न घटनाओं या कार्यों के संबंध में क्यों तथा कैसे (Why and How)जैसे प्रश्नों को जानने में रूचि रखते हैं। वे जिस कार्य को दूसरों के द्वारा करते हैं या होते देखते हैं उस कार्य को करने लगते हैं। उनमें बड़ों का अनुकरण (Imitation)करने की प्रवृति होती है। लड़के अपने पिता का अनुकरण कर स्कूटर चलाने या समाचार-पत्र पढ़ने तथा लडकियाँ अपनी माँ की तरह गुड़िया को खिलाना, तैयार करना जैसे काम करते हैं। इस अवस्था में भाषा का सबसे ज्यादा विकास होता है जिसके लिए समृद्ध भाषाई वातावरण (Rich verbal Environment)की जरूरत होती है जहाँ बालक को अपने भाषा के विकास के लिए अधिक अवसर मिल सके।

पियाजेनेप्राकसंप्रत्यातमक अवस्थाकी दो परिसीमाएँ (Limitations)बताई हैं जो निम्नलिखित हैं -

a) **जीववाद (Animism)** –जीवावाद में बालक निर्जीव वस्तुओं को भी सजीव समझने लगता है उनके अनुसार जो भी वस्तुएँ हिलती हैं या घूमती हैं वे वस्तुएँ सजीव हैं। जैसे सूरज, बादल, पंखा ये सभी अपना स्थान परिवर्तन करते हैं, व पंखा घूमता है, इसलिए ये सभी सजीव हैं।

b) **आत्मकेन्द्रिता (Egocentrism)** – आत्मकेन्द्रिता में बालक यह सोचता है कि यह दुनिया सिर्फ उसी के लिए बनाई गई है। इस दुनिया की सारी चीजें उसी के इर्द-गिर्द घूमती हैं। वह खुद को सबसे ज्यादा महत्व देता है। पियाजे के अनुसार उसकी बोली (Speech) का लगभग 38% आत्मकेन्द्रित होता है।

ii. **अंतर्दर्शी अवधि (Intuitive period)** – यह अवधि 4 साल से 7 साल तक होती है। इस अवधि में बालक की चिन्तन और तार्किक क्षमता पहले से अधिक सृदृढ़ हो जाती है। पियाजे के अनुसार अंतर्दर्शी चिन्तन ऐसा चिन्तन है जिसमें बिना किसी तर्क के किसी बात को तुरन्त स्वीकार कर लेना। अर्थात वह अगर कोई समस्या का हल करता है तो इसके समाधान का कारण वह नहीं बता सकता है। समस्या- समाधान में सन्निहित मानसिक प्रक्रिया के पीछे छिपे नियमों के बारे में उसकी जानकारी नहीं होती। पियाजे ने अंतर्दर्शी चिन्तन (Intuitive Thinking) की कुछ परिसीमाएँ बताई हैं -

a) इस उम्र के बालकों के विचार अपरिवर्त्य (Irreversible)होते हैं। अर्थात बालक मानसिक क्रम के प्रारम्भिक बिन्दु पर पुन: लौट नहीं पाता है (Gupta &Gupta 2002)। जैसे अगर 4 साल के किसी बच्चे से कहा जाए कि तुम्हारी मम्मी जैसे अंकित की मौसी है, उसी तरह उसकी मम्मी तुम्हारी मौसी होगी यह बात उसे समझ में नहीं आएगी।

b) पियाजे के अनुसार उस उम्र के बच्चों में तार्किक चिन्तन की कमी रहती है, जिसे पियाजे ने संरक्षण का सिद्धान्त (Law of conservation)कहा है। जैसे अगर किसी वस्तु के आकार को बदल दिया जाए तो उसकी मात्रा पर उसका कोई प्रभाव नहीं होगा, इस बात की समझ उनमें नहीं होती है।

3. मूर्त सक्रिय अवस्था (Period of Concrete Operation) –

यह अवस्था 7 साल से 12 साल तक चलती है। इस अवस्था में बच्चे का अतार्किक चिन्तन संक्रियात्मक विचारों का स्थान ले लेता है। बच्चे अब जोड़ना (Addition)घटाना (Subtraction) गुणा करना (Multiplication) और भाग करना (Division) कर सकते हैं। लेकिन अगर उसे शाब्दिक कथन (Verbal statement) के आधार पर मानसिक क्रियाएँ करने को कहा जाए तो वे नहीं कर सकते हैं। इस अवस्था के दौरान बालकों द्वारा तीन मानसिक निपुणता हासिल कर ली जाती है। ये तीन योग्यताएँ विचारों परिवर्त्य(Reversibility of Thought), संरक्षण (Conservation) तथा वर्गीकरण व पूर्ण अंश प्रत्ययों का उपयोग

(Classification and part whole conception) हैं। इस अवस्था में विचारों की विलोमता में बालक सक्षम हो जाते हैं। भौतिक वस्तुओं में संरक्षण (Conservation in physical objects) बालकों की मानसिक प्रक्रिया का एक अंग बन जाता है। सबसे महत्वपूर्ण विकास उनकी क्रमबद्धता अर्थात विभिन्न वस्तुओं को उनके आकार व भार आदि के दृष्टि से अलग करना तथा छोटे से बड़े क्रम में वर्गीकरण करना इस अवस्था में होता है। इस अवस्था के दौरान बालक अंश तथा पूर्ण दोनों के संबंध में विचार करना प्रारंभ कर देता है। अर्थातबालकों में यह क्षमता विकसित हो जाती है कि वह वस्तुओं को कुछ भागों में बाँट सकें और उन भागों के समस्या का समाधान तार्किक ढंग से कर सकें।

मूर्त सक्रिय अवस्था में बालक का ध्यान अपनी ओर से हटकर दूसरे की ओर जाने लगता है। अर्थात उसके सामाजीकरण (Socialization)की शुरूआत होती है।

इस अवस्था में मानसिक विकास की दो सीमाएँ पाई जाती हैं-

a. इस अवस्था में बालक तार्किक चिन्तन (Logical Thinking) तभी कर सकते हैं जब उनके सामने वस्तु ठोस रूप से उपस्थित की गई हो।
b. दूसरा, इस अवस्था में ठोस संक्रियात्मक चिन्तन की दूसरी परिसीमा यह है कि यह बहुत क्रमबद्ध नहीं होती है। किसी समस्या के तार्किक रूप से संभावित सभी समाधान के बारे में बालक नहीं सोच पाता है (ब्राउन तथा कूक,1986)।

4. औपचारिक – सक्रिय अवस्था (Period of Formal Operations)

यह संज्ञानात्मक विकास की अंतिमअवस्था है जो लगभग 11 साल से 15 साल की आयु तक होती है। इस अवस्था के दौरान बालक अमूर्त बातों के संबंध में तार्किक चिन्तन करने की क्षमता विकसित कर लेता है। इस अवस्था को किशोरावस्था (Period of Adolescence) कहा जाता है। बच्चे अब वर्तमान, भूत एवं भविष्य (Present Past & Future)के बीच अन्तर समझने लगते हैं। समस्या का समाधान सुव्यवस्थित ढंग से करने लगते हैं। इस अवस्था में बालक परिकल्पनाएँ (Hypothesis)बनाने के योग्य हो जाता है। उसकी व्याख्या करता है तथा व्याख्या के आधार पर निष्कर्ष भी निकालता है। अब बालक बड़ों के उत्तर दायित्व लेने के योग्य हो जाता है। पियाजेके अनुसार इस अवस्था में बालकों में बौद्धिक संगठन अधिक क्रमबद्ध हो जाता है। बालक एक साथ अधिक से अधिक बातों को समझने तथा उसका विचार करने में समर्थ हो जाता है। वे अपने बारे में विचार करते हैं इसलिए वे अकसर स्व आलोचक बन जाते हैं। धीरे-धीरे उनमें नैतिकता विकसित होने लगती है जिसके आधार पर वे नैतिक निर्णय (Moral Judgment)भी लेने लगते हैं।
इस तरह पियाजे द्वारा बताई गई संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त की चार अवस्थाएं इस बात का द्योतक है कि किसी भी बालक का संज्ञानात्मक विकास चार विभिन्न अवस्थाओं

से होकर गुजरता है जिसमें कुछ बालकों का बौद्धिक विकास तीव्र गति से होता है। कुछ का औसत गति से तथा कुछ का धीमी गति से।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

6. संवेदी-पेशीय अवस्था (Sensory Motor stage) जन्म से__________तक होती है।
7. ज्याँ पियाजे के अनुसार संज्ञानात्मक विकास की .__________.अवस्थाएँ होती हैं।
8. अंतर्दर्शी अवधि (Intuitive period) 4 साल से __________साल तक होता है।
9. पियाजेनेप्राकसंप्रत्यातमक अवस्थाएं की दो परिसीमाएँ (Limitations)बताई हैं जीववाद तथा __________।
10. संज्ञानात्मक विकास की अंतिमअवस्था को __________कहते हैं जो लगभग 11 साल से 15 साल की आयु तक होती है।
11. बालक निर्जीव वस्तुओं को भी सजीव समझने लगता है यह प्रक्रिया __________के नाम से जाना जाता है।
12. __________अवस्था में संकेतात्मक कार्यों की उत्पत्ति (Emergence of symbolic functions) तथा भाषा का प्रयोग (Use of language) होता है।
13. जब बालक यह सोचता है कि यह दुनिया सिर्फ उसी के लिए बनाई गई है इस प्रकार की सोच को __________कहते हैं।

पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त की किसी अन्य सिद्धान्त के साथ तुलना नहीं की जा सकती है। यह सिद्धान्त हर तरह से सार्थक माना जाता है। इस सिद्धान्त के इतना महत्वपूर्ण और लोकप्रिय होने के बावजूद कुछ आलोचकों ने इस सिद्धान्त की आलोचना की है।

6.6 संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त का मूल्यांकन Evaluation of Theory of Cognitive Development

i. कुछ आलोचकों का कहना है कि कुछ ऐसे जटिल व्यवहार जैसे अनुकरण (Imitation)तथा संरक्षण (Conservation)शुरूआत में बच्चों में पाए जाते हैं फिर धीरे-धीरे समाप्त हो जाते हैं। इस तरह के व्यवहार की व्याख्या पियाजे के सिद्धान्त के आधार पर करना कठिन है।
ii. पियाजे के अनुसार अगर कोई बालक किसी समस्या का समाधान नहीं कर पाता है तो इसका यह मतलब लगा लिया जाता है कि उनमें संज्ञानात्मक दक्षता (Cognitive competence)की कमी है। आलोचकों का मानना है कि अगर भाषा में सुधार कर बच्चों

को प्रश्न पूछा जाए तो उसका समाधान करने में वे सफल होंगे। इससे इस बात की पुष्टि होती है इस मामले में पियाजे की व्याख्या अधिक विश्वसनीय नहीं है।

iii. आलोचकों के अनुसार बालकों के व्यवहारों का प्रेक्षण (Observation) विधि जो पियाजे के द्वारा अपनाया गया है उनमें वस्तुनिष्ठता (Objectivity) की कमी है।

iv. चार्ल्सवर्थ (1968)का मानना है कि पियाजे ने बच्चों की क्रियात्मक गतिविधि (Motor activity)के प्रेक्षण के आधार पर उनका संज्ञानात्मक विकास का वर्णन किया है, लेकिन चार्ल्सवर्थ के अनुसार कोई भी गामक कौशल (Motor skill)बच्चे के संज्ञानात्मक विकास के वर्णन में असमर्थ है। पियाजे के सिद्धान्त की समीक्षा करने पर पता चलता है कि यह सिद्धान्त सभी संस्कृतियों (Cultures)तथा सामाजिक-आर्थिक अवस्थाओं (Socio-economic conditions)के बच्चे के संज्ञानात्मक विकास की व्याख्या समुचित रूप से करने में सफल नहीं है। हिल्गार्ड, ऐटकिंसन तथा ऐटकिंसन (Hilgard, Atkinson and Atkinson 1976) के अनुसार निम्न वर्ग के बच्चों (Lower-class children) में संरक्षात्मक संप्रत्ययों (Conservation concepts) का विकास मध्य वर्ग के बच्चे (Middle class children) से अधिक आयु में होता है। इसी तरह देहाती बच्चों में शहरी बच्चों की तुलना में संरक्षण-संप्रत्यय का विकास कम ही आयु में हो जाता है।

इस दिशा में यह देखने का प्रयास किया गया है कि विशेष प्रशिक्षण (Special training)के द्वारा संज्ञानात्मक अवस्थाओं (Cognitive stages)में सुधार लाकर बौद्धिक योग्यता की प्रगति की रफ्तार को तेज किया जा सकता है या नहीं। संरक्षण-संप्रत्यय (Conservation concepts) पर किए गए अध्ययनों से परस्पर विरोधी परिणाम मिले हैं। कुछ अध्ययनों से पता चलता है कि परीक्षण से संप्रत्यय सीखने में सफलता मिलती है। परन्तु कुछ दूसरे अध्ययनोंसे पता चलता है कि संप्रत्यय को सिखाया नहीं जा सकता है। ग्लैमर तथा रेसनिक (Glaser and Resnick,1972) ने अपने अध्ययन में पाया कि निर्देशन-विधि (Instruction method) द्वारा संज्ञानात्मक विकास की रफ्तार तेज की जा सकती है। संज्ञानात्मक विकास की एक अवस्था को दूसरी अवस्था में परिवर्तित होना परिपक्वता (Maturation) पर निर्भर करता है। अत: जब बच्चे को उसकी परिपक्वता को ध्यान में रखकर निर्देशन दिया जाए तो अधिक अच्छा है।

अत: हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि संज्ञानात्मक विकास की समुचित व्याख्या करने में यह सिद्धान्त सफल नहीं है। पियाजे के सिद्धान्त के ढाँचे (Frame work) को स्वीकार किया जा सकता है, परन्तु सभी संस्कृतियों के बच्चों को संज्ञानात्मक योग्यता के विकास के लिए उनकी चार अवस्थाओं को उसी रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है। शोध कार्यों से पता चलता है कि संज्ञानात्मक योग्यता के विकास पर अनेक चरों (Variables) का प्रभाव पड़ता है। रैना (Raina, 1968), सिंह (Singh,1977),अहमद (Ahmed, 1980), आदि के अध्ययनों से स्पष्ट है कि सृजनात्मक चिन्तन (Creative

thinking) के विकास पर सामाजिक आर्थिक स्थिति (SES) का गहरा प्रभाव पड़ता है। सेहगल (Sehagal, 1978), सिंह (Singh 1979), आदि ने अपने अध्ययन में देखा कि रचनात्मक चिन्तन के विकास पर स्थान (Locality) का सार्थक प्रभाव पड़ता है। रैना (Raina, 1982) के अनुसार लड़के तथा लड़कियों में संज्ञानात्मक योग्यता का विकास समानरूप से नहीं होता है। सक्सेना (Saxena 1982) ने अपने अध्ययन में पाया कि सम्पन्न बच्चों की अपेक्षा वंचित बच्चों (Deprived children)मेंअमूर्त विवेक (AbstractReasoning) तथा साहचर्य सीखने (Associative learning) की योग्यताएँ देर से विकसित होती हैं तथा सीमित होती हैं। इन सारे तथ्यों (Facts) के आलोक की समुचित व्याख्या पियाजे के सिद्धान्त से सम्भव नहीं है। इन्हीं त्रुटियों को ध्यान में रखते हुए पासकौल लियोन (Pascaul-Leone, 1983) ने पियाजे के सिद्धान्त को संशोधित तथा परिमार्जित करके प्रस्तुत किया, जो पियाजे के मौलिक सिद्धान्त से अधिक संतोषजनक है।

इन सारी आलोचनाओं के बावजूद पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त को पथ-प्रदर्शक माना जाता है।

6.7 शैक्षिक निहितार्थ

पियाजे (Piaget) के संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्तशिक्षण – अधिगम प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। इस सिद्धांत के शैक्षिक निहितार्थ निम्नवत हैं-

1. पियाजे (Piaget) के संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त बालकों के बौद्धिक विकास की प्रक्रिया को समझने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है ।
2. इस सिद्धांत के द्वारा शिक्षण – अधिगम प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाया जा सकता है।
3. संज्ञानात्मक विकास अवस्था के आधार पर पाठ्यक्रम के संगठन में यह सिद्धांत काफी मदद पहुँचाती है।
4. संज्ञानात्मक विकास की समुचित व्याख्या करने में यह सिद्धान्त एक सफल आधार प्रदान करता है।
5. पियाजे (Piaget) के संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त शैक्षिक शोध का एक बहुत बड़ा क्षेत्र है।

6.8 सारांश

विकासात्मक मनोविज्ञान के क्षेत्र में पियाजे (Piaget) के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त की महत्वपूर्ण भूमिका है। पियाजे के इसी सिद्धान्त के आधार पर बच्चों के क्रमिक विकास

(Sequential Development) के बारे में जाना जाता है। पियाजे ने संज्ञानात्मक सिद्धान्त का वर्णन करते हुए यह कहा है कि बच्चे खुद अपने विकास में एक सक्रिय भूमिका अदा करते हैं और खुद को नए वातावरण में अभियोजनकरनेकी कोशिश करते हैं। पियाजे ने प्रत्येक विकासात्मक अवस्था (Developmental stages) का विस्तृत विवरण देते हुए कहा कि बच्चों में नई-नई स्कीमटा (Schemata) की उत्पत्ति, आत्मसातीकरण (Assimilation) तथा समाविष्टिकरण (Accommodation) के बीच अन्त:क्रिया का कारण होता है।

आत्मसातीकरण (Assimilation) पुराने अनुभवों को नए अनुभवों के साथ समायोजित करने की प्रक्रिया है और समाविष्टिकरण (Accommodation) से तात्पर्य जिसमें बालक नए अनुभवों के अनुसार पुरानी संरचना में रूपान्तरण (Modification) करने की कोशिश करता है। और जब बालक आत्मसातीकरण और समाविष्टिकरण में संतुलन करने की चेष्टा करता है तो उस प्रक्रिया को साम्यधारणा (Equilibration) कहते हैं।

पियाजे (Piaget) के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त को चार अवस्था में विभाजित किया गया है-

i. **संवेदी-पेशीय अवस्था (Sensory motor stage)** जो जन्म से 2 साल तक की होती है। इस अवस्था में शिशु अपने सहजात प्रतिक्रिया को बदलने की कोशिश करता है। इस दौरान चूसने की क्रिया (Sucking behavior) प्रबल होती है। शिशु का बौद्धिक विकास बहुत तेजी से होता है। इस अवस्था में शिशु बड़ों का अनुकरण (Imitation) करता है तथा अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अपनी क्रिया को दोहराना सीख जाता है। इस अवस्था में बालक प्रयास एवं त्रुटि विधि का भी प्रयोग करता है। शिशु खुद ही समस्या का समाधान करना सीख जाता है।
ii. **पूर्व- संक्रियात्मक अवस्था (Pre-operational stage)** यह अवस्था 2 साल से 7 साल तक का होती है, जिसमें बच्चे संकेत (Symbols) का प्रयोग करते हैं जो शुरू-शुरू में अव्यवस्थित होते हैं। भाषा का प्रयोग करना सीख जाते हैं। इस अवस्था में तार्किक चिन्तन क्षमता और सुदृढ़ हो जाती है लेकिन पियाजे के अनुसार इस अवस्था की कुछ परिसीमाएँ हैं – जैसे जीववाद (Animism) आत्मकेन्द्रिता(Egocentrism)अपरिवर्त्य (Irreversibility) आदि।
iii. **मूर्त– सक्रिय अवस्था (Period of concrete operation)** यह अवस्था 7 साल से 12 साल तक होती है, जिसमें बच्चों का अतार्किक चिन्तन संक्रियात्मक विचारों का स्थान ले लेता है। इस अवस्था में बालक विचारों परिवर्त्य में सक्षम हो जाते हैं। भौतिक वस्तुओं में संरक्षण करने योग्य हो जाते हैं। बालकों में क्रमबद्धता (Classification) के गुण भी इस अवस्था में पाए जाते हैं। परन्तु इस अवस्था में दो दोष भी पाए जाते हैं। (1) वे सक्रिय चिन्तन तभी कर सकते हैं जब उनके सामने ठोस

वस्तु उपस्थित हो। तार्किक कथन (Verbal statement) के आधार पर समाधान नहीं कर सकते हैं।

iv. **औपचारिक सक्रिय अवस्था (Period of formal operation)**जो लगभग 11 साल से 15 साल तक होती है। इस अवस्था को किशोरावस्था (Period of Adolescence) कहा गया है। समस्या का समाधान व्यवस्थित ढंग से करता है तथा भूत, वर्तमान तथा भविष्य के बीच अन्तर समझने लगता है। इस अवस्था में बालक परिकल्पनाएँ बनाता है। उसकी व्याख्या करता है तथा निष्कर्ष भी निकालने की कोशिश करता है। उसकी सोच भी वयस्क जैसी हो जाती है। नैतिक तथा अनैतिक (Moral and Immoral) के अंतर को समझने लगता है।

इस तरह पियाजे ने संज्ञानात्मक विकास सिद्धान्त के माध्यम से बौद्धिक विकास की हर अवस्था को विस्तृत ढंग से प्रस्तुत किया है।

6.9 शब्दावली

1. **संज्ञान (Cognition):**मानसिक प्रक्रिया जिसका संबंध चिंतन (Thinking), समस्या-समाधान, भाषा संप्रेषण तथा और भी बहुत सारी मानसिक प्रक्रियाओं से है।
2. **स्कीमाटा (Schemata):** अनुभव (Experience) या व्यवहार (Behavior) को संगठित करने की ज्ञानात्मक संरचना।
3. **संगठन (Organization):** प्रत्यक्षीकृत तथा बौद्धिक सूचनाओं (perceptual and cognitive information) को सही तरीके से बौद्धिक संरचनाओं (cognitive structure) में व्यवस्थित करना।
4. **अनुकूलन (Adaptation):** वह प्रक्रियाजिसमें बालक अपने को बाहरी वातावरण (External Environment) के साथ समायोजन करने की कोशिश करता है।
5. **आत्मसातीकरण (Assimilation)**: एक नई वस्तु अथवा घटना को वर्तमान अनुभवों में सम्मिलित करने की प्रक्रिया है।
6. **समाविष्टिकरण (Accommodation):** वह प्रक्रिया जिसमें बालक नए अनुभवों की दृष्टि से पूर्ववर्ती संरचना में सुधार लाने या परिवर्तन लाने की कोशिश करता है।
7. **संरक्षण (Conservation):** वातावरण में परिवर्तन तथा स्थिरता को समझने और वस्तु के रंग-रूप में परिवर्तन तथा उसके तत्व के परिवर्तन में अन्तर करने की प्रक्रिया।
8. **संज्ञानात्मक सरंचना (Cognitive structure):**मानसिक योग्यताओं का समूह।
9. **मानसिक प्रचालन (Mental Operation):** संज्ञानात्मक संरचना की सक्रियता।
10. **स्कीम्स (Schemes):** मानसिक प्रचालन (Mental operation) संप्रत्यय का बाह्य रूप।

11. **स्कीमा (Schema):** ऐसी मानसिक संरचना जिसका समान्यीकरण (Generalization) संभव हो।
12. **विकेन्द्रण (De centering):** यथार्थ चिंतन की क्षमता अर्थात कोई बालक किसी समस्या के समाधान के संबंध में किस सीमा तक वास्तविक ढंग से सोच-विचार करता है।
13. **जीववाद (Animism)**: निर्जीव वस्तुओं को भी सजीव समझना ।
14. **आत्मकेन्द्रिता (Egocentrism)**: खुद को केन्द्र में रखकर कोई निर्णय लेना।
15. **साम्यधारणा (Equilibration)**: आत्मसातीकरण और समाविष्टिकरण में संतुलन करने की प्रक्रिया।

6.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

1. समाविष्टिकरण
2. विकेन्द्रण
3. स्विट्जरलैंड
4. पियाजे
5. संज्ञानात्मक संरचना
6. दो
7. चार
8. सात
9. आत्मकेन्द्रिता
10. औपचारिक – सक्रिय अवस्था
11. जीववाद
12. पूर्व सक्रियात्मक अवस्था
13. आत्मकेन्द्रिता

6.11संदर्भ ग्रंथ सूची

1. श्रीवास्तव, डी०एन० व प्रीति वर्मा (2008), बाल मनोविज्ञान, बाल विकास, वाराणसी, मोतीलाल बनारसी दास।
2. हर्लाक एलिजावेथ (1997) : विकास मनोविज्ञान, नई दिल्ली, प्रैंटिस हाल ऑफ इंडिया।
3. सिंह,ए0के0 (2007): उच्चतर मनोविज्ञान, वाराणसी, मोतीलाल बनारसी दास।
4. मंगल, एस0 के0 (2010), शिक्षा मनोविज्ञान, नई दिल्ली, प्रैंटिस हाल ऑफ इंडिया।
5. सिंह,ए0के0 (2007): शिक्षा मनोविज्ञान, पटना, भारती भवन पब्लिसर्श।

6.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
2. संज्ञानात्मक विकास से आप क्या समझते हैं ? पियाजे के अनुसार संज्ञानात्मक विकास के अवस्थाओं का वर्णन कीजिए।
3. जन्म से किशोरावस्था तक बालकों में संज्ञानात्मक विकास की प्रक्रिया कैसे संपन्न होती है, का वर्णन करें।
4. पियाजे के सिद्धान्त के कुछ महत्वपूर्ण संप्रत्ययों जैसे स्कीमाटा, संगठन, आत्मसातीकरण, समाविष्टिकरण तथा साम्यधारणा की व्याख्या कीजिए।

इकाई 7- जिरोम एस0 ब्रूनर का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त एवं इसके शैक्षिक निहितार्थ
Jerome S. Bruner's Theory of Cognitive Development and Its Educational Implications

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 जिरोम एस0 ब्रूनर एवं संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त
7.4 ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के मूलभूत आयाम
7.5 जे0एस0ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाओं का सिद्धान्त
7.6 ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के शैक्षिक निहितार्थ
7.7 सारांश
7.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर
7.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
7.10 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

वृद्धि एवं विकास, दोनों पद किसी व्यक्ति के व्यवहार एवं व्यक्तित्व के परिवर्तन को इंगित करते हैं। विकास, संरचनात्मक एवं क्रियात्मक, सम्पूर्ण परिवर्तन से संबन्धित है। विकास का बहुत ही विस्तृत अर्थ है तथा यह व्यक्तिके जीवन विस्तार की कालावधि की विभिन्न विमाओं से शारीरिक विकास, चलन क्रिया विकास, संज्ञानात्मक विकास, सामाजिक विकास, भावात्मक विकासऔर नैतिक विकास में परिवर्तनों की सामान्य प्रवृत्ति का वर्णन करता है। जैसा कि किसी व्यक्ति के गुणात्मक एवं मात्रात्मक विकास क्रियात्मक एवं संरचनात्मक दोनोंपक्षों को शामिल करता है एक प्रक्रिया है जो किसी जीव या जीवन के अति प्रारम्भिक अवस्था से प्रारम्भ होती है। समय के अनुसार (साथ-साथ) जीव अपनी वृद्धि एवं विकास के चरम, जिसे परिपक्वता कहते हैं, को प्राप्त करता है। विकास की प्रक्रिया की सामान्य प्रवृत्ति का अन्वेषण विभिन्न विकासात्मक मनोवैज्ञानिकों द्वारा इसकी वास्तविक गतिकी को जानने हेतु किया गया। परिणामस्वरूप, निश्चित विकासात्मक अवस्था किसी

के व्यक्तित्व के एक या अन्य विमाओं में होने वाली विकासात्मक प्रक्रिया को जानने हेतु विभिन्न सिद्धान्तों का अविर्भाव हुआ। संज्ञानात्मक विकास के क्षेत्र में, ज्याँ पियाजे का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त, आसुबेल का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त, वाईगोत्सकी का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त और जे0एस0 ब्रूनर का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त कुछ प्रमुख सिद्धान्त हैं। संज्ञानात्मक विकास के विभिन्न पक्षों को जानने हेतु हम यहाँ जे0एस0 ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के विभिन्न पहलूओं पर चर्चा करेंगें।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप:-

1. संज्ञान के अर्थों को जानने में सक्षम होंगे।
2. संज्ञानात्मक विकास की प्रकृति का वर्णन करने में सक्षम होंगे।
3. जे0एस0 ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के विभिन्न अवयवों की व्याख्या कर सकेंगे ।
4. जे0एस0 ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के विभिन्न अवस्थाओं के मध्य अन्तर स्पष्ट कर सकेंगे ।
5. जे0एस0 ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के शैक्षिक निहितार्थ को सोदाहरण स्पष्ट करने में सक्षम होंगे।

7.3 जिरोम एस0 ब्रूनर एवं संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त Jerome S. Bruner and his Theory of Cognitive Development

कोई भी विषय विकास की किसी भी अवस्था में इस प्रकार से सिखाया जा सकता है कि वह बालक के संज्ञानात्मक क्षमताओं में स्थापित होता हो। (जे0एस0ब्रूनर)

अमेरिकी मनोवैज्ञानिक जिरोम सेमौर ब्रूनर (जन्म 1915) ने प्रत्यक्षण , संज्ञान एवं शिक्षा के अध्ययन में उल्लेखनीय योगदान दिया। उन्होंने अमेरिका एवं इंग्लैण्ड के विश्वविद्यालयों में अध्ययन कार्य कियातथा शिक्षा एवं मनोविज्ञान के क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकों के लेखक के रूप में जाने जाते हैं।

जिरोम सेमौर ब्रूनर का जन्म अप्रवासी माता-पिता हरमन एवं रोज ब्रूनर से 1 अक्टूबर, 1951 को हुआ था। वे जन्मान्ध थे और शैशवास्था में ही मोतियाबिन्द के दो आपरेशनके बाद भी रोशनी प्राप्त न कर सके। उन्होंने सर्वाजनिक विद्यालयो में दाखिला लिया। उसके बाद उच्च विद्यालय से 1933 में स्नातक हुए और ड्यूक विश्वविद्यालय से मनोविज्ञान में विशेष योग्यता प्राप्त की। उन्होंने1973 में

ड्यूक विश्वविद्यालय से बी0ए0 एवं 1941 में हार्वर्ड विश्वविद्यालय से गार्डन अलपोर्ट के दिशा-निर्देशन में की पी-एच0डी0 की उपाधि प्राप्त की। वे द्वितीय विश्व- युद्ध के समय सुप्रीम हेडक्वार्टरस एलायड इक्सेपेडीशनरी कोर्स यूरोप के मनोवैज्ञानिक युद्ध विभाग में कार्यरत जनरल आईसेन हावर के सानिध्य में सेवारत रहे। युद्धोपरान्त उन्होंने1945 में हार्वर्ड विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान संकाय से सेवारम्भ की।

ब्रूनर, जिन्होंने बालकों के संज्ञानात्मक विकास का अध्ययन किया, ने बालकों की बाहरी दुनिया के संज्ञानात्मक प्रदर्शन (प्रस्तुतीकरण) से संबंन्धित एक सिद्धान्त प्रतिपादित किया। ब्रूनर का सिद्धान्त वर्गीकरण पर आधारित है। वर्गीकरण हेतु प्रत्यक्षीकरण, वर्गीकरण हेतु संप्रत्ययीकरण, वर्ग बनाने हेतु अध्ययन, वर्गीकरण हेतु निर्णय लेनाब्रूनर मानते हैं लोग दुनिया को उसकी समानताओं एवं विषमताओं के पदो में व्याख्यायित करते हैं।

वे दो प्रकार के चिन्तन के प्राथमिक तरीकों, कथन माध्यम एवं रूपदर्शन माध्यम, का सुझाव देते हैं। कथन चिन्तन में मस्तिष्क क्रमागत , क्रिया - उन्मुख एवं विवरण प्रेरित विचार में व्यस्त होता है।

रूप दर्शन चिन्तन(Paradigmatic Thinking) में मन व्यवस्थित व वर्गीकृत संज्ञान को प्राप्त करने हेतु विशिष्टताओं का अतिक्रमण करता है। प्रथम स्थिति में चिन्तन कहानी एव ग्रीपिंग ड्रामा का रूप लेता है। बाद वाली स्थिति में चिन्तन तार्किक प्रवर्तकों (Logical operators) से जुड़े कथनों (Propositons) के रूप में संरचित है।

बालकों के विकास पर अपने अनुसंधान (1966) में ब्रूनर ने प्रस्तुतीकरण के तीन तरीको को प्रस्तावित किया सक्रियता प्रस्तुतीकरण (क्रिया-आधारित), दृश्य प्रतिमा प्रस्तुतीकरण (प्रतिमा-आधारित) एवं सांकेतिक प्रस्तुतीकरण (भाषा- आधारित) । ये प्रस्तुतीकरण के तीनों तरीके आपस में समाकलित होते हैं तथा केवल स्वतंत्रता पूर्वक क्रमिक होते हैं जिससे कि वे परस्पर अनुवादित हो सकें। सांकेतिक प्रस्तुतीकरण का अन्तिम तरीका है। ब्रूनर के सिद्धान्त के अनुसार, यह तब प्रभावी होती है जब ये पदार्थ का सामना सक्रिया से दृश्य प्रतिमा, दृश्य प्रतिमा से सांकेतिक प्रस्तुतीकरण की एक श्रेणी का अनुसरण करता है। यही क्रम वयस्क विद्यार्थियों के लिए भी सत्य है। एक सही अनुदेशनात्मक चित्रकार ब्रूनर का कार्य यह भी सुझाव देता है कि एक विद्यार्थी (चाहे व बहुत ही कम उम्र का हो) किसी भी पाठ को सीखने में सक्षम होता है जब तक कि अनुदेशन उचित प्रकार से संगठित है। (पियाजे को मान्यताओं तथा दूसरे अवस्था के सिद्धान्तकारों के विपरीत) ब्लूम टैक्सोनामी की तरह एक कूट कृत करने का तन्त्र जिसमें लोग सम्बन्धित वर्गों की एक निश्चित क्रम में व्यवस्था बनाते हैं का सुझाव देते हैं। वर्गो का प्रत्येक उच्चतर अनुक्रमिक स्तर अधिक विशिष्ट बन जाता है प्रतिध्वनित बेन्जामीन ब्लूम टैक्सोनॉमी की ज्ञान प्राप्ति की समझ जैसे कि अनुदेशनात्मक स्कैफोल्डिंग से संबन्धित विचार। सीखने की इसी समझ के साथ, ब्रूनर एक चक्राकार पाठ्यचर्या, का प्रस्ताव करते हैं। एक अध्यापन उपागम जिससे प्रत्येक विषय या कौशल क्षेत्र का निश्चित

समयान्तरालों पर प्रत्येक बार अधिक सतर्कता पूर्वक पुनरीक्षण किया जाता है। 1987 में आपको बालजन पुरस्कार से सम्मानित किया गया। यह सम्मान आपके मानव मनोविज्ञान की प्रमुख समस्याओं पर किए गए शोध के लिए दिया गया। आपने अपने प्रत्येक शोध में मानव की मनोवैज्ञानिक संकायों के सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक मूल्यों के विकास में मूल एवं वास्तविक योगदान दिया है।

जे0एस0 ब्रूनर द्वारा विकसित संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के विस्तरण से पहले हमें संज्ञान एवं संज्ञानात्मक विकास के सही संप्रत्यय को जानना आवश्यक है।

संज्ञान (Cognition) उच्चतर स्तर का अधिगम है और इसमें यह प्रत्यक्षण, संग्रहीकरण एवं इन्द्रियों द्वारा संग्रहीत सूचनाओं की प्रक्रिया आदि सम्मिलित हैं यह उन सभी मानसिक प्रक्रियाओं को शामिल करता है जिससे स्वयं के, दूसरों के एवं वातावरण के बारे में ज्ञान प्राप्त होता है एवं प्राप्त ज्ञान व्याख्यायित होता है। मानवीय चिन्तन प्रक्रियाएं (प्रत्यक्षीकरण, तर्कणा तथा स्मरण) संज्ञान के उत्पाद हैं। संज्ञानात्मक प्रक्रियाएं वह प्रक्रियाएं हैं जो ज्ञान एवं जागरूकता के लिए उत्तरदायी हैं। वे अनुभव, प्रत्यक्षणा और स्मृति (स्मरण) तथा ठीक वैसे ही प्रकट शाब्दिक चिन्तन की प्रक्रियाओं को साम्मिलित करते हैं। यह मस्तिष्क की आंतरिक संरचनाओं एवं उसकी क्रियाओं से सम्बन्धित है। ये आन्तरिक संरचनायें और प्रक्रियाएं संवेदन प्रत्यक्षणा, अवधान, अधिगम , स्मरण, भाषा, चिन्तन तथा तर्कणा को शामिल करते हुए ज्ञानार्जन एवं ज्ञान की उपयोगिता में साम्मिलित रहती हैं। ये सभी संज्ञान के विभिन्न पक्ष हैं। एक जीव के विशेष परिस्थितियों में प्रकट व्यवहार पर आधारित संज्ञान के क्रियात्मक अवयवों के बारे में सिद्धान्तों का संज्ञानात्मक वैज्ञानिक परीक्षण करते हैं तथा प्रस्तावित करते हैं।सम्पूर्ण जीवन में संज्ञान की व्यापक व्याख्या, ज्ञान-प्रेरित एवं ज्ञानेन्द्रिय प्रक्रियाओं तथा नियन्त्रित एवं स्वचालित प्रक्रियाओं के मध्य अन्तः क्रिया के रूप में की जा सकती है।

संज्ञानात्मक विकास (Cognitive development) बाल्यावस्था से किशोरवस्था, किशोरावस्था से वयस्कता तक स्मरण योग्यता, समस्या समाधान और निर्णय-लेने की योग्यता को सम्मिलित करते हुए चिन्तन प्रक्रियाओं की संरचना से सम्बंधित है।

एक समय यह भी विश्वास किया जाता था कि शिशुओं में चिन्तन या जटिल विचारों को बनाने की क्षमता, में कमी होती है और जब तक वे भाषा नहीं सीख लेते तब तक बिना संज्ञान के होते हैं। अब यह ज्ञात हुआ है कि बच्चे जन्म से ही अपने वातावरण के प्रति जागरूक होते हैं तथा सम्बन्धित गवेषणा में रूचि रखते हैं। जन्म से ही शिशु सक्रिय रूप से अधिगम करना शुरू कर देते हैं। वे ऐसा प्रत्यक्षणा एवं चिन्तन कौशल के विकास हेतु प्राप्त आंकड़ों का प्रयोग करकेअपनी चारो तरफ की सूचनाओं को एकत्रित करते हैं, छटनी करते हैं एवं प्रक्रिया करते हैं।

इस प्रकार, संज्ञानात्मक विकास, एक व्यक्ति कैसे प्रत्यक्षण करता है, कैसे समझ चिन्तन करता है और अनुवांशिक एवं अधिगमित कारकों से अन्तःक्रिया के द्वारा प्राप्त अपनी दुनिया की समझ कैसेप्राप्त करता है, को निर्देशित करता है। सूचना की प्रक्रिया , बुद्धि, तर्कणा, भाषा विकास एवं स्मृति संज्ञानात्मक विकास के क्षेत्र हैं।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. ब्रूनर का सिद्धान्त _______ पर आधारित है।
2. बालकों के विकास पर अनुसंधान में ब्रूनर के प्रस्तुतीकरण के तीन तरीकों के नाम लिखिए।
3. सूचना की प्रक्रिया,बुद्धि, तर्कणा, भाषा विकास एवं स्मृति __________ के क्षेत्र हैं।

7.4 ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के मूलभूत आयाम Fundamental Aspects of Bruner's Theory of Cognitive Development

ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त की सटीक गतिकी को समझने हेतु निम्नलिखित कारक प्रमुख स्थान रखते हैं:-

वर्गीकरण (Categorization)

ब्रूनर के विचार वर्गीकरण पर आधारितहैं "वर्गीकरण के लिए प्रत्यक्षण, वर्गीकरण के लिए संप्रत्यायीकरण , वर्गीकरण करने हेतु अधिगम, वर्गीकरण के लिए निर्णयीकर"। मस्तिष्क सूचनाओं का सरलीकरण कैसे करता है जो कि लघु-अवधि स्मृति में प्रवेश करता है , वर्गीकरण है। ब्रूनर ने आन्तरिक संज्ञानात्मक मानचित्रों की संरचना में सूचनाओं के वर्गीकरण पर ज्यादा जोर दिया। उनका विश्वास है कि प्रत्यक्षण, संप्रत्ययीकरण, अधिगम, निर्णयीकरण और अनुमानीकरण ये सभी वर्गीकरण में सम्मिलित होते हैं।

संगठन (Organisation)

संगठन से तात्पर्य सूचनाओं को कूटकृत तन्त्र में व्यवस्थित करने से है। कूट-कृत तन्त्र संवेदी निवेश को पहचानने हेतु प्रेषित वर्ग होते हैं। ये उच्चतर संज्ञानात्मक क्रियाएं, प्रमुख संगठनात्मक चर होते हैं। इससे परे तात्कालिक संवेदी आँकड़े संबन्धित वर्गों के आधार पर अनुमान लगाने में सम्मिलित

हैं। संबंन्धित वर्ग एक कूट-कृत तन्त्र बनाते हैं। ये संबन्धित वर्गों की क्रमबद्धित व्यवस्थाएं हैं। ब्रूनर ने एक कूट-कृत तंत्र का सुझाव दिया जिसमें लोग संबन्धित वर्गों की श्रेणी बद्ध व्यवस्था बनाते हैं। प्रख्यात बेन्जामीन ब्लूम की ज्ञानार्जन की समक्ष एंव अनुदेशानात्मक स्कैफोल्डिंग से सम्बन्धित विचार के प्रत्येक क्रमागत उच्चतर स्तर और भी विशेष हो जाते हैं।(ब्लूम टैक्सोनॉमी)

मानसिक प्रदर्शन के माध्यम (Modes of Mental Representations)

ब्रूनर के विचारों में मानसिक प्रदर्शन के तीन माध्यम है- दृश्य, शब्द तथा प्रतीक। बच्चे आन्तरिक सूचना संसाधन एवं संग्रहण तंत्र द्वारा बाहरी वास्तविकता के मानसिक प्रदर्शन का विकास करते हैं। मानसिक प्रदर्शन हेतु भाषा बहुत सहायक होती है।

भाषा (Language)

ब्रूनर के तर्क के अनुसार संज्ञानात्मक प्रदर्शन के आयाम भाषा से मदद प्राप्त करते हैं। उन्होंने भाषा-ज्ञान में सामाजिक व्यवस्था के महत्व पर जोर दिया इनके विचार पियाजे के विचारों के समान हैं, परन्तु वे विकास के सामाजिक प्रभावों पर ज्यादा जोर देते हैं। भाषा प्रतीकों का तंत्र है जो संज्ञानात्मक विकास या वृद्धि के विकास में मुख्य स्थान रखती है। यह आन्तरिक संप्रत्ययों के संचार में सहायक होती है।

शिक्षक एवं शिक्षार्थी के मध्य अन्तःक्रिया (Interaction Between Teacher and Taught)

शिक्षक-शिक्षार्थी के मध्य प्रगाढ़ अन्तःक्रिया, शिक्षार्थी के संज्ञानात्मक विकास में सार्थक अन्तर स्थापित करती है। समाज का कोई भी सदस्य शिक्षक हो सकता है। माता, पिता, मित्र या वह कोई जो कुछ सीखा सकता है, शिक्षक हो सकता है।

अधिगमकर्ता का अभिप्रेरण (Motivation of Learner)

ब्रूनर, पियाजे के बच्चों के संज्ञानात्मक विकास के विचारों से प्रभावित थे। 1940 के दशक के दौरान उनके प्रारम्भिक कार्य आवश्यकता, अभिप्रेरण एवं प्रत्याशा (मानसिक प्रवृत्ति) और उनके प्रत्यक्षण पर प्रभाव पर केन्द्रित रहे। उन्होंने यह दृष्टिकोण प्रस्तुत किया कि बच्चे सक्रिय समाधानकर्ता होते है तथा 'कठिन विषयों' के अन्वेषण में सक्षम होते हैं जैसा कि बच्चे आन्तरिक अभिप्रेरणा से ओत-प्रोत होते हैं। उन्होंने संज्ञानात्मक विकास के एक फलन के रूप में अधिगम हेतु अभिप्रेरणा का अन्वेषण किया। उन्होंने महसूस किया कि आदर्शतः विषय वस्तु में रूचि, अधिगम हेतु सबसे उपयुक्त (अच्छी) उद्दीपक है। ब्रूनर श्रेणी अथवा कक्षा श्रेणी-क्रम जैसे बाहरी प्रतिस्पर्धात्मक उद्देश्यों (goals) को प्रसन्द नहीं करते थे।

संरचनावादी प्रक्रिया की तरह अधिगम (Learning as Constructivist Process)

अधिगम वास्तविकताओं/ को संरचित करने की प्रक्रिया है जो कि अन्ततः संज्ञानात्मक विकास में जुड़ जाती है। ब्रूनर का सैद्धान्तिक ढाँचा इस विषय-वस्तु पर आधारित है कि अधिगमकर्ता विद्यमान ज्ञान के आधार पर नए विचार या संप्रत्यय संरचित करते हैं। अधिगम एक सक्रिय प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के आयामों में सूचनाओं का चयन एवं रूपान्तरण, निर्णयीकरण, परिकल्पनाएं बनाना और सूचनाओं एवं अनुभवों से अर्थ निकालना सम्मिलित है।

सूझपूर्ण एवं विशलेषणात्मक चिन्तन (Intuitive and Analytic Thinking)

ब्रूनर का विश्वास है कि सूझपूर्ण एवं विश्लेषणात्मक दोनों चिन्तन प्रोत्साहित एवं पुरस्कृत किए जाने चाहिए। उनका विश्वास था कि सूझपूर्ण (अर्न्तज्ञात) कौशलों को कम-बल दिया जाता था और वे प्रत्येक क्षेत्र में सूझ पूर्ण छलांग (कदम) हेतु विशेषज्ञों की क्षमताओं पर चिन्तन करते हैं। यह एक बिना विश्लेषणात्मक कदम के मुक्तिपूर्ण लेकिन तात्कालिक प्रतिपादन पर पहुँचने की बृद्धिपूर्ण तकनीकी है जिससे इस तरह के प्रतिपादन वैध या अवैध निष्कर्ष पाए जाएँगे। (दण्डपाणी, 2001) सूझपूर्ण चिन्तन बृद्धि पूर्ण अनुमान, अटकलों आदि से प्रदर्शित होता है।

खोज-अधिगम (Discovery learning)

खोज अधिगम संज्ञान की क्रियात्मक क्षमता को बढ़ाता है। ब्रूनर में 'खोज-अधिगम'को विख्यात किया। खोज-अधिगम एक पूछ-ताछ आधारित संरचनावादी अधिगम सिद्धान्त है जो कि समस्या समाधान परिस्थितियों में होता है जहाँ अधिगमकर्ता अपने स्वयं की अनुभूतियों एवं विद्यमान ज्ञान के प्रयोग से तथ्यों, उनके सम्बन्धों एवं नए सत्यों को सीखने हेतु खोजता है। शिक्षार्थी वस्तुओं के जोड़-तोड़ एवं अन्वेषण से एवं वाद-विवाद से जूझकर या प्रयोगों को सम्पन्न करके (वातावरण) से अन्तःक्रिया करता है। परिणामस्वरूप, शिक्षार्थी स्वयं द्वारा अन्वेषित ज्ञान एवं संप्रत्ययों को आसानी से स्मरित कर सकेंगे (अन्तरणवादी प्रतिमान के विपरित)। प्रतिमान जो खोज-अधिगम पर आधारित है- निर्देशित- खोज , समस्या आधारित अधिगम, अनुकरण आधारित अधिगम, स्थिति आधारित अधिगम, अनुषंगिक अधिगम आदि को सम्मिलित करता है।

इस सिद्धान्त के प्रस्तावकों का विश्वास है कि खोज अधिगम के निम्नलिखित सहित कई लाभ हैं -

- सक्रिय विनियोजन को प्रोत्साहित करना।
- संज्ञानात्मक कौशलों को बढ़ावा देना।
- संज्ञानात्मक विकास की प्रगति को त्वरित करना।
- प्रेरण को प्रोत्साहित करना।
- स्वायत्तता, जिम्मेदारी, स्वतन्त्रता को प्रोत्साहन देना।

- समस्या-समाधान कौशलों एवं सृजनात्मकता का विकास करना।
- उचित अधिगम अनुभव

खोज अधिगम से हानियाँ भी हो सकती है जो कि निम्नवत हैं :

- संज्ञानात्मक अतिभार उत्पन्न होना।
- बड़े समूहों व मन्द अधिगमकर्ताओं के लिए इसका कठिन अधिगम प्रक्रिया हो सकना
- सम्भावित भ्रान्त धारणाएँ
- समस्याओं एवं भ्रान्त धारणाओं को चिन्हित करने में शिक्षक असफल हो सकते हैं।

अनुभवजन्य अधिगम (Experientiol Learning)

अनुभवजन्य अधिगम बौद्धिक विकास में बहुत सहायक होता है। यह आगमनात्मक, अधिगमकर्ता-केन्द्रित एवं क्रिया-कलाप उन्नमुखित होता है। अनुभव के बारे में वैयक्तिक चिन्तन और दूसरी परिस्थितियों में अधिगमित ज्ञान का प्रयोग करने में योजनाओं का प्रतिपादन (सुत्रीकरण) प्रभावी अनुभवजन्य अधिगम के लिए क्रान्तिक (विवेचनात्मक) कारण है। अनुभवजन्य अधिगम में अधिगम के प्रक्रिया पर जोर दिया जाता है न कि अधिगम के उत्पाद पर संज्ञानात्मक विकास पर अधिगम की प्रक्रिया का अत्याधिक (अवश्य) प्रभाव होता है। अनुभवजन्य अधिगम को उन पाँच चरणों वाले चक्र के रूप में देखा जा सकता है जिसमें सभी चरण आवश्यक हैं:-

- अनुभव करना (क्रिया कलाप का होना)
- साझा करना या प्रकाशित करना (प्रतिक्रियाएं एवं प्रेक्षण साझा किए जाते हैं)
- विश्लेषण करना या प्रक्रिया करना (ढाँचा एवं गति की निश्चित होती है।)
- निष्कर्ष निकालना या सामान्यीकरण करना। (सिद्धान्त व्युत्पन्न होते हैं),तथा
- विनियोग करना (applying) (नई परिस्थितियों में अधिगम के प्रयोग हेतु योजनाएं बनती हैं।)

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

4. वर्गीकरण क्या है?
5. ब्रूनर ने आन्तरिक संज्ञानात्मक मानचित्रों की संरचना में ________ के वर्गीकरण पर ज्यादा जोर दिया।
6. ब्रूनर के विचारों में मानसिक प्रदर्शन के तीन माध्यम कौन से हैं?

7.5 जे0एस0ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाओं का सिद्धान्त (J.S. Bruner's Theroy of the Stages of Cognitive Development)

जिरोम ब्रूनर ने 1960 के दशक में संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त विकसित किया। उनका यह उपागम (पियाजे के विपरित) वातावरणीय एवं अनुभवजन्य कारकों को महत्व देता है। ब्रूनर सुझावित करते है कि बुद्धि का प्रयोग जैसे-2 किया जाता है चरण-दर-चरण परिवर्तनों की अवस्था में बौद्धिक क्षमता विकसित होती है। ब्रूनर का चिन्तन उत्तरोत्तर लेव वाइगोत्सकी जैसे लेखकों द्वारा प्रभावित हुआ और वे अन्त: वैयक्तिक केन्द्र, जो कि उनका विषय रहा पर और अधिक विश्लेषणात्मक हुए और सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों पर कम ध्यान दिया।

प्रक्रिया सिद्धान्तवादी जिरोम ब्रूनर (1973) संज्ञानात्मक विकास को आंशिक रूप से आन्तरिक प्रदर्शनों के बढ़ते हुए विश्वास के रूप में देखते हैं। ब्रूनर के अनुसार शिशुओं के पास बुद्धि का उच्चतम क्रिया उन्नमुखित रूप होता है। वे किसी वस्तु को केवल उस स्तर तक जानते हैं जिससे कि वे उस पर क्रिया कर सकें। नवजात शिशु किसी वस्तु को उसके प्रत्यक्षण द्वारा जानते हैं और परिणामस्वरूप वे वस्तुओं घटनाओं के सुस्पष्ट प्रत्यक्षणात्मक विशेषताओं द्वारा दृढ़तापूर्वक प्रभावित होते हैं। बड़े बच्चे व किशोर वस्तुओं को अन्तरतः तथा प्रतिमानों के द्वारा जानते हैं। इसका अर्थ यह है कि वे इन मानसिक प्रतिमाओं को दिमाग (बुद्धि) (Mind) में रखने हेतु वस्तुओं एवं क्रियाओं के आन्तरिक प्रतिमाओं एवं प्रदर्शनों को विभाजित करने में सक्षम होते हैं। ब्रूनर बालक की बढ़ती हुई क्षमताएं वातावरण से कैसे प्रभावित होती है विशेषतया-प्रोत्साहन एवं दण्ड, जिसे लोग विशेष बुद्धि को विशेष प्रकार से प्रयोग करने हेतु प्राप्त करते है, में रूचि रखते हैं। ब्रूनर ने संज्ञानात्मक विकास की तीन अवस्थाओं को बताया।

प्रथम अवस्था को उन्होंने 'सक्रियता' (Enactive) नाम दिया। सक्रियता एक ऐसी अवस्था है, जिसमें एक व्यक्ति भौतिक वस्तुओं पर क्रिया करके एवं उन क्रियाओं के उत्पादों के द्वारा वातावारण को समझता है। द्वितीय अवस्था "दृश्य प्रतिमा (Iconic)" कहलाई जिसमें प्रतिमानों एवं चित्रों के प्रयोग से अधिगम होता है।

अन्तिम अवस्था "सांकेतिक" (Symbolic) अवस्था थी जिसमें अधिगमकर्ता अमूर्त पदों में चिन्तन करने की क्षमता का विकास करता है। इस त्रि-अवस्थीय मत के आधार पर ब्रूनर ने मूर्त, चित्रात्मक और फिर सांकेतिक क्रियाओं जो कि अधिक प्रभावी अधिगम को अग्रसर होगी, के संगठनात्मक प्रयोग की अनुशंसा की।

ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त पियाजे के सिद्धान्त से अत्यधिक साम्य रखता है परन्तु कुछ महत्वपूर्ण एवं स्पष्टतया मूल अन्तर भी हैं। पियाजे का कार्य 'क्या होता है'की व्याख्या से अत्याधिक संबंधित है। वे उस क्रिया विधि पर विचार करते हैं जिसमें मुख्यतः व्याख्याओं को स्पष्ट करने के क्रम में बुद्धि का विकास होता है। दूसरी तरफ ब्रूनर संज्ञानात्मक विकास "कैसे" और

''क्यों'' होता है के प्रश्नों से अपने आप को ज्यादा संबंधित रखते हैं। जबकि पियाजे वयस्कता प्रक्रियाओं को सम्भवतः सबसे महत्वपूर्ण कारकों और संस्कृति एवं शिक्षा को परिष्कारित कारकों के रूप में महत्व देते हैं। ब्रूनर इन अन्तिम दो को ज्यादा महत्व देते हैं । वे पियाजे के इस विचार से असहमत है कि महत्वपूर्ण अभिप्रेरक या बौद्धिक विकास में प्रभाव, जैविक हैं और दावा करते हैं कि यदि जैविक विकास व्यक्ति को अधिक सामजस्यपूर्ण व्यवहार की ओर 'धकेलता' है तो वातावरण उसी दिशा में ''खींचता''है। यहाँ ब्रूनर जोर दे रहे हैं कि बालक का अध्ययन केवल उसके अनुभव एवं वातावरण के परीक्षण के बिना एक अपूर्ण चित्र देने की सीमा है। जहाँ पियाजे केवल यह कहते है कि संज्ञानात्मक विकास व्यक्ति और वातावरण के मध्य एक अन्तःक्रिया महत्व को देता है वहीं ब्रूनर इस बिन्दु पर जोर देते हैं और महत्व देते हैं कि बालक का वातावरण ध्वनिक्षेपक की तरह हो जिससे बालक की क्षमताओं का विस्तार हो।

जबकि पियाजे की ही तरह ब्रूनर का मानना है कि विकासशील बालक अपने विकास में स्वयं सक्रिय भागीदारी निभाता है यद्यपि कि परिवार, शैक्षिक तन्त्र एवं बालक के मित्र भी। उदाहरण के लिए विकास को महत्व देने हेतु बालक अपनी स्वयं की दुनिया की समझ बनाता है। प्रत्यक्षण एक सक्रिय, संरचनात्मक प्रक्रिया है, हम कच्चे (अपरिष्कृत) संवेदी सूचनाओं से अनुमान लगाते हैं तथा निर्णय लेते हैं कि वास्तव में वहाँ क्या है। ठीक उसी तरह हम उद्दीपकों की प्रक्रिया करते हैं और हम अपने स्वयं के निष्कर्ष बनाते हैं, इसलिए ब्रूनर विचार करते हैं कि हम अवश्य ही समझने और अपने वातावरण से अधिक सफलता पूर्वक अन्तःक्रिया करने के क्रम में अपनी संज्ञानात्मक क्षमताओं का विकास करते हैं।

अपने वातावरण पर नियन्त्रण के योग्य होने के लिए हमें इसकी भविष्यवाणी करना सीखना होगा, अतः हमें अपने अनुभवों को प्रदर्शित करना और अन्तरतः संगठन करना सीखना होगा। जो कि पूर्णतः जो वाह्य वास्तविकताएं बनाते हैं उसके मानसिक प्रदर्शनों के प्रकारों (प्रतीकों) पर निर्भर करता है।

हम अपने वातावरण को प्रदर्शित करने की क्षमता का अन्तरतः विकास किस प्रकार से करते हैं और भविष्य में जो कुछ घटित होगा उसकी भविष्यवाणी करने में इन सूचनाओं का प्रयोग कैसे करते हैं, में ब्रूनर रूचि लेते रहे। इन्होंने तीन प्रकार के प्रदर्शनों को चिन्हित किया जो कि उनके विश्वास में संज्ञानात्मक विकास के आधार हैं। जिस क्रम में ये मनुष्य में प्रकट होते हैं उसी क्रम में ये व्याख्यायित होंगे। इनकी तुलना पियाजे की विकासात्मक अवस्थाओं से की जानी चाहिए। पियाजे की प्रस्तावित अवस्थाएं, जैविक रूप से बालक स्वयं जितना कार्य करने की क्षमता रखता है, की व्याख्या करती हैं। जबकि ब्रूनर के प्रदर्शन के प्रकार व्यक्ति के वातावरण का उसका निष्कर्षण तथा भविष्यवाणी में होने वाले परिवर्तनों से अधिक सम्बन्धित है।

सक्रियता प्रदर्शन (Enactive Representation) बालक में प्रकट होने वाले प्रथम प्रकार के प्रदर्शन को ब्रूनर ने 'सक्रियताप्रदर्शन' (Enactive representations) का नाम दिया है। 'चलन' या 'पेशीय स्मरण'के लिए यह प्रथम प्रकार उपयोगी चिन्तन का तरीका है। भूत-अनुभवों को सांकेतिक रूप में संग्रहित नहीं किया जा सकता है। एक शिशु अपने भूत-अनुभवों को केवल पेशीय ढाँचे(Motor Pattern) के रूप में व्यक्त (Represent) कर सकता है।

It might, for example, at one time have a string of rattling beads strung across its cot, and be able to make them rattle by hitting them with its hands. You might notice that when they are taken away it continues to move its hands as if to hit them. It seems to show that it has some form of internal representations of its experience with the beads, and indicates this in motor form by repeating the motor patterns associated with them. No images of the beads need to be involved; this earliest form of internal representation does not seem to require the use of visual images.

प्रतिमा प्रदर्शन (Iconic Representations) दूसरे प्रकार के प्रकट होने वाले प्रदर्शन को प्रतिमा प्रदर्शन (Iconic Representations)नाम दिया गया। प्रतिमा का अंग्रेजी पर्याय आइकॉनिक (Iconic) है जो कि आइकन शब्द से बना है जिसका अर्थ है समानता या साम्य। ज्ञानेन्द्रियों तक पहुँचने वाले उद्दीपकों के विश्वसनीय प्रदर्शन के रूप में अब बालक दृश्य-श्रवण या स्पर्श-प्रतिमाओं को याद करने की क्षमता का विकास करता है। यह विधि वातावरण के बारे में सूचनाओं के संग्रहित करने की सबसे अच्छी विधि है। वे बच्चे जो प्रतिमा प्रदर्शन (Imaging)का प्रयोग करते हैं, चित्र व नामांकन के सुस्पष्ट विश्वसनीय प्रदर्शन बनाने में और आवश्यकतानुसार प्रत्यास्मरित करने में सक्षम होते हैं। दूसरी तरफ वे बच्चे जो प्रमिता नहीं बना पाते या प्रतिमा बनाने में बहुत कमजोर होते हैं नामांकन को याद करने में तथा इसे सही चित्र में स्थापित (Fit) करने में कठिनाई महसूस करते हैं क्योंकि शब्द अपने आप में किंचित इंगित नहीं कर पाते कि वे किस चित्र में स्थापित होंगे। प्रतिमा-कल्पना इतनी अपरिवर्तनीय (कठोर) है कि यह बालक को प्रायः वातावरण के भागों के केवल विशेष चित्रों को सीखने के लिए स्वीकृत करती है और वस्तुओं में निहित साम्यता को निष्कर्षित करना कठिन बना देती है। अतः प्रतिमा कल्पना करने वाले बच्चों को प्रतिमा-कल्पना न करने वाले बच्चों की अपेक्षा वस्तुओं का वर्गीकरण करने में अधिक कठिनाई होती है।

सांकेतिक प्रदर्शन (Symbolic Representation)सक्रियता (Enactive) तथा प्रतिमा (Iconic) दोनों प्रदर्शनों के साथ यह समस्या है कि ये सापेक्ष तथा कठोर (अपरिवर्तनीय) हैं, सक्रियता प्रदर्शन बालक को केवल पेशीय तरीके के रूप में वातावरण को निष्कार्षित करने में सक्षम बनाता है, जबकि प्रतिमा प्रदर्शन उसे केवल चित्र के रूप में वातावरण को प्रदर्शित करने में सक्षम

बनाता है। चूंकि वातावरण निरन्तर परिवर्तनशील है, इसलिए केवल ये दोनों रूप सक्रियता तथा प्रतिमा, वातावरण की सभी सूचनाओं को प्रभावी रूप में कूट-कृत नहीं कर सकते एवं भविष्यवावणी करने में सक्षम नहीं हो सकते हैं।

सांकेतिक प्रदर्शन जैसा कि नाम से स्पष्ट है समस्या का समाधान प्रतीकों के प्रयोग द्वारा करते हैं। एक प्रतीक कुछ अतिरिक्त को प्रदर्शित करता है, उदाहरण के लिए दो व्यक्तियों का हाथ मिलाना यह प्रदर्शित करता है कि वे एक दूसरे पर आक्रमण नहीं करेंगे(हम प्रायः दाहिने हाथ को मिलाते हैं जिससे युद्ध की स्थिति में हथियार उठाए जाते हैं।) अतः ब्रूनर का विश्वास है कि मानव भाषा-शब्द एवं वाक्यों के रूप में प्रतीकोंका एक क्रम, जिससे इस निरन्तर परिर्वतनशील वातावरण की सूचनाओं को प्रदर्शित एवं संग्रहित किया जा सकता है। 'सब्जीयाँ' शब्द कागज पर टंकित एक शब्द विन्यास मात्र हो सकता है किन्तु जब आप इसे पढ़ते हैं तथा इसके अर्थ को निष्कर्षित करते हैं तो यह एक बड़ी मात्रा की सूचना का प्रत्यास्मरण करता है। वास्तव में ब्रूनर सांकेतिक प्रदर्शन के विकास में भाषा को एक महत्वपूर्ण सहायक उपकरण मानते हैं क्योंकि भाषा वर्गीकरण एवं क्रम निश्चित करने में हमें सक्षम बनाती है।ब्रूनर द्वारा प्रतिपादित संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाओं का आरेखी प्रदर्शन यहाँ इस प्रकार से किया जा रहा है कि इसके निश्चित क्रम की सही कल्पना की जा सके।

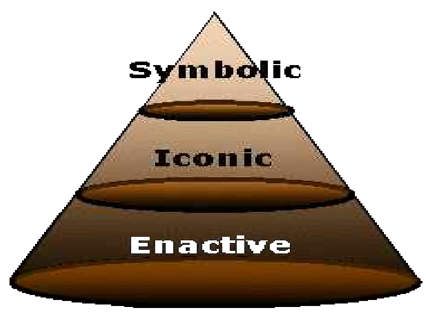

चित्र.1- संज्ञानात्मक विकास की तीन अवस्थाएं (ब्रूनर)

- सक्रियता **(Enactive)**जहाँ एक व्यक्ति वस्तुओं पर संक्रिया के द्वारा वातावरण के बारे में सीखता है।
- प्रतिमा **(Iconic)**जहाँ अधिगम प्रतिमानों एवं प्रतिमाओं के द्वारा होता है।
- सांकेतिक **(Symbolic)**जो अमूर्त रूप में चिन्तन करने की क्षमता की व्याख्या करता है।

पियाजे एवं ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्तों में कुछ उभयनिष्ठ कारक हैं। अवस्थाओं के पदों में दोनों सिद्धान्तों के लिए तुलनात्मक तालिका निम्नवत दी गई है।

पियाजे एवं ब्रूनर के सिद्धान्त के तुलान्तमक स्तर को प्रदर्शित करती तालिका:-

पियाजे के सिद्धान्त की अवस्थाएं	**ब्रूनर के सिद्धान्त की अवस्थाएं**
संवेदी पेशीय अवस्था	सक्रियता प्रदर्शन
प्राक् संक्रियात्मक अवस्था	प्रतिमा प्रदर्शन
ठोस संक्रिया की अवस्था	
औपचारिक संक्रिया की अवस्था	सांकेतिक प्रदर्शन

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

7. जिरोम ब्रूनर ने 1960 के दशक में _____________ का सिद्धान्त विकसित किया।
8. ब्रूनर की संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाओं के नाम लिखिए।
9. सक्रियता अवस्था क्या है?
10. ______________ अवस्था में प्रतिमानों एवं चित्रों के प्रयोग से अधिगम होता है।
11. बालक में प्रकट होने वाले प्रथम प्रकार के प्रदर्शन को ब्रूनर ने______________का नाम दिया है।

7.6 ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त का शैक्षिक निहितार्थ

जिरोम ब्रूनर ने शिक्षा की प्रक्रिया एवं पाठ्यचर्या सिद्धान्त के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उनका कार्य औपचारिक, निरौपचारिक, अनौपचारिक शिक्षकों तथा उन सभी जीवन पर्यन्त अधिगम (LLL) से सम्बन्धित लोगों के लिए महत्वपूर्ण पाठों पर प्रकाश डालता है। शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के संगठन एवं इसे जारी रखने हेतु ब्रूनर का सिद्धान्त बहुत ही सहायक है। ब्रूनर सिद्धान्त के पदानुक्रमानुसार प्रभावी अधिगम-उत्पाद हेतु अधिगम अनुभवों को सक्रियता (Enactive) प्रतिमा (Iconic)सांकेतिक (Symbolic) क्रम में रखा जाना चाहिए। ठीक यही गुणार्थ, एक प्राचीन चीनी लोकोत्ति से भी संप्रेषित होती है।

"जो मैं सुनता हूँ, भूल जाता हूँ, (सांकेतिक प्रदर्शन)
जो मैं देखता हूँ, याद हो जाती है, (प्रतिमा प्रदर्शन)
जिसे मैं करता हूँ, समझ जाता हूँ"। (सक्रियता प्रदर्शन)

अतः शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में किसी भी अधिगम-पाठ को उचित तरीके से समझने हेतु "करके सीखना (Learning by doing)" विधि को प्राथमिकता देनी चाहिए।

यह एक स्थापित तथ्य भी है कि ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त को, किए गए कार्य द्वारा सीखना (सक्रियता अधिगम माध्यम) दूसरे सीखने के तरीकों की तुलना में अधिक स्थाई होता है, को बल प्रदान करता है। लोगों को 10 प्रतिशत जो वे पढ़ते हैं, 20 प्रतिशत जो वे सुनते हैं, 30 प्रतिशत जो वे देखते हैं, 50 प्रतिशत जो वे देखते और सुनते हैं, 70 प्रतिशत जो वे कहते हैं या लिखिते हैं तथा 90 प्रतिशत वे किसी कार्य को करकेहैं, याद रहता है। यह प्रतिशतता चित्र-2 में चित्रित की गई है। यह अनुसंधान परिणाम शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया की योजना बनाने व उसके क्रियान्वयन में बहुत सहायक होगी जो कि ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त को बल प्रदान करती है।

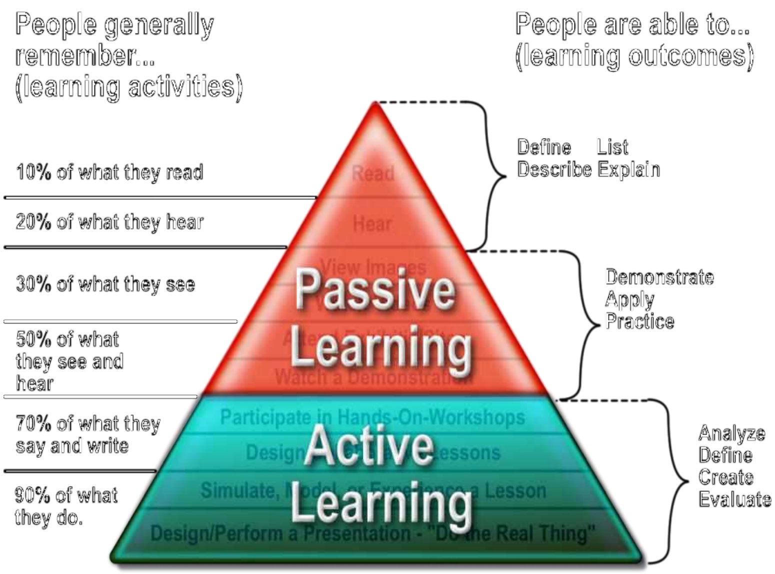

चित्र.2 अधिगम के माध्यम से उसकी प्रभाविता को प्रदर्शित करता चित्र

एडगर डेल द्वारा विभाजित "अनुभव शंकु" भी ब्रूनर के सिद्धान्त का ही उत्पाद है। मानसिक प्रदर्शनों की प्रकृति के अनुसार एडगर डेल ने शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया परिस्थितियों में प्रयोग आने वाली दृश्य-श्रव्य सामग्रियों को वर्गीकृत किया। जब डेल ने अधिगम और शिक्षण विधियों पर अनुसंधान किया तो पाया कि हम जो प्राप्त करते हैं उनमें से ज्यादातर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष अनुभवों के सत्य होते हैं। इन्हें 'सूची स्तम्भ (Pyramid) या 'चित्रीय यंत्र' के रूप में संक्षिप्त किया जा सकता है जिसे

डेल ने ''अधिगम शंकु''कहा। उन्होंने कहा कि ''शंकु-यंत्र''अधिगम अनुभव का एक दृश्य-रूपक है जिसमें विभिन्न प्रकार के दृश्य-श्रव्य सामग्रीयाँ प्रत्यक्ष अनुभव से शुरू करके अमूर्तता के क्रम में व्यवस्थित होती हैं।

डेल की पुस्तक ''आडियो विजुवल मेथड्स इन टीचिंग''-1957 मूल नामांकन के दस वर्ग (अनुभवों के माध्यम) प्रत्यक्ष (Direct), सोद्देश्य अनुभव (Purposeful Experiences), आविष्कारित अनुभव (Contrived Experiences) नाटकीय सहभागिता (Dramatic Participation), प्रदर्शन (Demonstration), क्षेत्र भ्रमण (Field Trips), प्रदर्शनी चल चित्र (Motion Picture), रेडियो, ध्वन्यालेखन (Recordings) स्थिर चित्र, दृश्य संकेत (Visual Symbol) तथा शाब्दिक संकेत (Verbal Symbols) हैं। ये सभी ब्रूनर द्वारा अन्वेषित मानसिक प्रदर्शनों के उप वर्ग हैं। मध्यस्थ अधिगम अनुभव के परिवर्तित प्रकारों के लिए डेल का वर्गीकरण तंत्र जो कि प्रभावी शिक्षण हेतु बहुत सहायक है, यहाँ प्रस्तुत है।

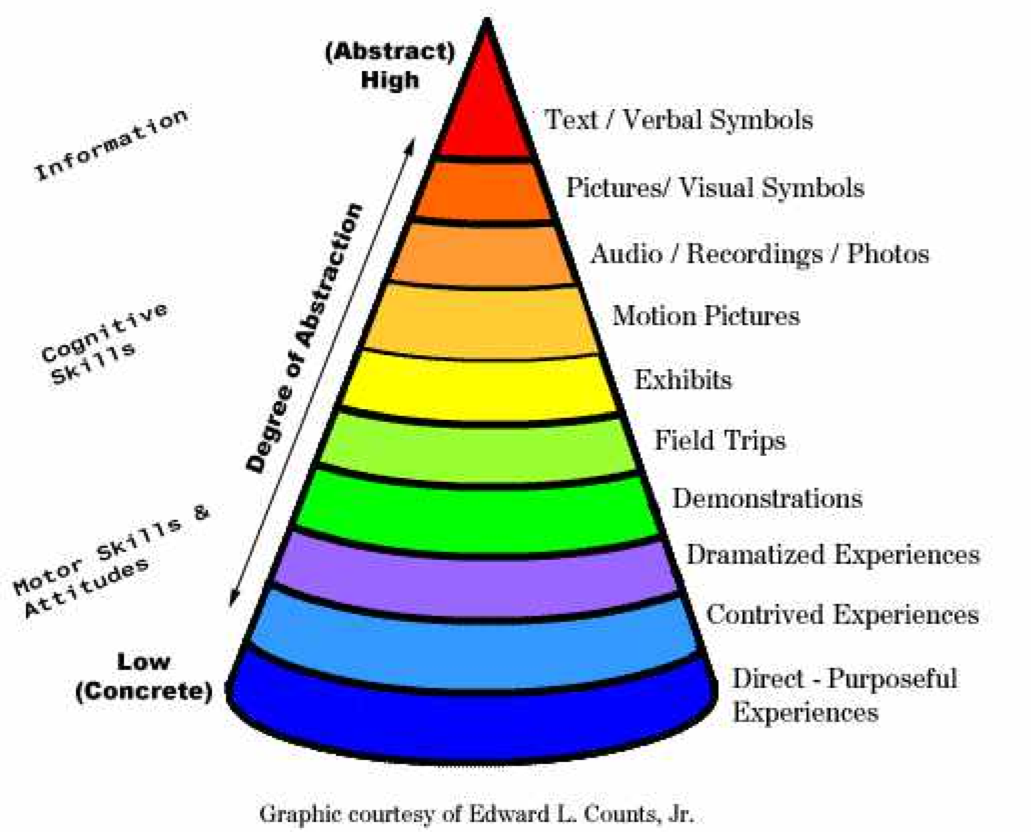

चित्र.3 अध्यस्थ अधिगम अनुभव के परिवर्तित प्रकारों के लिए डेल का वर्गीकरण

कुण्डली पाठ्यचर्या Spiral Curriculum

शिक्षण-अधिगम की प्रभावशीलता बढ़ाने हेतु पाठ्यचर्या संगठन के माध्यम इसके बहुत ही महत्वपूर्ण पहलू हैं। इसके लिए ब्रूनर ने 'कुण्डली पाठ्यचर्या का संप्रत्यय दिया। कुण्डली पाठ्यचर्या से तात्पर्य विचारों को बार-बार दुहराने का विचार, उस पर निर्माण और पूर्ण समझ तथा निपुणता के स्तर के विस्तार से है।'कुण्डली पाठ्यचर्या' -एक पाठ्यचर्या है जैसा कि यह विकास करती है, बारम्बार इस मूल विचार को दुहराया जाना चाहिए, उस पर तब तक निर्माण करती है जबतक कि छात्र पढ़ेगए पाठ के औपचारिक यंत्र को पूर्णरूपेण सीख नहीं लेता है। अतः एक विषय की पाठ्यचर्या उस विषय को संरचना प्रदान करने वाले निहित सिद्धान्तों को प्राप्त कर सकने वाले अत्याधिक मूल समझ द्वारा ज्ञात होनी चाहिए (ब्रूनर, 1960) उत्तरोत्तर जटिल स्तरों पर किसी विषय के सिद्धान्त को सरल स्तर से शुरू करना और तत्पश्चात अधिक जटिल स्तर तक प्रकरणों को दुहराना समझा जा सकता है।

ब्रूनर ने अपनी दो पुस्तकों- "दि प्रासेस ऑफ एजूकेशनः टूवर्डस ए थियरी ऑफ इन्सट्रक्सन (1966)"तथा "दि रेलिवेन्स आफ एजूकेशन (1971)"में अपने विकसित विचारों के उन तरीकों के बारे में वातावरण के मानसिक प्रतिमानों, जिन्हें शिक्षार्थी निर्मित करते हैं,उसकी व्याख्या करते हैं तथा स्थानान्तरण करते हैं को प्रभावित करते हैं को सम्मुख रखा। अनुदेशनात्मक कौशल जे0एस0ब्रूनर का मुख्य योगदान है। इसलिए शिक्षा प्रक्रिया की प्रभावी उत्पादकता हेत ब्रूनर का सिद्धान्त एक विशेष अध्याय ही है। किसी को अनुदेशित करनाध्यान देने योग्य परिणामों को प्राप्त करने का विषय नहीं है। इसके बावजूद यह ज्ञान की स्थापना को सम्भव बनाने वाली प्रक्रिया में सहभागिता करना सीखाता है। हम किसी विषय को छोटी-मोटी जीवन्त पुस्तकालय बनाने हेतु नहीं सीखाते अपितु इसलिए सीखाते हैं कि एक छात्र गणितीय तरीके से चिन्तन करे, इतिहासकारों की तरह मुद्दो पर विचार करे और ज्ञान-प्राप्त करने की प्रक्रिया में भाग ले। जानना एक प्रक्रिया है न कि उत्पाद। (1966-72)

ब्रूनर के सिद्धान्त का कूटकृत तन्त्र, यह विचार कि लोग वातावरण (दुनिया) को अधिकांशतः साम्यता व अन्तर के पदों में निष्कर्षित करते हैं, प्रस्तुत करता है। यह संप्रत्यय उन शिक्षकों के लिए बहुत सहायक है, जो संप्रत्ययीकरण के सही गतिकी को जानना चाहते हैं।

ब्रूनर कीका मानना है कि प्रत्यक्षणा, सप्रत्ययीकरण, अधिगम, निर्णय-लेना तथा निष्कर्षण ये सभी वर्गीकरण को सम्मिलित करते हैं। शिक्षकों को अपने अनुदेशन के दौरान वर्गीकरण की प्रक्रिया पर केन्द्रित होना चाहिए जिससे कि संज्ञानात्मक प्रक्रिया प्रभावी बने।

ब्रूनर के अनुसार छात्रों के संज्ञानात्मक कौशलों का विकास करने के लिए विचारों के सूझपूर्ण एवं विश्लेषणात्मक चिन्तन, दोनों को प्रोत्साहित एवं पुरस्कृत किया जाना चाहिए।

शिक्षण और अधिगम के लिए ब्रूनर का निहित सिद्धान्त जो कि मूर्त, चित्रात्मक तथा फिर सांकेतिक क्रियाकलापों का एक संयोग है, अधिक प्रभावी अधिगम की ओर ले जाता है। यह मूर्त अनुभवों से शुरू होकर चित्रों तक फिर अन्ततः सांकेतिक प्रदर्शनों का प्रयोग करने का एक क्रम (श्रेणी) है।

पियाजे के विपरीत ब्रूनर का प्रस्ताव यह है कि शिक्षकों को छात्रों के नए स्कीमा (Schemas) बनाने के सहायतार्थ सक्रियतापूर्वक हस्तक्षेप करना चाहिए। शिक्षकों को केवल तथ्य ही नहींअपितु संरचना, अभिदिशा, परामर्श तथा अवलम्ब प्रदान करना चाहिए।

वाइगोत्सकी की तरह ही ब्रूनर भी शिक्षकों द्वारा प्रदत्त स्कैफोल्डिंग(Scaffolding) या अवलम्ब के प्रयोग को प्रस्तावित करते हैं। अवलम्ब क प्रयोग बालक को समझ के उच्च स्तर तक पहुँचने में सहायता करता है । यह इसलिए संभव हो पाता है क्योंकि अवलम्ब के प्रयोग से कार्य सरल, लक्ष्य युक्त, अभिप्रेरित, प्रोत्साहित हो जाता है। साथ ही इससे इस कार्य के सामान कार्यों का प्रदर्शन या प्रतिमान मिलना संभव हो पाता है ।

ब्रूनर एक विषय में सक्रिय समस्या समाधान प्रक्रिया के द्वारा श्रेणी पर जोर देते हैं । ब्रूनर कहते हैं कि शिक्षक सिर्फ तथ्यों को प्रस्तुत करने के बजाए निहित सिद्धान्तों एवं संप्रत्ययों को प्रस्तुत करते हैं। यह अधिगमकर्ताओं को प्रदत्त सूचनाओं के परे जाने एवं स्वयं के विचार विकसित करने में सक्षम बनाता है। अतः शिक्षकों को अधिगमकर्ताओं में विषय के अन्दर एवं विषयों के मध्य कड़ियाँ (Links) बनाने हेतु प्रोत्साहित करना चाहिए।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

12. ब्रूनर की दो पुस्तकों के नाम लिखिए।

7.7 सारांश

जिरोम एस0 ब्रूनर शिक्षा पर अत्यधिक प्रभाव रखते रहे हैं। 1960 के दशक में ब्रूनर ने संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त विकसित किया। उनका यह उपागम (पियाजे के विपरीत) वातावरणीय एवं अनुभवजन्य करकों को देखता है। ब्रूनर ने सुझाव दिया कि बुद्धि का प्रयोग जैसे -2 होता है बौद्धिक क्षमता चरण-दर-चरण परिवर्तनों के द्वारा स्तरों में विकसित होती हैं। ब्रूनर के बौद्धिक विकास के सिद्धान्त के तीन चरण निम्नवत हैं -

- सक्रियता (Enactive) जहाँ एक व्यक्ति वस्तुओं पर संक्रिया के द्वारा दुनिया के बारे में सीखता है।
- प्रतिमा (Iconic) जहाँ प्रतिमानों एवं चित्रों के माध्यम से अधिगम होता है।
- सांकतिक (Symbolic)जो मूर्त रूप में चिन्तन करने की क्षमता की व्याख्या करता है।

परिणामस्वरूप, जे0एस0ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त की विशेषताओं को निम्नवत गिनाया जा सकता है।

- जिरोम ब्रूनर सामाजिक संदर्भ में मस्तिष्क में ज्ञान की संरचना के रूप में संज्ञानात्मक विकास पर जोर देते हैं।
- ब्रूनर के प्रेक्षणानुसार इस दुनिया के ज्ञान को संरचित करने की प्रक्रिया एकान्त में नहीं होती अपितु सामाजिक संदर्भ में होती है।
- बालक एक सामाजिक प्राणी है और, इस सामाजिक जीवन द्वारा वह अनुभवों के निष्कर्षीकरण के लिए एक ढ़ाँचा तैयार करता है।
- ब्रूनर के अनुसार सभी अधिगमकर्ताओं के लिए कोई एक अद्वितीय क्रम नहीं है और किसी विशेष अवस्था में अनुकूल वातावरण, भूत-अनुभव, विकास की अवस्था, पदार्थ की प्रकृति और वैयक्तिक विभिन्ता को सम्मिलित करते हुए विभिन्न करकों पर निर्भर करेगी।
- प्रभावी पाठ्यचर्याबच्चों के लिए बहुत से अवसर एवं विकल्प प्रदान करती है और इसलिए संज्ञानात्मक विकास में सहायक है।
- बहु-उम्र व्यवस्था में बच्चों को अपने अधिगम- अनुभवों को चुनने का अवसर मिलता है।
- इसके अतिरिक्त , बहु-उम्र व्यवस्था में प्रयुक्त विभिन्न शिक्षण विधियाँ बच्चों को कई तरीकों से ज्ञान प्राप्त करने के अवसर प्रदान करती हैं।

ब्रूनर का सिद्धान्त पियाजे के सिद्धान्त से बहुत साम्यता रखता है। पियाजे की तरह ब्रूनर का सिद्धान्त भी बच्चे के शैशवावस्था एवं बाल्यावस्था में अधिक प्रयोज्य है। ब्रूनर के अनुसार शिक्षकों को बच्चे के शैक्षिक उद्देश्यों के लिए उसके आन्तरिक कल्पना विकास का उपयोग करना चाहिए। बच्चे को यह मानसिक कल्पना उसे उसके अनुभवों के संरक्षण एवं नए अनुभवों के साथ अग्रसर होने में सक्षम बनाएगी। इस तरह, यह सिद्धान्त शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया पर विशाल प्रभाव छोड़ता है। ब्रूनर के सिद्धान्त के व्यावहारिक पहलू को जानने हेतु इसके शैक्षिक निहितार्थ की चर्चा विस्तृत रूप में की गई।

7.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

1. वर्गीकरण
2. ब्रूनर के प्रस्तुतीकरण के तीन तरीके निम्न हैं-
    i. सक्रियता प्रस्तुतीकरण (क्रिया-आधारित)
    ii. दृश्य प्रतिमा प्रस्तुतीकरण (प्रतिमा- आधारित)
    iii. सांकेतिक प्रस्तुतीकरण (भाषा- आधारित)

3. संज्ञानात्मक विकास
4. मस्तिष्क सूचनाओं का सरलीकरण कैसे करता है जो कि लघु-अवधि स्मृति में प्रवेश करता है , वर्गीकरण है।
5. सूचनाओं
6. ब्रूनर के विचारों में मानसिक प्रदर्शन के तीन माध्यम हैं- दृश्य, शब्द तथा प्रतीक।
7. संज्ञानात्मक विकास
8. ब्रूनर की संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाओं के नाम हैं-
   i. सक्रियता अवस्था (Enactive)
   ii. दृश्य प्रतिमा अवस्था (Iconic)
   iii. सांकेतिक अवस्था (Symbolic)
9. सक्रियता अवस्था एक ऐसी अवस्था है, जिसमें एक व्यक्ति भौतिक वस्तुओं पर क्रिया करके एवं उन क्रियाओंके उत्पादों के द्वारा वातावारण को समझता है।
10. दृश्य प्रतिमा
11. सक्रियताप्रदर्शन
12. ब्रूनर की दो पुस्तकों के नाम हैं –
   i. दि प्रासेस ऑफ एजूकेशनः टूवर्डस ए थियरी ऑफ इन्सट्रक्सन
   ii. दि रेलिवेन्स आफ एजूकेशन

7.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ब्रूनर , जे0 (1960). दी प्रॉसेकस ऑफ एजूकेशन कैम्ब्रीज, एमएः हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस हार्ले, 1995.
2. ब्रूनर , जे0 एस0 (1966). टूवर्डस् अ थीयरी ऑफ इन्स्ट्रक्शन, कैम्ब्रीज, मास0 वेल्काप्प प्रेस 176 + x ग पेजेज.
3. ब्रूनर , जे0 एस0 (1971). दी रेलीवेन्स ऑफ एजूकेशन , न्यूयार्कः नार्टन,
4. ब्रूनर , जे0 (1996). दी कल्चर ऑफ एजूकेशन, कैम्ब्रीज, मास0ः हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. 224 + xvi पेजेज.
5. ब्रूनर , जे0 (1973). गोइंग बियॉन्ड दी इन्फार्मेशन गीवेन, न्यूयार्क: नार्टन.
6. ब्रूनर , जे0 (1983). चाइल्ड्स टॉक: लर्निंग टू यूस लैंग्वेज, न्यूर्याक: नार्टन.
7. ब्रूनर , जे0 (1986). एक्चुअल माइन्ड्स, पॉसिबल वल्ड्स, कैम्ब्रीज, एम एः हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

7.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. संज्ञान’ से आप क्या समझते हैं ? संज्ञानात्मक प्रक्रिया के पाँच उदाहरण लिखिए।

2. आप यह कैसे कह सकते है कि संज्ञान में परिवर्तन मात्रात्मक एवं गुणात्मक दोनों होता है? उपयुक्त उदाहरणों से स्पष्ट कीजिए।
3. अधिगम और बौद्धिक विकास में वर्गीकरण कैसे सहायक है?
4. आप मानसिक प्रदर्शन से क्या समझते हैं? सभी तीन प्रकार के मानसिक प्रदर्शनों केलिए उपर्युक्त उदाहरण दीजिए।
5. ज्ञान की क्रियात्मक क्षमता की वृद्धि में खोज अधिगम कैसे सहायक है?
6. क्या आप इस कथन से सहमत है कि "अधिगम प्रक्रिया अनुभवों की पुनर्रचना है"? सोदाहरण व्याख्या कीजिए।
7. सांकेतिक अवस्था (जो केवल सक्रियता एवं प्रतिमा अवस्था को प्राप्त करने के पश्चात आती है) को प्राप्त करना संज्ञानात्मक विकास का उच्चतम स्तर है, को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
8. एक शिक्षक या अनुदेशक के रूप में आप ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त को कैसे प्रयोग कर सकेंगें?

इकाई-8 विकास के प्रभावी कारक
Effective Factors for Development

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 विकास में प्रभावी कारकों का अध्ययन
8.4 आनुवंशिक तथा दैहिक कारक
8.5 संवेगों का व्यक्तित्व पर प्रभाव
8.6 विकास पर सफलता तथा असफलता का प्रभाव
8.7 विकास के सिद्धान्त
8.8 फ्राइड का मनोविश्लेषणवाद
8.9 विकास और इरिक्सन का मनोसामाजिक सिद्धान्त
8.10 सारांश
8.11 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर
8.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची
8.13 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

विकास एक जटिल सम्प्रत्यय है, जिसका एक निश्चित पैटर्न प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। हम जानते हैं कि व्यक्ति की रचना आत्म-प्रत्यय और शीलगुणों से मिलकर होती है। आत्म-प्रत्यय (Self-concept)को फ्राइड-अहम् (Ego) , सलीवन-आत्मतंत्र (Self-System) कहते हैं।

व्यक्ति के विकास की विभिन्न अवस्थाओं में व्यक्ति का विकास किस प्रकार होता है? यह इस इकाई की विषयवस्तु है। यहाँ हम व्यक्तित्व विकास के सम्बन्ध में कुछ प्रतिष्ठित मनोवैज्ञानिकों के मतों का संक्षेप में अध्ययन करे रहे हैं। इस इकाई में हम विकास के मनोविश्लेष्णात्मक सिद्धांत एवं मनोसामाजिक सिद्धांत का अध्ययन करेंगे ।

8.2उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन पश्चात आप-

1. विकास में प्रभावी शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक कारकों से परिचित हो सकेंगे।

2. अन्तःस्रावी ग्रान्थियों से निस्रत स्रावों सेविकास पर होने वाले प्रभावों की व्याख्या कर सकेंगे।
3. बालकों में अतःस्रावी ग्रन्थियों के द्वारा निस्रत स्रावों के कम या अधिक होने के कारण शरीर रचना पर होने वाले प्रभावों का वर्णन कर सकेंगे।
4. फ्राइड के मनोविश्लेषणवाद को अपने शब्दों में लिख सकेंगे।
5. विकास और इरिक्सनके मनोसामाजिक सिद्धान्त को स्पष्ट कर सकेंगे।

8.3विकास में प्रभावी कारकों का अध्ययन

विकास को अनेक कारक प्रभावित करते हैं। कुछ कारक अधिक प्रभावी होते हैं, कुछ कारक कम प्रभावी होते हैं। परन्तु कम प्रभावी कारकों को भी उपेक्षित नहीं किया जा सकता है इन प्रभावी कारकों को पांच श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है-

1. आनुवंशिक तथा दैहिक कारक,
2. पर्यावरणीय कारक,
3. मनोवैज्ञानिक कारक,
4. सामाजिक कारक, तथा
5. सांस्कृतिक कारक।

इन कारकों का अध्ययन क्रमशः आगे किया जा रहा है।

8.4 आनुवांशिक तथा दैहिक कारक

जैविक तथा दैहिक कारकों में अन्तस्रावी ग्रन्थियाँ, शरीर रचना तथा स्वास्थ्य, शरीर के रसायन, परिपक्वता, अनुवांशिक कारक तथा स्नायुमण्डल विशेष रूप से प्रभावी होते हैं इनका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है।

1. अन्तस्रावी ग्रन्थियां

नलिकाविहीन ग्रन्थियों के द्वारा निस्रत स्राव सीधे रक्त में जाता है। इनसे निकले स्रावों को हारमोन्स कहते हैं। अन्तःस्रावी ग्रन्थियों में पट्यूटरी, लिंग ग्रन्थियां, एड्रेनल, थायराइड तथा अन्य ग्रन्थियां हैं। इन ग्रन्थियों से निकले हारमोन्स का प्रभाव व्यक्ति के विकास पर पड़ता है। फलतः उसके व्यक्तित्व पर पड़ता है। व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाली ग्रन्थियां तथा उनके कार्य इस प्रकार हैं-

i. पेन्क्रियाज ग्रन्थि-यह ग्रन्थि आमाशय तथा छोटी आंत से मिलने के स्थान पर पाई जाती है। यह ट्रिपसिन क्राइमोट्रिपसिन, एमालेज आदि एन्जाइम का स्राव करती है, जो कि भोजन के पाचन में काम आते हैं। पाचन के अतिरिक्त पेन्क्रियेटिक ग्रन्थि दो हार्मोन्स स्रावित करती है। (1) इन्सुलिन तथा (2) ग्लूकेगोन। इन्सुलिन रक्त में ग्लूकोज की मात्रा को नियंत्रित करता है।

यदि इन्सुलिन का स्राव नहीं होता तो मधुमेह रोग हो जाता है। मधुमेह रोग व्यक्ति के व्यवहार पर अच्छा प्रभाव नहीं डालता है। व्यक्ति मूड़ी हो जाता है, मानसिक योग्यता में कमी आ जाती है, शारीरिक स्वास्थ्य भी खराब रहने लगता है। इसके अतिरिक्त अन्य भी कई हानियाँ हैं। जिन के कारण व्यक्ति का व्यक्तित्व प्रभावित होता है।

ii. थाइराइड ग्रन्थि -इस ग्रन्थि की आकृति पुराने जमाने में पहने जाने वाले कवच की तरह होती है, जिसे लेटिन में थाइरोंन कहते हैं। यह ग्रन्थि श्वासनली के दोनों ओर पाई जाती है। इस ग्रन्थि से निकलने वाले हारमोन को थाइरोंक्सिन कहते हैं। थाइरोंक्सिन हारमोन में आयोडाइज्ड अमीनों एसिड होता है, जिसमें आयोडीन की मात्रा 65 प्रतिशत के लगभग होती है। जिस व्यक्ति में यह हारमोन कम निकलता है, उसका विकास अवरुद्ध हो जाता है। वह बौना रह जाता है, उसका मस्तिष्क का विकास नहीं हो पाता है, मानसिक विकास के अवरुद्ध होने के कारण स्मृति तथा चिन्तन कम हो जाते हैं, ध्यान का विस्तार अत्यन्त कम हो जाता है। इन सब का प्रभाव व्यक्ति के व्यक्तित्व पर पड़ता है।

iii. पैराथायराइड ग्रन्थि- यह ग्रन्थि चार मटर के आकर की ग्रन्थियों से मिलकर बनी होती है। इस ग्रन्थि के द्वारा पैराथायराइड हारमोन पैदा होता है, जो कि पेप्टाइड हारमोन होता है। इस हारमोन से रक्त में कैल्शियम की मात्रा नियंत्रित रहती है तथा दांतों तथा अस्थियों का विकास समुचित ढंग से होता है। यह ग्रन्थि हमारे संवेगात्मक व्यवहार तथा शान्तचित्तता को प्रभावित करती है। जो कि व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण निर्धारक है।

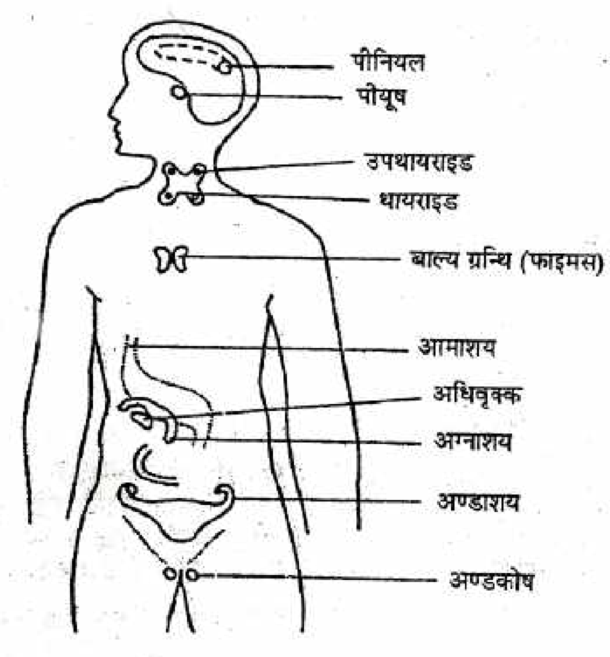

चित्र 8.1 अन्तस्रावी ग्रन्थियां

iv. एड्रीनल ग्रन्थि - ये ग्रन्थि दोनों गुर्दों के ऊपर पाई जाती है। प्रत्येक ग्रन्थि की बाहरी पर्त Cortexऔर अन्दर की पर्त को Medulla कहते हैं। इस ग्रन्थि से निकलने वाले स्राव को एड्रीनल हारमोन कहते हैं । वास्तव में ये ऐपिनेफ्रीन हारमोन होते हैं । इन हारमोन्स को आपातकालीन चेतावनी हारमोन (Emergency Warning Sirem)कहते हैं । आपातकालीन परिस्थितियों में ये रक्त शर्करा के स्तर को बढ़ा देता है, हृदय की धड़कन तेज हो जाती है। रक्त दाब बढ़ जाता है, रक्त प्रवाह तेज हो जाता है। ये शरीर को लड़ने और भागने के लिए तैयार करती है। आपातकालीन स्थिति की समाप्ति पर शरीर को थकान अनुभव होती है तथा त्वचा का रंग काला पड़ जाता है।

v. पिट्यूटरी ग्रन्थि - यह ग्रन्थि मस्तिष्क के हाइपोथैलेमस के नीचे की ओर पाई जाती है। इस ग्रन्थि के दो भाग होते हैं-पोस्टेरिअर तथा इन्टीरियर पिट्यूटरी ग्रन्थि। इस ग्रन्थि को मास्टर ग्रन्थि कहा जाता है, क्योंकि यह ग्रन्थि ही अन्य ग्रन्थियों से निकलने वाले स्रावों को नियंत्रित करती है। पिट्यूटरी ग्रन्थि के अधिक स्राव के कारण व्यक्ति की लम्बाई तथा आकार दोनों बढ़ जाते हैं। अमेरिका का राबर्ट बैडलों 22 वर्ष तक की आयु तक जिन्दा रहा। 22 वर्ष की आयु में वह किसी संक्रामक रोग से मर गया था। उस समय उसकी लम्बाई 8 फुट 11 इंच (272 सेन्टीमीटर) तथा शरीर भाग 220 किलोग्राम था। उसके शरीर के एक्स-रे से विदित हुआ कि वह पिट्यूटरी ग्रन्थि में ट्यूमर से रोगग्रस्त था। पिट्यूटरी के अधिक स्राव से व्यक्ति की लम्बाई बढ़ जाती है तथा कम स्राव से वृद्धि अवरुद्ध हो जाती है, जिसे वैज्ञानिक भाषा में पिट्यूटरीय बौनापन कहते हैं हाइपोथैलेमस इन्टीरियर पिट्यूटरी ग्रन्थि के स्राव को नियंत्रित करता है तथा इन्टीरियर पिट्यूटरी ग्रन्थि अन्य ग्रन्थियों के स्राव को नियंत्रित करती है।

vi. जनन ग्रन्थियां- स्त्री के अण्डाशयों तथा पुरुष के वृषणों से निकलने वाले स्रावों को गीनेडल हारमोन्स कहते हैं। ये तीन होते हैं-प्रोजेस्ट्रोन, एण्डोजन तथा इस्ट्रोजन्स। इन हारमोन्स का प्रभाव व्यक्तित्व पर बहुत अधिक पड़ता है। इन हारमोन्स के द्वारा ही पुरुष में पुरुषत्व तथा स्त्रियों में स्त्रित्व के लक्षणों का विकास होता है। इस स्रावों से ही स्त्री-पुरुष के जनन तंत्र का विकास होता है।

प्रोजेस्ट्रोन यह ओवरी से स्रावित होता है। यह हारमोन यूटरस (बच्चेदानी) को गर्भ के लिए तैयार करता है। तथा दुग्ध ग्रन्थियों का विकास करता है। टेस्टोस्ट्रोन पुरुषों में द्वितीयक कामांगों का विकास करता है तथा प्यूबर्टी में विकास को त्वरण प्रदान करता है। इसके द्वारा पुरुष जननांगों का विकास होता है तथा शुक्राणुओं के बनने की क्रिया प्रारम्भ होती है। स्ट्रडिओल हारमोन्स के द्वारा महिलाओं में द्वितीयक कामांगों का विकास होता है तथा प्यूबर्टी में स्त्री जननतंत्र को विकसित करता है। यूटरस को गर्भधारण क लिए तैयार करता है। आमतौर पर यह देखा गया है कि जिन स्त्री-पुरुषों में यौन अंगों का विकास

सन्तुलित नहीं होता, उन्हें विभिन्न प्रकार के शारीरिक तथा मानसिक विकार उत्पन्न हो जाते हैं।

2. शरीर रचना –
आनुपातिक रूप से शरीर के गठन को व्यक्तित्व के साथ जोड़ने की परम्परा रही है। यह अनुसंधानों से भी सिद्ध हो चुका है। शरीर रचना में विकृति का असर व्यक्ति की समायोजन क्षमता पर पड़ता है। शारीरिक रचना में कमी वाले व्यक्तियों में हीन भावना पनप जाती है।

चित्र 8.2 डाउन्स सिन्ड्रोम (मंगोलता) के प्रभाव व कारण

शारीरिक लक्षण: अवरुद्ध विकास, 1. छोटा गोल सिर, 2. आँखों के बीच अपेक्षतया अधिक फासला, 3. छोटी बैठी हुई नासिका, 4. विर्दीण जीभ तथा निचला होंठ आगे को बढ़ा हुआ, 5. छोटी गर्दन, 6. हाथ चौड़े और मोटे, असामान्य हस्तरेखाएं, कनिष्ठा अंगुली बहुत छोटी, तथा 7. अल्पविकसित जननांग। मंगोलता का कारण 21 वें नम्बर पर दो के बजाए तीन क्रोमोसोमों की उपस्थिति भी हो सकता है।

3. आनुवंशिक कारण
कुछ अज्ञात कारणों से कई बार व्यक्ति की पैतृकता को प्रभावित करने वाले क्रोमोसोम में गड़बड़ हो जाती है। जैसा कि हम जानते हैं कि सन्तान का लिंग निश्चयन का दायित्व x तथा y क्रोमोसोम का होता है। कई बार इन क्रोमोसोम की संख्या में परिवर्तन आ जाता है। पुरुष

में xyतथा स्त्रियों में xx क्रोमोसोम होते हैं। कभी-कभी यह बढ़ कर xxx किसी व्यक्ति में यह xyyहो जाते हैं।

सर्वेक्षण में पाया गया है कि औसतन प्रति 10 हजार लड़कों में 10 लड़के ऐसे होते हैं, जिनकी कोशिका में एक अतिरिक्त yक्रोमोसोम होता है। इसी प्रकार प्रति 10 हजार लड़कों में से 13 में एक अतिरिक्त x क्रोमोसोम पाया जाता है।

जिन लड़कों में xxy क्रोमोसोम होता है, उनमें युवावस्था में चेहरे पर बालों का अभाव होता है, वक्ष पर कुछ उभार आ जाता है। आमतौर पर अतिरिक्त x क्रोमोसोम वाले लड़के मंद बुद्धि वाले होते हैं।

कुछ लड़कों में अतिरिक्ति y क्रोमोसोम पाया जाता है। इस सम्बन्ध में विशेष रुचि तब उत्पन्न हुई जब स्काटिश स्टेट सिक्योरिटी हॉस्पिटल में 3 प्रतिशत व्यक्तियों की कोशिकाओं में एक अतिरिक्त y क्रोमोसोम पाया गया।

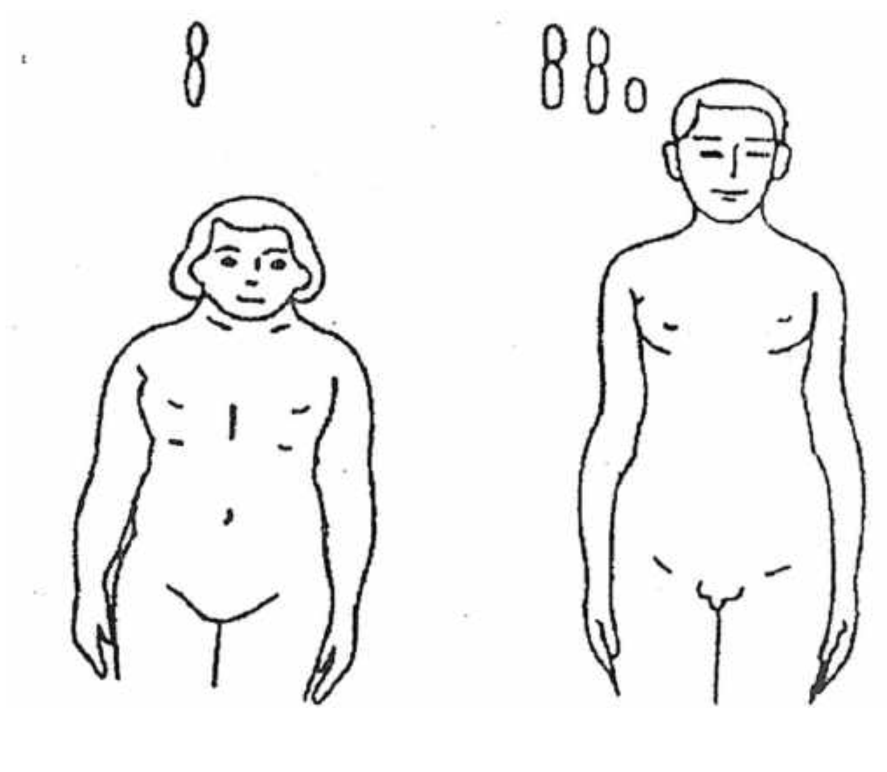

चित्र 8.3 क्रोमासोमजन्य यौन अपसामान्यताएं।

(बाएँ) टर्नर्स सिन्ड्रोम (अपसामान्यतः विकसित स्त्री) के लक्षणः रुद्ध विकास, मानसिक विकार (प्रायः), ठोड़ी अन्दर धंसी हुई, वैब्ड गर्दन, अल्पविकसित छतियां, अण्डाशय (ओवरी) अविकसित

अथवा अनुपस्थित, जघन रोम (प्यूबिक हेयर) अति विरल अथवा अनुपस्थित, ऋतुस्राव का अभाव, बंध्यता (प्रायः), जन्मजात श्रवण विकार। कारण: दो के स्थान पर केवल एक क्रोमोसोम का होना।

(दाएं) क्लाइनफेल्टर सिन्ड्रोम (अपसामान्यतः विकसित पुरुष) के लक्षण- षंडाभ अंग (बहुधा) मानसिक विकृति, स्तन अति विकसित (पुरुष के लिए), अल्पविकसित जननांग ओर साधारणतया शुक्राणुओं का अभाव। कारणः एक x क्रोमोसोमों के स्थान पर दो या अधिक x क्रोमोसोम्स की उपस्थिति।

व्यक्तियों में 4 में से 1 की कोशिका में अर्थात् 25 प्रतिशत व्यक्तियों में अतिरिक्त y क्रोमोसोम उपस्थित होता है। सन् 1966 में एक अध्ययन में 6 फीट से अधिक ऊंचाई के 50 व्यक्तियों में से 12 व्यक्ति xyy क्रोमोसोम वाले थे।

क्रोमोसोम वाले व्यक्ति अल्पायु में ही अपराधवृत्ति के कारण दण्डित होते हैं वे आमतौर पर 13 वर्ष की अल्पायु में ही किसी न किसी अपराध में फंस जाते हैं उनकी प्रवृत्ति सम्पत्ति को हानि पहुँचाने की अधिक होती है व्यक्ति को हानि पहुँचाने की कम होती है। अतिरिक्त y क्रोमोसोम वाले परिवारों का अध्ययन करने पर यह भी विदित हुआ कि xyy क्रोमोसोम वाले व्यक्ति के परिवार में अपराध करने की प्रवृत्ति मौजूद नहीं होती। इस प्रकार का व्यक्ति विशेष ही अपराधी होता है उसका परिवार नहीं।

अलिंग क्रोमोसोम (ओटोसोम) की अपसामान्यता में से सबसे अधिक पाई जाने वाली अपसामान्यता डाउनसिन्ड्रोम (मंगोलता) है। मंगोलता में मंदबुद्धिता, नाटा कद, जन्मजात विरुपताएं आदि पाई जाती है।

इसी प्रकार जिन स्त्रियों में लिंग क्रोमोसोम केवल एक होता है अर्थात् केवल एक क्रोमोसोम होता है, उनका कद छोटा, गर्दन मोटी, छाती चौड़ी, चुचकों के बीच का अन्तर अधिक, स्तन अविकसित, गर्भाशय अविकसित, बहुत छोटा तथा डिम्बग्रन्थियां एक तन्तुमय रेखा जैसी होती हैं। 3000 में से केवल एक स्त्री ऐसी होती है।

कुछ स्त्रियों में तीन x क्रोमोसोम पाए जाते हैं वे देखने में तो सामान्य-सी लगती है परन्तु इनकी प्रजनन क्षमता कम होती है। इन बुद्धि भी कुछ कम होती है। ऐसी स्त्रियां 750 में एक पाई जाती है।

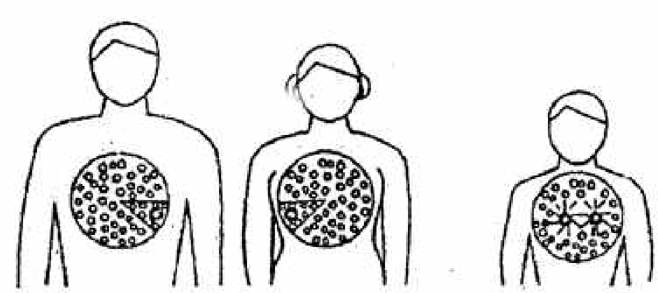

चित्र 8.4 इन ब्रीडिंग का प्रभाव

सगे चचेरे, ममेरे, फुफेरे मौसेरे भाई-बहिनों में कुल जीनों मे 1/8 जीन समान होते हैं। यदि इनमें से कोई एक रिसेसिव जीन का वाहक तो दूसरे में वैसे ही जीन के होने की सम्भावना आठ में से एक होती है । यदि इन व्यक्तियों के परस्पर विवाह हो जाए तो सन्तान में एक ही प्रकार के दो रिसेसिव जीनों के आ जाने की और परिणामस्वरूप उसमें विकार आ जाने की सम्भावना बहुत बढ़ जाती है।

खण्ड-ओष्ठ तथा खण्डतालु भी आनुवंशिक रोग हैं। इस रोग में जन्म के समय ही ओष्ठ पूरा विकसित नहीं होता। एक अनुमान के अनुसार 770 शिशुओं में से एक शिशु खण्ड-ओष्ठ का होता है। इन आनुवंशिक रोग के लिए कम बेधन क्षमता के डोमीनेन्ट जीन ही उत्तरदायी होते हैं।

मंदबुद्धिता एक महत्वपूर्ण समस्या है। मंदबुद्धिता के तीन वर्ग हैं- जड़ बुद्धि जिसकी बुद्धिलब्धि 1 से 19 तक होती है, मूढ़ता जिसमें बुद्धिलब्धि 20 से 49 तक होती है, दुर्बल बुद्धि जिसमें बुद्धिलब्धि 50 से 69 तक होती है। इसका कारण भी आनुवंशिक गुणों को माना जाता है। इसका कारण रिसेसिव जीन होते हैं। आमतौर पर कुटुम्ब के सदस्यों में विवाह करने पर अधिक प्रतिशत में मंदबुद्धि सन्तान उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है। अतः चचेरे, मरेरे, फुफेरे, मौसेरे भाई-बहिनों को आपस में विवाह नहीं करना चाहिए। इस अपसामान्य स्थिति के लिए क्रोमोसोम नम्बर 21 जिम्मेदार होता है। आनुवंशिकी की भाषा में इसे समोद्भवता कहते हैं। समोद्भवता से बंध्या, गर्भपात तथा जन्मजात विकृति जैसी समस्याएं भी आती है।

मुद्गरपाद एक आनुवंशिक रोग है इस रोग में जिसमें पैर विरूपित हो जाता है, जिसका असर व्यक्ति के व्यवहार पर पड़ता है। मधुमेह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में पहुंचता है। इस रोग के लिए भी रिसेसिव जीन ही उत्तरदायी होता है। कई प्रकार की एलर्जी भी आनुवांशिक रोग माने गए हैं। मनुष्य का सूरजमुखी (एल्बिनिज्म) होना यद्यपि आनुवंशिक रोग नहीं है फिर भी इसका सम्बन्ध जीन में हुए उत्परिवर्तन से है। उपर्युक्त कथनों से स्पष्ट होता है कि आनुवंशिक कारक व्यक्ति के व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करने वाले कारकों की श्रेणियों को लिखिए।
2. मंदबुद्धिता के वर्गों को लिखिए।

8.5 संवेगों का विकास पर प्रभाव

संवेग अंग्रेजी शब्द Emotion का पर्यायवाची है। यह लैटिन भाषा के Emovere शब्द से बना जिसका अर्थ है हिला देना। जेम्स डेवर संवेग को परिभाषित करते हैं कि ''संवेग शरीर की जटिल अवस्था हैं, जिसमें सांस लेने, नाड़ी ग्रन्थियों, मानसिक दशा, उत्तेजना, अवरोध आदि का अनुभूति पर प्रभाव पड़ता है और मांसपेशियां निर्धारित व्यवहार करने लगती है।''

मैक्डूगल ने 14 प्रकार के संवेग बताए हैं-

1. भय
2. क्रोध
3. वात्सल्य
4. घृणा,
5. करुणा
6. आश्चर्य
7. आत्महीनता
8. आत्माभिमान
9. एकाकीपन
10. कामुकता
11. भूख,
12. अधिकार भावना
13. कृतिभाव, तथा
14. आमोद

क्रोध प्राणियों में सबसे प्रमुख संवेग है। क्रोध के सम्बन्ध में गीता में बहुत ही उपयोगी प्रस्तुति स्थिर बुद्धि व्यक्ति का वर्णन करते समय की गई है–

ध्यायतो विषयान् पुंसः संस्तेषूपजाए ते।। (2/62)
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।। (2/63)
रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयान्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैविधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति।। (2/64)

विषयों का चिन्तन करने वाले पुरुष की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है, आसक्ति से उन विषयों की कामना उत्पन्न होती है और कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से अत्यन्त मूढ भाव उत्पन्न हो जाता है, मूढ़ भाव से स्मृति में भ्रम हो जाता है, स्मृति में भ्रम हो जाने से बुद्धि अर्थात् ज्ञानशक्ति का नाश हो जाता है। बुद्धि नाश हो जाने से व्यक्ति अपनी स्थिति से गिर जाता है। जो व्यक्ति अन्तःकरण को अपने वश में रखता है, वह राग-द्वेष से रहित इन्द्रियों द्वारा विषयों में विचरण करता हुआ अन्तकाल की प्रसन्नता को प्राप्त कर लेता है। संवेगों पर युक्ति-युक्ति नियंत्रण अच्छे व्यक्तित्व के लिए आवश्यक है। अतः संवेगों पर नियंत्रण के लिए विधिवत प्रशिक्षण की आवश्यता है।

8.6विकास परसफलतातथाअसफलताकाप्रभाव

सफलताएं तथा असफलताएं किसी भी व्यक्ति के विकास को प्रभावित एवं निर्दिष्ट करती हैं। सफलता तथा असफलता का व्यक्ति पर प्रभाव अलग-अलग प्रकार से होता है। उसके पीछे निहित कारण यह है कि वह व्यक्ति सफलता अथवा असफलता को किस प्रकार ग्रहण करता है। वह असफलता भी बहुत बड़ी सफलता है, जिससे व्यक्ति का चिन्तन विधायक (Positive)हो जाए। सफलता की जो परिभाषा अर्ल नाइटिंगैल ने प्रस्तुत की है, वह इस प्रकार है- मूल्यवान लक्ष्य की लगातार प्राप्ति का नाम ही सफलता है। (Success is the progressive realization of a worthy.)

सफलता की इस परिभाषा में आए शब्दों का अपना विशिष्ट महत्व है। 'लगातार' का अर्थ सफर है, मंजिल नहीं जहाँ जाकर हम रुक जांए । मूल्यवान का संकेत हमारे नैतिक मूल्यों से है। हम कहाँ जा रहे हैं, सही दिशा में या गलत दिशा में एवं लक्ष्य इसलिए महत्वपूर्ण है कि वे हमें रास्ता दिखाते हैं।

सफलता का अर्थ है कि ''आप जानते हैं कि आपने सही काम सही ढंग से पूरा किया''- शिव खेड़ा

सफलता और असफलता के सम्बन्ध में बहुत-कुछ कहा जा सकता है। परन्तु हम यहाँ पर बच्चों के व्यक्तित्व विकास के सम्बन्ध में ही सोच रहे हैं इसके लिए पहली आवश्यकता है विधायक अभिवृत्ति या शुभ-शुभ सोचना। यदि हम बच्चों में विधायक अभिवृत्ति का निर्माण करने में सफल हो जाते हैं तो सफलता तथा असफलता दोनों ही व्यक्तित्व विकासमें विधायक कार्य करेंगी, अन्यथा दूसरी तरह के परिणाम आने की सम्भावना से इंकार नहीं किया जा सकता।

1. सफलता का प्रभाव
   i. सफलता सन्तुष्टि प्रदान करती है।
   ii. सफलता भविष्य के लिए प्रेरणा देती है।
   iii. आत्मविश्वास की भावना को विकसित करती है।
   iv. व्यक्ति को प्रसन्नता प्रदान करती है
   v. नवीन चुनौतियों को स्वीकार करने की तत्परता प्रदान करती हैं
   vi. अकांक्षा स्तर में वृद्धि करती है।
   vii. कई बार सफलता से अहंकार (घमण्ड) हो जाता है। व्यक्ति अपने आप को श्रेष्ठ समझने लगता है, जिससे प्रेरणा की कमी आ जाती है। इस प्रकार के अविधायक भावों का विकास न हो यह ध्यान में रखकर सफलताओं का सही उपयोग करना आना चाहिए।
2. असफलताओं का प्रभाव
   i. असफलता से हीनभाव पनपता है।
   ii. असफलता से असफलता ग्रन्थि (Faliure Complex)का निर्माण हो जाता है।
   iii. इससे प्रेरणा में कमी आती है।

iv. भविष्य की चुनौतियों से विमुख हो जाता है।
v. दूसरों को असफलता के लिए दोषी ठहराने लगता है।
vi. क्रोध का प्रदर्शन करना
vii. निरन्तर उदास रहना, अप्रसन्न रहना।
viii. तोड़-फोड़ करने की प्रवृत्ति बढ़ती है।
ix. आत्मप्रत्यय (Self-Concept)का दोषपूर्ण विकास होता है।

इरिक्सन के अनुसार सफलताएं व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिकाओं का निर्वहन करती है।

छोटे बच्चों को सफलताप्राप्त कराने में अध्यापक तथा अभिभावकों का महत्वपूर्ण योगदान होता है, उन्हें अपना दायित्व पूर्ण करना चाहिए।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

3. ''धरती एक्स-धुरी पर नहीं बल्कि सेक्स धुरी पर चक्कर काटती है'' यह कथन किसका है?
4. जेम्स ड्रेवर द्वारा दी गई संवेग की परिभाषा लिखिए।
5. मैक्डूगल ने कितने प्रकार के संवेग बताए हैं?
6. मैक्डूगल द्वारा बताए गए संवेगों के नाम लिखिए।

8.7 विकास के सिद्धान्त

व्यक्तित्व विकास के सिद्धान्तों में प्रमुख सिद्धान्त हैं- पहला फ्राइड का मनोविश्लेषणवाद तथा दूसरा इरिक्सन का मनोसामाजिक सिद्धान्त। पहले हम फ्राइड के सिद्धान्त का संक्षित अध्ययन कर रहे हैं।

8.8फ्रायड का मनोविश्लेषणवाद

फ्रायड का मानना है कि तनाव के चार मुख्य स्रोतों की अनुक्रिया के फलस्वरूप व्यक्तित्व का विकास होता है। ये स्रोत हैं-

1. शारीरिक विकास
2. कुण्ठाएं (Frustrations)
3. संघर्ष (Conflicts) तथा

4. आशंकाएं (Threats)

फ्राइड के मनोविश्लेषण वाद उनके 40 वर्षों (1900-1940) के शोध-अनुभवों पर आधारित है। फ्रायड ने व्यक्तित्व को पांच अवस्थाओं में समझाया है।

1. **मुखीय अवस्था Oral Stage -मुखीय अवस्था को दो उप-अवस्थाओं में बांटा है-**

(क) मुखीय चूषण अवस्था (Oral Sucking Stage)

यह अवस्था जन्म से 8 मास की अवस्था तक रहती है। इस अवस्था में Libidoका स्थिरीकरण मुंह, ओष्ठ और जीभ पर रहता है इस अवस्था में बच्चे का व्यवहार पूर्णरूपेण इड से प्रभावित रहता है। इस अवस्था में बच्चे को चूषण में आनन्द आता है। जब बच्चे को चूषण के लिए माँ का स्तन नहीं मिलता तो वह अपने हाथ या अंगूठे को चूस कर आनन्द की प्राप्ति करता है। पूरे शरीर के कहीं भी स्पर्श करने से बच्चे को आनन्द आता है। जब दूध पीना अचानक छुड़ाया जाता है तो बच्चे की काम की असन्तुष्टि होती है। फ्रायड ने इसे प्रथम मानसिक आघात (Traumatic Experience) कहा है। इस प्रकार के अनुभवों से आगे चलकर अनेक मानसिक रोग उत्पन्न हो सकते है। इस आयु के बाद इगों का विकास प्रारम्भ हो जाता है।

(ख) **मुखीय काटना अवस्था (Oral Biting Stage)**

यह अवस्था 6 मास के 18 मास तक चलती है। इस अवस्था में आनन्दानुभूति काटने और चूसने से प्राप्त करता है। बच्चा अपनी मां से प्रेम करता है, क्योंकि वह उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करती है तथा मां से घृणा भी करने लगता है, क्योंकि वह अपना दूध छुड़ा कर बोतल से दूध पिलाती है तथा उसका ठोस आहार प्रारम्भ करती है। बच्चे को इसी समय नई-नई आदतें भी सिखाई जाती हैं। बच्चों अपनी असन्तुष्टि को मां के स्तन को काट कर प्रकट करता है। इसे फ्रायड ने द्वितीय मानसिक आघात (Second Major Traumatic Experience) नाम दिया है।

2. **गुदीय अवस्था (Anal Stage)**फ्रायड ने इस अवस्था को भी दो भागों में विभिक्त किया है-

(क) **गुदीय निष्कासन अवस्था (Anal Expulsive Stag**e)

यह अवस्था 8 मास से 3 वर्ष की अवधि तक रहती है। इस अवस्था में बालक मल निष्कासन से आनन्दानुभूति करता है इस अवस्था में इगो का विकास हो जाता है। वह व्यक्तियों को उनके लिंग के आधार पर पहचानना शुरू कर देता है। लड़का सोचने लगता है कि वह बड़ा होकर बाप बनेगा तथा लड़की सोचती है कि वह बड़ी होकर मां बनेगी।

(ख) **गुदीय अवधारणात्मकअवस्था**

यह अवस्था 1 से 4 वर्ष तक रहती है । इस अवस्था में मलमूत्र रोंकने में आनन्दानुभूति करता है। कभी-कभी जब वह मलमूत्र नहीं रोंक पाता तो दूसरों के सामने अपना आपमान महसूस करने लगता है । इस अवस्था में बालक यह अनुभव करने लगता है कि मां-बाप के लिए वह केन्द्र नहीं है। बल्कि मां-बाप उसके लिए केन्द्र हैं। यह बच्चे के लिए नया आघात है। यदि इन अनुभवों का शोधन हो जाए तो बच्चा आगे चलकर चित्रकार, मूर्तिकार बन सकता है। और यदि प्रतिक्रिया निर्माण (Reaction Formation) हो जाए तो व्यक्ति मलमूत्र से घृणा तथा कंजूसी जैसा व्यवहार अपना लेता है।

3. **लैंगिक अवस्था (Phallic Stage)**

यह अवस्था 3 से 7 वर्ष तक की आयु तक चलती है। इसमें बच्चा अपना लिंग पहचानने लगता है। विपरीत लिंगी से अपना विभेद समझने लगता है। इस अवस्था में बच्चे अपने कामांगों को छेड़कर आनन्द प्राप्त करते हैं। इसी अवस्था में बच्चे में ओडीपस कोम्प्लेक्स, इलैक्ट्रा कोम्प्लेक्स, कास्ट्रेशन (बधिया) कोम्प्लेक्स तथा शिश्न ईर्ष्या (Penis Envy) जैसे कोम्प्लेक्स उत्पन्न होते हैं।

4. **सुप्तावस्था (Latency Stage)**

यह अवस्था 5 से 12 वर्ष तक रहती है। इस अवस्था में लिबिडो सुप्तावस्था में रहता है। इस अवस्था में बालक का सामाजिक दायरा बढ़ता है। माता के प्रति प्रेम, सम्मान में बदल जाता है। मां-बाप द्वारा प्रदर्शित प्रेम अच्छा नहीं लगता।

5. **जननेन्द्रिय अवस्था (Genital Stage)**

यह अवस्था लैंगिकता के प्रस्फुटन की अवस्था है। इसमें अपने यौन अंगों को जननेन्द्रिय रूप में देखने लगते हैं। लड़के-लड़कियां कहानी-किस्से पढ़ने, मनगढ़न्त कहानियां रचने, कहानियां सुनने, दिवास्वप्न, हस्तमैथुन और समलिंगी कामुकता करने लगते हैं। गन्दे कहे जाने वाले व्यवहार करने लगते है। लड़कियां हल्ला-गुल्ला करना बंद कर संकोची हो जाती हैं। इस अवस्था के अन्त तक समलिंगी कामुकता छूट जाती है।

फ्रायड का यह विश्लेषण युवाओं के व्यवहार विश्लेषण तथा बच्चों के पारिवारिक निरीक्षण पर आधारित Psycho-biologicalसिद्धान्त है। फ्रायड का मत है कि यदि इन प्रावस्थाओं में व्यक्ति का विकास सामान्य रूप से होता है तो उसका व्यवहार भी सामान्य ही होगा। परन्तु यदि विकास में असाधारणता आती है तो व्यक्ति का व्यवहार तथा व्यक्तित्व विकृत हो जाएगा।

इस प्रकार विकसित होने वाले संरचना में तीन घटकपाए जाते हैं इड, इगो तथा सुपर ईगो।

इड (Id)फ्रायड के अनुसार व्यक्तित्व का मूलस्रोत इड ही है। नवजात शिशु में इड ही रहता है। इसके बाद ईगो तथा सुपर ईगो का विकास होता है। इड में यौन तथा आक्रामकता आदि सभी

अन्तर्नोद (Drive)रहते हैं। इसमें लैंगिक ऊर्जा भी होती है, जिसेLibidoकहते हैं। इड सदैव सुखानुभूति सिद्धान्त के आधार पर कार्य करता है। इससे इच्छाओं का भण्डार कहा जाता है।

ईगो (अहम्) अहम् का विकास इड से होता है। यह वास्तविकता को अधिक महत्व देता है। यह वास्तविकता के सिद्धान्त पर कार्य करता है। यह निर्णय अहम् का ही होता है कि कौन-सी आवश्यकता की पूर्ति कब होगी। यह इड तथा परा अहम् के बीच की कड़ी है।

परा अहम् (Super Ego) पराअहम् को नैतिक मन भी कह सकते हैं। यह सामाजिक मान्यताओं, मूल्यों आदर्शों तथा प्रचलनों का प्रतिनिधित्व करता है। यह व्यक्ति द्वारा किए जाने वाले व्यवहार के औचित्य तथा सामाजिक मानदण्डों के सन्दर्भ में उसकी वांछनीयता का मूल्यांकन करता है। यह आदर्श के सिद्धान्त (Principle of Ideals) का अनुसरण करता है।

फ्रायड के अनुसार अवांच्छित तथा अप्रासंगिक इच्छाओं को परा अहम् दमन (Repression) कर देता है। और वे अचेतन मन में पड़ी रहती है। परन्तु अनुकूल अवसर जाने पर वे पुनः सक्रिय हो जाती है। प्रारम्भ में बालक अपनी प्रत्येक इच्छा को पूरा करना चाहता है परम अहम् (नैतिकता) के विकास के साथ-साथ उसमें उचित-अनुचित का ज्ञान बढ़ता है। वह इच्छा की अपेक्षा औचित्य पर अधिक ध्यान देने लगता है। बच्चे अपने माता-पिता तथा अन्य लोगों का अनुसरण करके अच्छे गुण सीखते हैं तथा उन जैसा बनने का प्रयास (तादात्मीकरण) भी करते हैं।

8.9 इरिक्सन का मनोसामाजिक सिद्धान्त

इरिक्सन (1963) भी मनोविश्लेषणवादी ही रहे हैं। परन्तु इनका विश्वास था कि व्यक्तित्व विकास में जैविक कारकों की अपेक्षा सामाजिक कारकों की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण है। बच्चे के जीवन में जिस प्रकार की अनुभूतियां होंगी, वह उन्हीं के अनुरूप विकास भी करेगा। फ्रायड की तरह इरिक्सन भी मानते हैं कि विकास की किसी एक अवधि में जो अनुभव होता है वह उसके आगामी विकास को भी प्रभावित करता है। इरिक्सन इड की अपेक्षा अहम् को विकास के लिए अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं। इरिक्सन ने विकास को आठ अवस्थाओं में विभक्त किया है-

1. **आस्था बनाम अनास्था (Trust Vs Mistrust)**यह अवस्था जन्म से एक वर्ष की आयु तक रहती हैं इस अवस्था में बालक परिवार में रहता है, उसका सामाजिक परिवेश सीमित रहता है। प्यार मिलने के कारण उसकी माता-पिता के प्रति आस्था का विकास होता है। यदि प्यार नहीं मिला तो अनास्था का विकास होगा तथा इस अविश्वास (अनास्था) के साथ ही अगली अवस्था में प्रवेश करेगा।

2. **स्वायतता बनाम सन्देह (Autonomy Vs Doubt)** यह अवस्था 1 से 2 वर्ष तक की अवधि तक रहती है। इस आयु में पर्यावरण के प्रति जिज्ञासा का विकास होता है। बालक में आत्म-नियंत्रण एवं इच्छा-शक्ति का तीव्र विकास होने लगता है। प्यार मिलने पर बालक में आत्मनियंत्रण एवं इच्छा शक्ति का तीव्र विकास होने लगता है। प्यार मिलने पर बालक में आत्मविश्वास बढ़ता है। दण्डित किए जाने पर शर्महीनता तथा निराशा का विकास होता है। मजाक बनाने पर उसे अपनी क्षमता पर सन्देह होने लगता है।
3. **पहल बनाम ग्लानि (Initiative Vs Guilt)** यह अवस्था 3 से 5 वें वर्ष की होती है इसमें बालक का सामाजिक दायरा बढ़ता है। उसके परिवेश में वृद्धि होती है। इस अवस्था में कुछ करने की अभिलाषा तथा जिम्मेदारी की भावना का विकास होता है। कार्य में सफलता मिलने पर प्रंशसा मिलती है। बच्चे में पहल करने की भावना का विकास होता है। निन्दा करने पर वह स्वयं को दोषी ठहराता है। यदि उसे असफलता पर निन्दा मिलती है तो वह काम की तरफ से मन चुराने लगता है। अतः इस आयु में असफलता का भान नहीं होने देना चाहिए।
4. **परिश्रम बनाम हीनता (Industry Vs Inferiority)** यह अवस्था 6 से 12 वर्ष तक मानी जाती है पूर्व अवस्था में यदि बालक को असफलता मिली होती है तो वह हीनता के भाव से ग्रस्त हो जाता है तथा कार्य से बचने की प्रक्रिया अपनाता है। उसे प्रोत्साहन देकर कार्य में आगे बढ़ने की प्रेरणा देनी चाहिए ताकि वह एक सामाजिक प्राणी बन सके।
5. **अस्तित्व बनाम भूमिका द्वन्द (Identity Vs Role Conflict)** यह अवस्था 13 से 18 वर्ष तक की आयु तक मानी जाती है। इसमें व्यक्ति अपनी पहचान बनाना चाहता है। वह अपना लक्ष्य निर्धारित करता है। यदि वह असफल होता है तो वह द्वन्द की स्थिति में आ जाता है उससे उनमें कर्त्तव्य परायणता तथा निष्ठा का भाव अवरोंधित हो जाता है।
6. **आत्मीयता बनाम पार्थक्य (Affiliation Vs Isolation)** यह अवस्था 19 से 35 वर्ष की आयु तक रहती हैं इसमें मित्रता, प्रतिस्पर्धा तथा सहयोग की भावना बढ़ती है। परन्तु निराशा, असफलता, हीनता एवं द्वन्द होने पर एकाकीपन की प्रवृत्ति विकसित होती है। समायोजन तथा उपलब्धि घटिया स्तर की हो जाती है।
7. **उत्पादकता बनाम निष्क्रियता (Productivity vs Inaction)**इस अवस्था का विस्तार 36 से 55 वर्ष तक होता है। इसमें व्यक्ति के (सामाजिक, पारिवारिक, व्यक्तिगत) दायित्व बढ़ते हैं ,जिससे क्षमता विभाजित हो जाती है। समाज तथा परिवार विभिन्न प्रकार की अपेक्षाएं करते हैं। यदि वह अपने दायित्व का ठीक प्रकार पालन नहीं करता तो उसका व्यक्तित्व कुंठित हो जाता है।
8. **सत्यनिष्ठा बनाम निराशा (Integrity Vs Despair)**इस अवस्था का प्रारम्भ 55 वर्ष की आयु से जीवन के अन्त तक रहता है। उसे अपनी उपलब्धियों तथा अपना अतीत बार-बार याद आता है और वह अपना स्वमूल्यांकन करने लगता है। यदि भूतकाल सुखमय

उपलब्धियों से भरपूर रहा है तो वह अपना जीवन उमंग और उत्साह के साथ बिताता है। और यदि वह असफल रहा है तो उसका आगामी जीवन निराशा तथा चिन्ता के द्वारा कष्टमय बन जाता है।

इरिक्शन के सिद्धान्त में एक बात बहुत महत्वपूर्ण है कि व्यक्ति को भी असफलता का मुंह न देखना पड़े, उसे वह निरन्तर प्रोत्साहन, प्रेम, सहानुभूति मिलती रहे तो व्यक्तित्व का उचित विकास होता है।

यह जानकारी अध्यापकों के लिए विशेष महत्वपूर्ण है कि वे बच्चों को निरन्तर प्रोत्साहित करते रहें तथा उन्हें प्रेरणा प्रदान करते रहें।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

7. आकांक्षाएं कितने प्रकार की होती हैं?
8. मनोविश्लेषणवाद का सिद्धांत किसने प्रतिपादित किया है?
9. मनोसामाजिक सिद्धान्त किसने प्रतिपादित किया है?
10. फ्रायड के अनुसार तनाव के चार मुख्य स्रोत कौन से हैं?
11. फ्रायड द्वारा दी गई व्यक्तित्व की पांच अवस्थाओं के नाम लिखिए।
12. इरिक्सन ने विकास को किननी आठ अवस्थाओं में विभक्त किया है?

8.10 सारांश

व्यक्तित्व के विकास का मुद्दा अत्यन्त महत्वपूर्ण है। शिक्षा के माध्यम से हम बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए कृत संकल्प हैं। व्यक्तित्त्वके विकास में अनुवंशिकता अतःस्रावी ग्रन्थियाँ व्यक्ति की शरीर रचना, बौद्धिक क्षमता, लिंग तथा संवेगों के साथ व्यक्ति का आकांक्षा स्तर तथा व्यक्ति को मिलने वाली सफलता तथा असफलता अपना प्रभाव डालती है। फ्राइड मानते हैं कि व्यक्ति के स्वयं के विकास की विभिन्न अवस्थाओं में उसका विकास सामान्य होता है, तो व्यक्ति का व्यवहार सामान्य रहेगा। यदि विकास में अवरोध आता है तो व्यक्तित्व में विकृति आ जाती है। एरिकशन के सिद्धान्त से बच्चों को प्यार मिलना बहुत आवश्यक है। असफलता मिलने के कारण ग्लानि का विकास हो जाता है। व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण जन्म से मृत्युपर्यन्त चलता रहता है। सभी सिद्धान्तों तथा मनोविज्ञान के प्रयोगों से यह बात स्पष्ट रूप से सामने आती है कि बच्चों को भरपूर प्यार मिले तथा उन्हें असफलता का सामना न करना पड़े। अतः हमारा दायित्व यह बनता है कि

बच्चों को रमणीयता से शिक्षा प्रदान करे तथा उन्हें असफलता का सामना न करने दें तभी हमारा शिक्षण सफल सिद्ध होगा।

8.11स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

1. व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करने वाले कारकों की श्रेणियाँ निम्न हैं-
    i. आनुवंशिक तथा दैहिक कारक,
    ii. पर्यावरणीय कारक,
    iii. मनोवैज्ञानिक कारक,
    iv. समाजिक कारक, तथा
    v. सांस्कृतिक कारक

2. मंदबुद्धिता के तीन वर्ग हैं- जड़ बुद्धि जिसकी बुद्धिलब्धि 1 से 19 तक होती है, मूढ़ता जिसमें बुद्धिलब्धि 20 से 49 तक होती है, दुर्बल बुद्धि जिसमें बुद्धिलब्धि 50 से 69 तक होती है।
3. यह कथन फ्रायड क है।
4. ''संवेग शरीर की जटिल अवस्था हैं, जिसमें सांस लेने, नाड़ी ग्रन्थियों, मानसिक दशा, उत्तेजना, अवरोध आदि का अनुभूति पर प्रभाव पड़ता है और मांसपेशियां निर्धारित व्यवहार करने लगती है।''
5. मैक्डूगल ने 14 प्रकार के संवेग बताए हैं।
6. मैक्डूगल द्वारा बताए गए संवेगों के नाम निम्न हैं-

    भय ,क्रोध, वात्सल्य, घृणा,करुणा, आश्चर्य, आत्महीनता, आत्माभिमान, एकाकीपन, कामुकता, भूख,अधिकार भावना, कृतिभाव, तथाआमोद
7. आकांक्षाएं निम्न प्रकार की होती हैं-तात्कालिक आकांक्षाएं, दूरस्थ आकांक्षाएं और अवास्तविक आकांक्षाएं।
8. मनोविश्लेषणवाद सिद्धांत फ्राइड ने प्रतिपादित किया है।
9. मनोसामाजिक सिद्धान्त इरिक्सन ने प्रतिपादित किया है।
10. फ्रायड के अनुसार तनाव के चार मुख्य स्रोत निम्न हैं-
    i. शारीरिक विकास
    ii. कुण्ठाएं (Frustrations)
    iii. संघर्ष (Conflicts) तथा
    iv. आशंकाएं (Threats)

11. फ्रायड द्वारा दी गई व्यक्तित्व की पांच अवस्थाओं के नाम निम्न हैं-
    i. मुखीय अवस्था
    ii. गुदीय अवस्था
    iii. लैंगिक अवस्था (Phallic Stage)
    iv. सुप्तावस्था (Latency Stage)
    v. जननेन्द्रिय अवस्था (Genital Stage)
12. इरिक्सन ने विकास को आठ अवस्थाओं में विभक्त किया है।

8.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Clifford T.Morgon,Richard A. King, John R.Weisz, John Schopler.(1993); Introduction to Advanced Educational Psychology,17 ed, New Delhi.TATA McGraw-Hill edition.
2. Cronbach, I.J. (1970), Essentials of Psychological Testing, 3rd ed., New York; Harper and Row Publishers.
3. Charles, E. Skinner (1990) : Education Psychology (Hindi) New Delhi, Disha Publications
4. ardner, Howard (1999): The Disciplined Mind. New York: Simon Schuste
5. Gupta, S.P. (2002) : उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन।
6. Dandapani, S. (2007). Advanced Educational Psychology, New Delhi.Anmol Publications Pvt. Ltd.
7. Ebel, Robert L,(1979), Essentials of Psychological Measurement, London; Prentice Hall International Inc.
8. Freeman, Frank S. (1962); Theory and Practice of Psychological Testing, New Delhi; Oxford and IBN Publishing Co.
9. Kuppuswamy, B.(2006), Advanced Educational Psychology ,New Delhi. Sterling Publishers Private Ltd.
10. Lindquist, E.F (1951), Educational Measurement, Washington D C American Council on Education.
11. Mangal, S.K. (2007) Advanced Educational Psychology, New Delhi. Prentice Hall of India Private Limited.

12. Mathur, S.S. (2007), Educational Psychology, Agra VinodPustakMandir.
13. Shukla, O.P. (2002): शिक्षा मनोविज्ञान, लखनऊ: भारत प्रकाशन।
14. Singh, Shireesh Pal (2009) :शिक्षा मनोविज्ञान, मेरठ, आर. लाल बुक डिपो।
15. Thorndike, R.L. & Hagen, E.P. (1969).Measurement and Evaluation in Psychology and Education 3rd ed; New York; John Wily&SonsInc
16. Williams, W.M. et al (1996): Practical Intelligence. New York: Harper Collins College Publications.

8.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. इरिक्सन के सिद्धान्तों की बिन्दुवार व्याख्या किजिए।।
2. व्यक्तित्व के विकास में फ्राइड का महत्वपूर्ण योगदान क्या है स्पष्ट करें।
3. व्यक्तित्व के विकास में अतःस्रावी ग्रन्थियों के प्रभावों की सूची का निर्माण करें
4. निम्नलिखित की व्याख्या खोज करके लिखें-
   i. ओड़ीपस कॉम्पलेक्स
   ii. इलेक्ट्रा कॉम्पलेक्स
   iii. कास्ट्रोशन कॉप्लेक्स
   iv. पैनिस एन्वी
   v. शरीर में आयोडीन तत्व की कमी के लक्षण
   vi. प्रोजेस्ट्रोन हारमोन
   vii. मधुमेह रोग का कारण तथा उस के मानसिक तथा शारीरिक प्रभाव
   viii. डाउन सिन्ड्रोम
   ix. यौन अपसामान्यताएं।

इकाई-9 गर्भस्थ शिशु का विकास- गर्भस्थ शिशु , गर्भावस्था और गर्भोत्तर कालीन विकास
Prenatal Development Prenatal, Antenatal and Postnatal Development

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 गर्भावस्था या प्रसवपूर्व बालक पर प्रभाव डालने वाले कुछ अन्य तत्व
9.4 गर्भस्थ शिशु का विकास
9.5 प्रसवकालीन विकास
9.6 प्रसव पूर्व देखभाल
9.7 गर्भोत्तरकालीन या प्रसवोत्तर कालीन विकास
9.8 सारांश
9.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
9.10 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

भारतीय विचार धारा - भारतीय मनीषी प्रारम्भ से ही इस बात का कथन करते आ रहे हैं कि बालक की शिक्षा का प्रारम्भ उस समय से भी पहले हो जाता है जब कि बालक माँ के गर्भ में आता है। महाभारत में अभिमन्यु ने चक्रव्यूह को तोड़ना अपनी माँ के गर्भ में ही सीखा था। गर्भावस्था में माँ पर जो-जो संस्कार पड़ेंगे, उन सब का प्रभाव बालक पर भी पड़ेगा इसलिए माँ को प्रथम आचार्य कहा गया है। उसका दर्जा पिता और गुरू से भी ऊँचा समझा गया है।

माँ किस प्रकार अपनी सन्तान को संस्कारित करे, इस विषय का सुन्दर ज्ञान यजुर्वेद के छठे अध्याय में कराया गया है। एक मन्त्र में कहा गया है।

’’ देवीरापः शुहा वोढ्वं सुपरि विष्टा देवेषु सुपरिविष्टा।।

वयं परिवेष्टारो भूयास्म।।’’ यजुर्वेद 6/13

अर्थात् ’’जलशीला शुद्ध देवियो! तुम अतिषय सुष्ठुता के साथ हम देवों में सुपरिविष्टा होकर दिव्य सन्तान का निर्वहन करो। हम दिव्य पति तुम्हारे परिवेष्टा हों।‘‘

पिता से सन्तान का आकृतिकरण और माता से सन्तान का प्रकृतिकरण तथा संस्कारकरण होता है। अतः देवी प्रजनन और दिव्य सन्तान की उपलब्धि के लिये यह परमावश्यक है कि गर्भाधान से पूर्व दोनों अपने अपने जीवन को सर्वतः दिव्य सुदिव्य बना लें।

9.2 उद्देश्य

1. इस इकाई के अध्ययन के पष्चात् आप गर्भावस्था या प्रसव पूर्व बालक को प्रभावित करने वाले तत्व के सम्बन्ध में बता सकेंगे।
2. गर्भस्थ शिशु का विकास कैसे होता है कितनी अवस्थायें होती हैं जान सकेंगे।
3. प्रसव पूर्व देखभाल व प्रसवोत्तर कालीन विकास व देखभाल कैसे होती है जान सकेंगे।

9.3 गर्भावस्था या प्रसवपूर्व बालक पर प्रभाव डालने वाले कुछ अन्य तत्व

माता के चरित्र तथा स्वभाव आदि का प्रभाव गर्भस्थ बालक पर पड़ सकता है। स्वस्थ और हृस्ट-पुष्ट शिशु की प्राप्ति के लिये आवश्यक है कि गर्भवती स्त्री की समुचित देखभाल की जाये क्योंकि सम्पूर्ण गर्भकाल में गर्भस्थ शिशु माँ की क्रिया, प्रतिक्रियाओं, स्वास्थ्य और पोषण द्वारा प्रभावित होता रहता है। अब माँ से सम्बन्धित कुछ अन्य ऐसे तत्वों का वर्णन किया जाएगा जिनका प्रभाव गर्भस्थ बालक के स्वास्थ्य पर पड़ सकता है।

1. **डाक्टरी परीक्षण (Medical Examination)**-सम्पूर्ण गर्भकालीन अवस्था में नियमित माँ का डाक्टरी परीक्षण आवश्यक है। डॉक्टरी परीक्षण से प्रत्येक समस्या का समाधान प्रारम्भिक अवस्था में ही हो जाता है।
2. **माँ का स्वास्थ्य**-अभिप्राय मानसिक तथा शारीरिक दोनों प्रकार के स्वास्थ्य से है। यदि माँ का स्वास्थ्य अच्छा होगा तो उत्पन्न होने वाले बालक का स्वास्थ्य भी अच्छा होगा। यदि माँ शारीरिक रूप से रूग्ण है तो इसका प्रभाव बालक के विकास पर पड़ेगा। रोगी माँ को प्रायः उपवास करना पड़ता है। इसका कुप्रभाव यह होता है कि गर्भस्थ शिशु को पौष्टिक तत्व नहीं प्राप्त हो पाते। उसका प्रभाव रस प्रक्रिया पर पड़ता है और इस कारण गर्भस्थ शिशु इस प्रभाव से बच नहीं पाता।

   माता की -

   a. पोषणीय कमियों में सुधार
   b. टीकाकरण
   c. गर्भकालीन टॉक्सीमिया का शीघ्र निदान
   d. संक्रमण से बचाव

e. एण्टीबायोटिक औषधियो से बचाव
f. उपर्युक्त सभी बातों का ध्यान अवश्य रखना चाहिए।

3. **माँ का आहार-** गर्भस्थ बालक को विकास के लिये जिन पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है, उन्हें वह माँ की रक्त धारा से प्राप्त करता है। उसे ये पोषक तत्व मिलते रहें उसके लिये यह आवश्यक है कि माँ का आहार सन्तुलित हो जिसमें सभी प्रकार के पोष्टिक तत्व पाए जायँ।
4. **ओषधियाँ -**गर्भ की दशा में माता द्वारा सेवन की जाने वाली औषधियों गर्भस्थ शिशु के लिये हानिकारक नहीं होनी चाहिए अतः यह आवश्यकीय है कि डाक्टर के निरीक्षण में ही माँ द्वारा औषधियाँ ली जानी चाहिए।
5. **मादक द्रव्य और तम्बाकू (Alcohol and Tobacco)**- मादक द्रव्य तथा तम्बाकू शिशु स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं, यदि गर्भवती स्त्री गर्भकालीन अवस्था में तम्बाकू या मादक पदार्थो का सेवन करती है तो इसका दुष्प्रभाव शिशु के हृदय तथा स्नायु संस्थान पर पड़ता है। गर्भस्थ शिशु के हृदय की घड़कन बढ़ जाती है। तम्बाकू में भी विषैला पदार्थ निकोटीन होता है जो कि शिशु के सामान्य रक्त चाप को तथा हृदय की धड़कन को प्रभावित करता है रेस्टाक (1979) ने पाया है कि जिन बच्चों के माता व पिता शराब का सेवन करते हैं उनके बच्चों को न तो अच्छी नींद आती है और न उन्हें ठीक से भूख ही लगती है। उनका वजन भी सामान्य से कम होता है।

   माता ही नहीं पिता के शराबी होने का दुष्प्रभाव भी शिशु स्वास्थ्य पर पड़ता है । शराब पीने के कारण शराबी पिता के शुक्राणु इतने अधिक कमजोर होते हैं कि वे गर्भाधान के समय ही वंशानुक्रम प्रक्रिया द्वारा बच्चे में शारीरिक व मानसिक दुर्बलताए स्थानान्तरित कर देते हैं।
6. **माँ की संवेगात्मक अनुभूतियाँ- (Motherly Emotions)**- माँ की गर्भकालीन संवेगात्मक अनुभूतियाँ गर्भस्थ शिशु को प्रभावित करती है। वैज्ञानिको के मतानुसार गर्भवती माँ की कष्टदायक संवेगात्मक अनुभूतियाँ बच्चों के जन्म के बाद अस्थिरता अतिसक्रियता तथा बेचैनी के लक्षण उत्पन्न करती है। ऐसे बच्चे अधिक रोते हैं और भली प्रकार से सो नहीं पाते हैं। इसके विपरीत जिन माताओं को गर्भकाल में सुखद अनुभूतियां होती है उनके बच्चे प्रसन्नचित्त, स्वस्थ तथा बर्हिमुखी होते हैं।
7. **माता-पिता की उम्र (Age of Parents)**- माता-पिता की उम्र शिशु के विकास को कुछ सीमा तक प्रभावित करती है। हरलॉक के अनुसार सन्तानोत्पत्ति के लिये स्त्री की आयु कम से कम 21 वर्ष होनी चाहिए क्योंकि इस आयु में यौन अंगों में परिपक्वता आ जाती है जिससे उत्पन्न शिशु शारीरिक रूप से स्वस्थ होते हैं। स्टेकेल ने बुद्धि-परीक्षा करके देखा कि कम उम्र के माता-पिता के बच्चे बुद्धि में कुछ कम तथा अधिक परिपक्व माता-पिता के बच्चे बुद्धि में कुछ अधिक थे। टरमन ने भी प्रतिभाशाली बालकों के अध्ययन में यह देखा

कि प्रतिभाशाली बालकों के पिता की औसत उम्र उनके जन्म के समय लगभग 34 वर्ष की थी, जबकि सामान्य बुद्धि के बालकों के पिता की औसत उम्र केवल 29 वर्ष की थी। 30 वर्ष से कम पिता और 26 वर्ष से कम माता के बच्चे इससे अधिक आयु के माता-पिता के बच्चों से कम बुद्धिमान पाये गये। स्टेकेल ने यह भी देखा कि लगभग समान आयु के पति-पत्नी के बच्चे उन बच्चों से अधिक बुद्धिमान होते हैं जिनके माता-पिता की उम्रों में अधिक अन्तर होता है।

8. **जन्म का महीना (Month of Birth)**- हरलॉक ने अनेक प्रयोगात्मक अध्ययनों की ओर संकेत करते हुए दिखलाने का प्रयत्न किया है कि वर्ष के भीतर जिस महीने में बच्चा पैदा होता है उस महीने का प्रभाव पड़ता है। ब्लॉसकी ;ठसंनोलद्ध 1929 पिन्टनर और मैलर (1937) तथा पिन्टनर और फार्लेयो (1943) ने अपने -अपने अध्ययनो में देखा है कि बसन्त और गर्मी में उत्पन्न होने वाले बच्चों की बुद्धि-लब्धि जाड़े में उत्पन्न बच्चों की बुद्धि-लब्धि से अधिक होती है। ऐसे बालकों की शैक्षणिक उपलब्धियाँ ; भी सर्दी के महीनों में उत्पन्न बालकों की अपेक्षा अधिक उत्तम होती है।

9.4 गर्भस्थ शिशु का विकास (Prenatal Development)

सामान्यतः नौ महीने के समय को ''गर्भकालीन अवस्था''कहा जाता है। वैज्ञानिकों के मतानुसार यह अवस्था नौ माह दस चन्द्रमास या लगभग 280 दिन की होती है। इस समय में कमी या अधिकता भी हो सकती है।

गर्भधारण के तुरन्त बाद शारीरिक विकास प्रारम्भ हो जाता है। भिन्न-भिन्न विकास अवस्थाओं में शारीरिक विकास भिन्न-भिन्न गति से चलता है।

गर्भकालीन विकास की विषेषतायें -

i. यह अवस्था गर्भाधान से लेकर जन्म से पूर्व तक चलती है।
ii. इस अवस्था में अन्य अवस्थाओं की तुलना में विकास की गति बहुत तीव्र होती है।
iii. इस अवस्था में मुख्यतः शारीरिक विकास ही होता है।
iv. समस्त शरीर रचना, भार, आकार तथा आकृतियों का निर्माण इसी अवस्था में होता है।

गर्भकालीन विकास की अवस्थायें- गर्भकालीन अवस्था में विकास की गति अति तीव्र होती है अतः गर्भकालीन अवधि को निम्न तीन उपभागों में विभाजित किया जाता है।

i. डिम्ब अवस्था या बीजावस्था (The Period of Ovum) (गर्भाधान से दो सप्ताह तक)
ii. भ्रूणावस्था (The Period of Embryo) (तीसरे सप्ताह से दूसरे माह के अन्त तक)

iii. गर्भस्थ शिशु की अवस्था (The Period of Fetus) (तीसरे माह के प्रारम्भ से जन्म लेने क समय तक)

1. **डिम्ब अवस्था** -इस अवस्था को बीजावस्था **(Germinal Period)** भी कहते हैं। यह अवस्था गर्भाधान से लेकर दो सप्ताह तक चलती है। इस अवस्था में गर्भस्थ जीव अण्डे के आकार का होता है जिसे जाइगोट (Zygote)कहते है। इसका आकार आलपिन के सिर के बराबर होता है और इसके अन्दर निरन्तर कोशिका विभाजन की क्रिया चलती रहती है किन्तु ऊपर से इसके स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं आता है। लगभग एक सप्ताह तक यह अण्डाकार जीव (Zygote)गर्भाशय के तरल पदार्थ में तैरता रहता है और अपना पोषण स्वयं ही करता है किन्तु 10 दिन बाद यह गर्भाशय की दीवार से चिपक जाता है। इस क्रिया को आरोपण (Implantation) कहते हैं यह क्रिया गर्भाधान के 10 दिन बाद होती है। आरोपण की क्रिया के बाद से ही गर्भस्थ जीव अपने पोषण के लिये माँ के शरीर पर आश्रित हो जाता है। आरोपण क्रिया में थायराइड और पिट्यूटरी ग्रंथि सहायक होती है।
यदि माँ के शरीर में थायराइड और पिट्यूटरी ग्रंथियाँ अपना कार्य ठीक प्रकार से नहीं करती हैं तो आरोपण क्रिया सम्पन्न नहीं हो पाती हैं फलस्वरूप जाइगोट र्;लहवजमद्ध अपना पोषण स्वयं अधिक दिनों तक न कर पाने के कारण मृत हो जाता है जिससे आगे का विकास समाप्त हो जाता है।
आरोपण क्रिया के दौरान जाइगोट की ऊपरी परत फट कर असमान आकार ग्रहण कर लेती है और यही उसे गर्भाशय से चिपकाये रखने का कार्य करती है। यही से गर्भनाल (Placenta) की रचना प्रारम्भ हो जाती है। गर्भनाल से ही डिम्बमाता के रक्त द्वारा अपना पोषण करता है।

2. **भ्रूणावस्था** -यह गर्भकालीन विकास की दूसरी अवस्था है जो तीसरे सप्ताह से लेकर दूसरे माह के अन्त तक चलती है। गर्भकालीन विकास की दृष्टि से यह अत्यन्त महत्वपूर्ण अवस्था है क्योंकि समस्त शरीर रचना, आकार तथा आकृतियों का निर्माण इसी अवस्था में होता है। इस अवस्था के अन्त तक भ्रूण मानव आकृति प्राप्त कर लेता है। इस अवस्था में विकास की गति बहुत तीव्र होती है जिससे भ्रूण के अन्दर अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं। शरीर के प्रमुख अंगों का निर्माण इसी अवस्था में होता है। दूसरे माह के अन्त तक भ्रूण की लम्बाई सवा इंच से दो इंच तक तथा भार लगभग 200 ग्राम हो जाता है। इस अवस्था में भ्रूण का स्वरूप नवजात शिशु के समान नहीं होता है। सिर का आकार अन्य अंगों की अपेक्षा बहुत बड़ा होता है, कान भी सिर से काफी नीचे प्रतीत होते हैं। नाक में भी केवल एक छिद्र होता है, और माथा काफी चौड़ा दिखायी देता है।

भ्रूणावस्था में जो भी विकास होता है वह तीन परतों से होता है। कोशिका विभाजन की निरन्तरता से डिम्ब तीन परतों में बँट जाता है। प्रथम और 'बाह्य परत'(Ectoderm)कहलाती है। इससे त्वचा, बाल, नाखून, दाँत, त्वचा ग्रंथियाँ तथा नाड़ी मण्डल का निर्माण होता है।

द्वितीय और मध्य पर्त (Mesoderm) कहलाती है। इससे त्वचा के भीतरी भाग और मांसपेशियें का निर्माण होता है। तीसरी और आन्तरिक परत (Endoderm) कहलाती है। इससे सम्पूर्ण पाचन तन्त्र, फेफड़े, यकृत तथा विभिन्न ग्रंथियों का निर्माण होता है।

यह अवस्था सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इस अवस्था में गर्भवती महिलाओं को विशेष सावधानी की आवश्यकता होती है।

3. **गर्भस्थ शिशु की अवस्था-** तीसरी और आखिरी अवस्था गर्भस्थ शिशु की अवस्था कहलाती है। यह तीसरे माह के प्रारम्भ से जन्म लेने के पूर्व तक होती है। यह अवस्था निर्माण की नहीं विकास की होती है भ्रूणावस्था में जिन -जिन अंगो का निर्माण हो गया होता है, उन्हीं का विकास इस अवस्था में होता है। इस अवस्था के प्रारम्भ होने से अन्त तक प्रत्येक माह गर्भस्थ शिशु के भार तथा लम्बाई में निरन्तर वृद्धि होती रहती है।

   3 माह - से प्रत्येक महीने गर्भस्थ शिशु के भार व आकार में वृद्धि होती रहती है। लम्बाई 6 सेमी. तथा भार 3/4 ओंस हो जाता है। हाथ पैरों की अंगुलियां बन जाती हैं । गर्भ का पोषण अब गर्भनाल से नाभिरज्जु द्वारा होने लगता है।

   4 माह- चौथे माह में शिशु का सिर अधिक बड़ा हो जाता है तथा सिर पर छोटे-छोटे बाल आ जाते हैं। लम्बाई 11-13 सेमी. तथा भार 110 ग्राम, मसूड़ों के अन्दर दांतों का विकास हो जाता है। गर्भवती के पेट का आकार कुछ बड़ा हो जाता है।

   माह- पाँचवे माह में शिशु की लम्बाई 20 सेमी. तथा भार 300 ग्राम हृदय की धड़कन प्रारम्भ हो जाती है। मांसपेशियाँ सक्रिय हो जाती हैं जिससे शिशु की क्रियाशीलता में वृद्धि हो जाती है। समस्त आन्तरिक अंग भी अपना कार्य प्रारम्भ कर देते हैं।

   6 माह- छठवें माह में त्वचा रोयेदार हो जाती है तथा शिशु शरीर पर तरल पदार्थ एकत्रित होने लगता है। इस अवस्था में सिर का विकास भी तीव्र गति से होता है। सिर छठवें माह के अन्त में सम्पूर्ण शरीर का 1/2 भाग हो जाता है।

   7 माह- सातवें माह में शिशु माँ के पेट में स्थित हो जाता है और जन्म लेने तक उसी स्थिति में स्थिर रहता है।

   8 माह- आठवें माह में शिशु का वजन 5 पौंड तथा लम्बाई 18 इंच हो जाती है । त्वचा लाल तथा झुर्रीदार हो जाती है। समस्त अस्थियों का निर्माण कार्य पूर्ण हो जाता है किन्तु शरीर पर वसा भी एकत्र होने लगती है। हृदय फेफड़े तथा नाड़ी मण्डल अनुपात में आ जाते हैं और अपने कार्य प्रारम्भ कर देते हैं।

9 माह - नवें माह में शिशु की त्वचा पर स्वाभाविक रंग आ जाता है। सिर पर घने बाल आ जाते हैं । इस समय से शिशु धीरे-धीरे गर्भाशय में नीचे की ओर खिसकने लगता है और जन्म तक इसी स्थिति में रहता है।

गर्भकालीन अवस्था में संवेगात्मक, व क्रियात्मक विकास-

वैज्ञानिकों के मतानुसार गर्भस्थ शिशु में क्रियात्मक क्षमतायें पहले तथा सांवेदनिक क्षमतायें बाद में विकसित होती है। गर्भकालीन अवस्था में तीसरे महीने में ही क्रियाशीलता प्रारम्भ हो जाती है। प्रारम्भिक माह में यह गतिशीलता सिर के भाग में अधिक होती है परन्तु बाद के महीनों में यह धीरे-धीरे हाथ और पैरों में बढ़ जाती है। स्पर्शनी संवेदना सबसे पहले नाक व मुँह में फिर क्रम से शरीर के अन्य भागों में फैलती है। ताप की संवेदनशीलता जन्म से पूर्व विकसित हो जाती है।

9.5 प्रसव कालीन विकास (Prenatal Development)

गर्भावस्था के 28वें सप्ताह से प्रसव के पश्चात् चार सप्ताह तक के काल से सम्बन्धित विकास को Prenatal Development कहते हैं ।

भ्रूण की आयु- 28 से 29 सप्ताह (Embryonic age)

i. भ्रूण 38 से 43 सेमी. तक पहुँच जाता है।
ii. भार - 1.5 किग्रा0 का स्तर
iii. शरीर की वसा का स्तर शीघ्रता से बढ़ता है।
iv. स्वास की गति नियमित हो जाती है परन्तु फेफेड़ों का विकास पूर्ण रूप से नहीं हो पाता ।
v. सं्वेदना का विकास
vi. हड्डियाँ पूर्णरूप से विकसित परन्तु कोमल और लचीली
vii. भ्रूण आयरन कैलसियम और फॉस्फोरस को अधिक मात्रा में जमा करने लगता है।

भ्रूण की आयु- 30 से 32 सप्ताह -

i. भ्रूण की लम्बाई 40 - 48 सेमी.
ii. भ्रूण काभार - 2.5 से 3 किग्रा.
iii. गर्भरोम (Lanugo) खत्म होने शुरू हो जाते हैं
iv. शरीर की वसा बढ़ जाती है।

v. अंगुलियों के नाखून अंगुलियों के शिरों तक पहुँच जाते हैं।
vi. शिशु जो 36 सप्ताह में जन्म लेता है जीवित रहने की अत्यधिक सम्भावना रहती है परन्तु
vii. चिकित्सकीय देखभाल पर|

भ्रूण की आयु- 34 से 38 सप्ताह -

i. भ्रूण पूर्ण विकसित हो जाता है
ii. यह 48 से 53 सेमी. लम्बा हो सकता है
iii. गर्भरोम समाप्त हो जाते हैं सिर्फ कन्धों व बांहों के ऊपर रह जाते हैं।
iv. अंगुलियों के नाखून अंगुलियों के सिरों से ऊपर पहुँच जाते हैं ।
v. छोटे-छोटे Breast buds male, female दोनों शिशुओं में उपस्थित हो जाते हैं।
vi. सिर के बाल घने और पूर्ण विकसित हो जाते हैं।
vii. प्रसव के बाद भी विकास निरन्तर होता रहता है।

बाल विकास अवस्थाओं व खान-पान के आधार पर नवजात शिशु का विकास **(Neonale)**

विभिन्न अवस्थाएँ- शरीर शास्त्रियों तथा मनोवैज्ञानिकों के कथनानुसार शिशु के विकास के लिये यह बहुत महत्वपूर्ण हैं कि प्रसव कैसे हुआ?

प्रसव की तीन अवस्था--

1. माँ को प्रसव वेदना होती है। 12 से 16 घंटे तक रहती है। प्रथम संतान में यह वेदना अधिक समय तक चलती है। माता का निचला भाग नर्म व ढीला हो जाता है ताकि शिशु सरलता से बाहर आ जाय।
2. बालक के जन्म की अवस्था है। इसमें भी माँ को पीड़ा का अनुभव होता है। प्रथम सन्तान में यह प्रक्रिया 1 से 3 घण्टे तक चल सकती है।
3. यह प्रसव के बाद की अवस्था है। इसमें गर्भनाल, नाभि से रज्जु तथा जर ;च्समबमदजंद्ध को गर्भाशय की दीवार से अलग कर के मां के शरीर के बाहर निकाला जाता है। इस प्रक्रिया में 5 मिनट से लेकर आधा घण्टा तक लग सकता है।

विकृत प्रसव और शिशु विकास -

प्रायः 96% प्रसव स्वाभाविक रीति से होता है किन्तु जो बालक यन्त्रों की सहायता से या कठिनाई से होते हैं , उनके मस्तिष्क तथा अस्थियों में कई दोष आ जाते हैं । उनका स्वभाव चिड़चिड़ा तथा

चिन्तायुक्त होता है। वे दोषयुक्त और उनका क्रियात्मक और बौद्धिक विकास भी अवरूद्ध हो जाता है।

नवीन वातावरण के साथ समायोजन-

जन्म के उपरान्त चार सप्ताह की अवधि को नवजात शिशु का स्वरूप माना जा सकता है। प्रसव के बाद नाभिरज्जु कटने के बाद वह एक स्वतन्त्र प्राणी बन जाता है। उसे नवीन वातावरण के साथ समायोजन करना होता है। इसमें लगभग एक सप्ताह लग जाता है और ऐसा करते समय उसका भार कुछ कम हो जाता है। तत्पश्चात वह भार की कमी को पूरा करने लगता है।

नवीन वातावरण से वह निम्न प्रकार से सामन्जस्य करने लगता है-

i. स्वतन्त्र रूप से श्वास लेने की क्रिया
ii. उत्सर्जन क्रिया
iii. नवीन तापमान के साथ समायोजन
iv. मुख द्वारा पोषण प्राप्त करना

नवजात शिशु का शरीर- सिर और पूरे शरीर में 1:4 का अनुपात होता है। पैर बेडौल, बाँहें और टाँगें छोटी होती हैं भार 3 से 3 और लम्बाई 17 से 21 इंच। नाड़ी की गति एक मिनट में लगभग 140 होती है। बाद में कम होकर 117 रह जाती है।
शिशु का हृदय छोटा होता है अतः सामान्य रक्त चाप बनाए रखने के लिये जल्दी-जल्दी धड़कना पड़ता है। वह 15 से 20 घण्टे तक सोता है।

नवजात शिशु के संवेग- संवेग अविकसित होते हैं। वारसन के मतानुसार नवजात शिशुओं में केवल तीन संवेग पाये जाते हैं। भय, क्रोध तथा स्नेह। शिशु अपनी अविकसित संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं को रोकर या माँ के साथ चिपट कर प्रकट करता है।

नवजात शिशु की संवेदनशीलता- गेसल के मतानुसार जन्म के उपरान्त शिशु की ज्ञानेन्द्रियाँ काम करने लगती हैं जो कि निम्न प्रकार से हैं।

i. दृष्टि संवेदना- इरविन तथा रेडफील्ड के परीक्षणों के अनुसार नवजात शिशु अन्धकार में रोने लगते हैं और प्रकाश में शान्त रहते हैं।
ii. ध्वनि संवेदना
iii. स्वाद संवेदना
iv. त्वचा संवेदना

v. घ्राण संवेदना
vi. अन्त सवयव संवेदना

नवजात शिशु की सहज क्रियाएँ- इनमें निम्न विशेषताएँ पाई जाती हैं।

a. ये तत्काल होती हैं
b. ये जन्मजात होती है
c. ये सरल होती है
d. इनमें एकरूपता पाई जाती है
e. ड.- ये शरीर के अवयव विशेष में होती है।

सहज क्रियाएँ जैसे-

a. पलक सहज क्रिया (Papillary)
b. धारण सहज क्रिया - (Grasping)- मुट्ठी बन्द कर लेता है|
c. चूषण सहज क्रिया (Sucking Reflex)
d. स्नायु सहज क्रिया – (Tendon /Reflex) थपथपाने से मांसपेशियों में संकुचन होता है।
e. पदतालिका सहजक्रिया (Plantar)पैर के तलवे को सहलाने पर वह अंगुलियों को फेका देता है

विकास को प्रभावित करने वाले तत्व -

i. गरीबी
ii. माता-पिता की उम्र
iii. दवाइयों का सेवन
iv. शराब
v. धूम्रपान व तम्बाकू
vi. बीमारी
vii. माँ का आहार व शारीरिक स्वास्थ्य
viii. माँ का गर्भकालीन अवसाद
ix. प्रदूषण
x. जन्म के समय कम भार

9.6 प्रसव पूर्व देखभाल (Antenatal Care)

किसी भी नारी का मातृत्व तभी सार्थक होता है जब वह शारीरिक व मानसिक रूप से स्वस्थ बालक को जन्म दे जो बड़ा होकर परिवार व समाज के दायित्वों का निर्वाह सफलतापूर्वक करे। स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट शिशु की प्राप्ति के लिये आवश्यक है कि गर्भवती स्त्री की समुचित देखभाल की जाये क्योंकि सम्पूर्ण गर्भकाल में गर्भस्थ शिशु माँ की क्रिया, प्रतिक्रियाओं, स्वास्थ्य और पोषण द्वारा प्रभावित होता रहता है।

गर्भस्थ शिशु का शारीरिक स्वास्थ्य व वृद्धि गर्भवती माँ के पोषण से प्रभावित होता है। शिशु का संवेगात्मक विकास माँ की प्रसन्नता व अप्रसन्नता द्वारा निर्धारित होता है। अतः गर्भवती माँ के लिए ऐसा वातावरण तैयार करना चाहिये जिसमें वह प्रसन्न रहे। गर्भवती माँ के साथ थोड़ी सी भी लापरवाही माँ तथा गर्भस्थ शिशु दोनों को हानि पहुँचा सकती है। इस प्रकार गर्भावस्था केवल माँ के लिये ही नहीं गर्भस्थ शिशु के लिये भी अति महत्वपूर्ण अवस्था है। इसलिये गर्भस्थ शिशु के समुचित विकास के लिये भी अति महत्वपूर्ण अवस्था है । इसलिये गर्भस्थ शिशु के समुचित विकास के लिये गर्भावस्था की प्रारम्भिक अवस्था से ही भली प्रकार देखभाल करनी चाहिए।

श्री जाकिर हुसैन के शब्दों में **''बच्चे को ईष्ट का अंश समझिये। न वह आपकी सम्पत्ति है और न वह आपका खिलौना है, वह तो आपके पास ईश्वर और मनुष्यता की एक धरोहर है।''**

गर्भावस्था का समय

गर्भावस्था लगभग 40 सप्ताह अर्थात् 280 दिन तक रहती है। इसकी गणना आखिरी मासिक धर्म तिथि से की जाती है।

प्रसवपूर्व गर्भवती की देखभाल के उद्देश्य-

i. भावी माता के स्वास्थ्य की देखभाल करना तथा स्वास्थ्य स्तर को ऊँचा उठाना।
ii. गर्भावस्था के दौरान उत्पन्न असामान्य स्थितियों का शीघ्र निदान व उपचार करना।
iii. भावी माता को प्रसूति के लिये शारीरिक मानसिक रूप से तैयार करना।
iv. गर्भवती की समुचित देखभाल द्वारा मातृ एवं शिशु मृत्यु दर को कम करना।
v. गर्भस्थ शिशु के स्वास्थ्य का विकास करना।

गर्भवती महिला की देखभाल के लिये आवश्यक बातें-

i. डॉक्टरी परीक्षण

ii. आहार
iii. वस्त्र
iv. व्यायाम
v. व्यक्तिगत स्वच्छता
vi. यौन सम्बन्धी
vii. मानसिक स्वास्थ्य
viii. परिश्रम विश्राम व निद्रा
ix. सूर्य का प्रकाश व स्वच्छ वायु
x. स्वास्थ्य सुरक्षा

प्रसव पूर्व शिशु का विकास (Antenatal Development)/ (Prenatal)-गर्भकालीन अवस्था इससे पहले बिन्दुओं पर समझाया जा चुका है।

9.7 गर्भोत्तरकालीन या प्रसवोत्तरकालीन विकास (Postnatal Development)-

जन्म के पश्चात् शिशु में होने वाले परिवर्तन प्रसवोत्तर कालीन विकास कहे जाते हैं। स्वस्थ व हृष्ट-पुष्ट शिशु के जन्म के लिए सम्पूर्ण गर्भकालीन अवस्था में माँ की समुचित देखभाल की आवश्यकता होती है किन्तु शिशु को जन्म के समय किसी प्रकार की कठिनाई न हो और प्रसव प्रक्रिया समान्य व आसान हो जिससे शिशु का विकास सामान्य हो इसके लिये भी विशेष तैयारी करनी होती है।

प्रसव के बाद नवजात शिशु की विशेष देखभाल की जाती है। सामान्यतः सामान्य नवजात शिशु का वजन लगभग 6 से 8 पौण्ड तक होता है लम्बाई 18 से 20 इंच होती है। नवजात शिशुओं की लम्बाई तथा भार कई बातों से प्रभावित होता है, जैसे - माता-पिता की लम्बाई तथा भार, माता को पोषण, माँ का स्वास्थ्य आदि।

जन्म के समय शिशु जैविकीय प्राणी के रूप में होता है। वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वतः नहीं कर सकता है उसे जैविकीय प्राणी से सामाजिक प्राणी के रूप में परिवर्तित होने के लिए अपने माता-पिता के उचित संरक्षण व देखभाल की आवश्यकता होती है। उचित देखभाल से तात्पर्य केवल बच्चे की शारीरिक आवश्यकताओं की ही पूर्ति करें अपितु समाजिक संवेगात्मक और मानसिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि भी करे जिससे बच्चे के स्वस्थ सन्तुलित व्यक्तित्व का निर्माण हो सके और वह परिवार व समाज के अच्छे नागरिक के रूप में विकसित हो सके।

बाल पोषण की प्रक्रिया निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। किशोरावस्था तक प्रत्येक बालक को अपने माता-पिता तथा वयस्कों के संरक्षण की आवश्यकता होती है। परिवार के सदस्य समय-समय पर बालक का उचित मार्गदर्शन कर उसके वर्तमान जीवन तथा भविष्य निर्माण पर प्रभाव डालते हैं। इस सम्बन्ध में डी.डेविड ने कहा है कि **''बालक अभिभावक सम्बन्ध बच्चों के व्यक्तित्व निर्माण पर प्रभाव डालते हैं।**

यह माना जाता है कि अच्छा बालपोषण बालक तथा माता-पिता के मध्य अच्छे अतः सम्बन्ध स्थापित करता है तथा सर्वांगीण विकास में सहायता प्रदान करता है। यदि बालकों का पालन पोषण भली प्रकार से नहीं किया जाता है तो वे विकास के सभी क्षेत्रों में पिछड़ जाते हैं और उनमें समायोजन समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। फलस्वरूप बालक समस्यात्मक और अपराधी बन जाते हैं अतः बालकों के स्वस्थ विकास के लिये यह आवश्यक है कि माता-पिता उनके पालन-पोषण पर उचित ध्यान दें और उन्हें वे सभी साधन व सुविधाये प्रदान करें जो सर्वांगीण विकास में सहायक हो। प्रत्येक परिवार की बाल पोषण विधियाँ संस्कृति, सामाजिक व धार्मिक परम्पराओं, सामाजिक मूल्यों तथा सामाजिक व आर्थिक स्तरों के अनुसार अलग-अलग होते हैं जिस समाज में हम रहते हैं उसके अपने कुछ आदर्श मान्यतायें व परम्परायें होती हैं। उसी के अनुसार समाज परिवार से बालक के पालन पोषण की अपेक्षा करता है जिससे बालक का स्वस्थ सामाजिक विकास हो और वह समाज के अच्छे सदस्य के रूप में विकसित हो।

बाल पोषण के क्षेत्र (Areas Of Child Rearing)-

बाल पोषण का निर्धारण करते समय माता-पिता को चाहिये कि वे अपने आदर्शों को बालकों पर न लादें क्योंकि जबरदस्ती थोपे गये आदर्श बालकों का स्वस्थ विकास नहीं कर सकते हैं। अतः माता-पिता को बालकों की भावनाओं का आदर करना चाहिये तथा उनके स्वभाव व आश्यकताओं को समझकर ही बाल पोषण प्रतिमानों का निर्घारण करना चाहिये।

बाल पोषण के क्षेत्र-

i. **पोषण देना** - 1. माँ का दूध या स्तपान (Breast Feeding) (माँ का दूध अमृत तुल्य होता है स्तनपान से माँ का स्वास्थ्य और बच्चे दोनों का स्वास्थ्य अच्छा रहता है।) 2. ऊपर का दूध (Top Feeding) (गाय का दूध लाभप्रद होता है)।
ii. **स्तनपान छुड़ाना (Weaning)-**. छः माह के बाद माँ का दूध शिशु की शारीरिक माँग के ,अनुसार पर्याप्त नहीं होता है। अतः धीरे-धीरे स्तनपान छुड़ाकर पूरक आहार द्वारा शिशु को पोषित करना चाहिये।
iii. वस्त्र
iv. मलमूत्र नियन्त्रण शिक्षा

v. दाँत निकलना
vi. समय-समय पर विभिन्न रोगों से बचाव हेतु विभिन्न प्रतिरक्षण टीके।

1.शारीरिक विकास- प्राणी के जीवन में शारीरिक विकास का बड़ा महत्व है जो कि गर्भाधान के समय से ही हो जाता है। बच्चे का शारीरिक विकास उसके सभी प्रकार के विकासों जैसे-मानसिक विकास, संवेगात्मक विकास तथा सामाजिक विकास सभी को प्रभावित करता है। विद्वानों का मानना है कि जिस बच्चे का शारीरिक विकास अच्छा होता है उसका मानसिक विकास भी तीव्र गति से होता है। इसी प्रकार शारीरिक विकास पर ही सामाजिक और संवेगात्मक विकास निर्भर रहता है जो बच्चे अस्वस्थ व कमजोर होते हैं वे स्वभाव से चिड़चिड़े हो जाते हैं जिससे उनके समूह के साथी भी कम होते हैं । अतः उनका सामाजिक विकास भी ठीक प्रकार से नहीं हो पाता है। सामान्य शारीरिक विकास के अन्तर्गत मुख्य रूप से शरीर के पाँच क्षेत्रों में विकास होता है जो बालक के व्यवहारों को प्रभावित करता है तथा व्यक्तित्व निर्धारण में सहायता करता है। ये पाँच क्षेत्र हैं%-

i. नाड़ी संस्थान का विकास
ii. माँस पेशियों का विकास
iii. अन्तः स्रावी ग्रन्थियों का विकास
iv. शारीरिक संरचना का विकास
v. स्वस्थ शरीर का विकास

विभिन्न अवस्थाओं में शारीरिक विकास-- जन्म के समय 7 से 8 पौण्ड व लम्बाई 18 से 20 इंच होती है। जन्म के प्रथम दो वर्षों में शारीरिक विकास की गति अति तीव्र होती है। हरलॉक के अनुसार जन्म के प्रथम चार माह में शिशु सामान्यतः तीन इंच बढ़ता है 8 माह की अवस्था में वह लगभग 25 से 27 इंच लम्बा हो जाता है और एक साल का होते-होते 27 से 39 इंच का हो जाता है। दूसरे वर्ष में 4 इंच और लम्बा होकर 32 इंच लम्बा हो जाता है। चार माह में शिशु का वजन लगभग 5.5 से 7.0 किलोग्राम एवं 1 वर्ष के शिशु का भार जन्म के भार का तिगुना हो जाता है।

पारिवारिक वातावरण-

परिवार का महत्व-

i. बालक को एक ऐसा स्थान प्राप्त होता है, जहाँ सांवेगिक रूप से अपने आप को अभिव्यक्त कर सकता है। वह सांवेगिक रूप से अपने आपको अभिव्यक्त कर सकता है। जहाँ उसे स्नेह

की प्राप्ति होती है। जहाँ उसे आदर होता है तथा जहाँ उसे सभी प्रकार की सुविधायें प्राप्त होती हैं।

ii. परिवार एक सांस्कृतिक संस्था है जो संस्कृति का संरक्षण करती है और उसे बालक बालिकाओं तक पहुँचाती है।

सुरक्षा का भाव- शिशु आयु में छोटा होता है प्रारम्भ के कुछ वर्षों में वह बोल भी नहीं पाता है। वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं नहीं कर सकता । वह प्रत्येक बात पर दूसरों पर निर्भर करता है। ऐसी अवस्था में उसे सुरक्षा की नितान्त आवश्यकता है। परिवार में जैसे उसके साथ व्यवहार किया जाता है जैसे उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है- उसका बड़ा मनोवैज्ञानिक प्रभाव उस पर पड़ता है और उसके अनुरूप ही उसके ''स्व'' का विकास होता है। सुरक्षा का यह भाव बालक को परिवार में ही मिलता है।

परिवार की रचना का बालक पर प्रभाव-

i. जन्म क्रम
ii. परिवार के सदस्यों की संख्या
iii. बच्चो का लिंग
iv. पारिवारिक समबन्ध

परिवार के भीतर रहते हुए ही शिशु के ''स्व'' का विकास होता है। शिशु के ''स्व'' के विकास में निम्नलिखित तत्व काम करते हैं--

i. शारीरिक अभिवृद्धि तथा विकास - (पहले विस्तार से बताया जा चुका है)।
ii. क्रियात्मक विकास
iii. भाषा का विकास
iv. बुद्धि का विकास
v. संवेगात्मक विकास
vi. सामाजिक सांस्कृतिक विकास
vii. प्रत्यक्षीकरण या अर्थ का विकास

2. क्रियात्मक विकास -क्रियात्मक विकास से तात्पर्य क्रिया या गति से है जैसे चलना, रेंगना एवं पकड़ना आदि।

प्रथम दो वर्ष- गर्भ का वातावरण गर्म होता है। अन्धकारपूर्ण होता है व शान्त होता है। प्रथम दो वर्षों में शिशु धीरे-धीरे शरीर को नियन्त्रित करने वाली क्रियाओं में निपुणता प्राप्त कर लेता है। वह बैठना

सीखने से पूर्व अपना सिर उठाता है, रेंगने से पूर्व बैठता है ओर चलने से पूर्व रेंगता है, प्रत्येक मानव शिशु का यही प्रतिरूप होता है। उदाहरणतः 7 मास का शिशु मटर के दाने जितनी वस्तु पकड़ सकता है और 9) मास की आयु में वह रेंग सकता है। 7 मास की आयु में बैठ सकता है।

3.भाषा का विकास-जब नवजात शिशु को कोई शारीरिक कष्ट होता है जैसे - भूख लगना, सर्दी लगना, पीड़ा होना, तब वह ध्वनि उच्चारण करने लगता है। प्रारम्भ में इन ’ध्वनि उच्चारणों ;टवबंसप्रंजपवदेद्ध में कोई अन्तर नहीं पाया जाता, परन्तु दूसरे मास से ही इनमें अन्तर आने लगता है। ये ध्वनि-उच्चारण क्रन्दन या रूदन ;बतलपदहद्ध के रूप में होते हैं। शिशु की रूदन क्रिया से यह तो स्पष्ट नहीं होता है कि उसे क्या कष्ट है, परन्तु इतना अवश्य पता चल जाता है कि वह किसी न किसी असुविधा का अनुभव कर रहा है। जब वह गर्र-गर्र की क्रन्दन ध्वनि करता है तो उसकी प्रसन्नता प्रकट होती है। इस प्रकार दो मास की आयु पूरी होने से पूर्व ही क्रन्दन ध्वनि द्वारा अपनी आवश्यताओं से दूसरों को परिचित कर देता है। जब शिशु लगभग चार मास का होता है तब एक साथ दो या तीन घ्वनियाँ भी उच्चारित करने लगता है। इस समय शिशु की क्रन्दन घ्वनियों में जितनी विविधता पाई जाएगी, उतनी श्रेष्ठता से ही कालान्तर में उसका भाषा-विकास होगा। इस समय शिशु अपनी भावनाओं को प्रकट करने के लिये अपनी ध्वनियों में उतार-चढ़ाव भी ले आता है, परन्तु अभी भी वे अस्पष्ट होती है। हर्ष तथा आश्चर्य की अवस्था में वह ध्वनि में चढ़ाव ले आता है किन्तु निराशा की स्थिति में उसकी ध्वनि में उतार आ जाता है । एक सुयोग्य माँ इन सभी स्थितियों की पहचान भली-भाँति कर सकती है।

6 मास की अवस्था से पूर्व ही शिशु बबलाने ;ठंइइसपदहद्ध की क्रिया करता है। वह बार-बार इन ध्वनियों को उच्चारित करने में आनन्द का अनुभव करता है। बबलाते समय शिशु जिन ध्वनियों को निकालता है, उन्हें लिखित रूप नहीं दिया जा सकता। बबलाने की यह अवस्था भी आवश्यक है, क्योंकि इससे शिशु की ध्वनि-सम्बन्धी माँसपेशियाँ अभ्यस्त होती है और वह अपनी ध्वनियों को स्वयं सुनता है। ध्वनियों का उच्चारण करना और साथ ही साथ इन ध्वनियों को सुनना-शिशु को बाद में इस बात की सहायता देते हैं कि वह उच्चारित शब्दों का सम्बन्ध पदार्थों से जोड़ सकें।

6 मास की आयु की समाप्ति से पहले-पहले ही वे लगभग सभी स्वर तथा व्यंजन ध्वनियों का उच्चारण कर सकते हैं । वे कभी-कभी इन ध्वनियों को जोड़कर भी निरन्तर उनकों दोहराते रहते हैं। तथा मा-मा-मा -या दा-दा-दा

9वें या 10वें मास में शिशु दूसरों द्वारा उच्चरित ध्वनियों का अनुकरण भी करने लगते हैं। ध्वनियों का सम्बन्ध वातावरण से जैसे ’बी‘ से बिल्ली ’क‘ का सम्बन्ध कुत्ते से शिशु की वास्तविक बोलचाल तो दो वर्ष की अवस्था में ही प्रारम्भ होती है परन्तु एक औसत बुद्धि का बालक 12 मास

होने से पूर्व ही एक या दो शब्दों का स्पष्ट उच्चारण करने लगता है। कुमारी शर्ले के अध्ययनानुसार एक औसत शिशु 47 से 66 सप्ताहों के मध्य में पहला शब्द बोलता है।

4.बुद्धि का विकास-फ्रांसीसी मनोवैज्ञानिक पाईगेट का कथन है कि जब शिशु पैदा होता है तभी से उसमें अपने अनुभवों को संगठित करने की शक्ति होती है। परन्तु अनुभवों को संगठित करने की शक्ति सभी शिशुओं में एक जैसी नहीं पाई जाती है। किसी शिशु में यह शक्ति कम होती है, किसी में अधिक। प्रथम दो वर्षो में शिशु का बौद्धिक विकास निम्न प्रकार प्रकट होता है।

प्रथम वर्ष- इन्द्रिय-गोचर गमनात्मक क्रियाएँ (Perpetual Motor Activities)

द्वितीय वर्ष- सरल प्रश्नों की समस्याओं को सुलझाना, उसका भाषा-विकास, अन्य व्यक्तियों की ओर उसकी प्रतिक्रियाएँ।

5.संवेगात्मक विकास- 'संवेग' से तात्पर्य है - हर्ष, भय, क्रोध और स्नेह आदि की वे अनुभूतियाँ, जो व्यक्ति को उत्तेजित कर देती है।

प्रथम विश्वयुद्ध से पूर्व यह समझा जाता था कि संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं का सम्बन्ध वंशानुक्रम से हैं प्रथम विश्वयुद्ध के उपरान्त प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक वाटसन ने कुछ नवजात शिशुओ का अध्ययन किया। 1919 ई0 में वाटसन ने कहा कि नवजात शिशु जिन संवेगों की अनुभूति करता है, उनकी संख्या तीन है- भय, क्रोध तथा स्नेह। वाट्सन के मतानुसार दो कारणों से शिशु भयभीत होता है- असुरक्षा का भाव तथा सहसा ऊँची आवाज में शोर होना, उसका कथन था कि व्यक्ति अपने जीवन में जिन'-जिन सांवेगिक प्रतिक्रियाओं की अनुभूति करता है, वे सब इन तीन मूल संवेगों से सम्बन्धित रहती है।

आज वाटसन के उपरोक्त विचार मनोवैज्ञानिकों को मान्य नहीं हैं।

संवेगों के उद्गम तथा विकास के सम्बन्ध में आजकल जो दृष्टिकोण प्रचलित है, उसका सुझाव श्रीमती कैथराईन ब्रिसेज ने 1930 में दिया। उन्होंने बताया कि नवजात शिशुओं की संवेगात्मक अनुभूतियों को हम सामान्य उत्तेजना ;ळमदमतंसप्रमक म्गबपजमउमदजद्ध कह सकते हैं। सामान्य उत्तेजना की इन अनुभूतियों में किसी भी प्रकार का भेद नहीं किया जा सकता। बाद में लगभग 3 मास की अवस्था में ये अनुभूतियाँ परिपक्वता तथा प्रशिक्षण के फलस्वरूप दो रूपों में प्रकट होती है। जिन्हें हम आनन्द की अनुभूतियाँ कह सकते हैं। तनावहीनता, मुस्कराना तथा गुटरगूँ करना 'आनन्द' का परिचायक है। रोना तथा तनाव की अवस्था 'कष्ट' का परिचायक है।

लगभग 6 मास की आयु में कष्ट से क्रोध, घृणा ;क्पेहनेजद्ध तथा भय का विकास होता है। इसी प्रकार एक वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते आनन्द के द्वारा उल्लास ;म्संजपवदद्ध तथा स्नेह के संवेग विकसित होते हैं।

6.सामाजिक-सांस्कृतिक विकास- प्रथम दो वर्षों में शिशु उन व्यक्तियों से स्नेह करते हैं, जो उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। उनके स्नेह का प्रथम पात्र माता ही होती है। जो शिशु अपने से स्नेह करने वाले व्यक्ति से एकरूपता स्थापित कर पाते, वे जीवन पर्यन्त और लोगों में हिल-मिल कर एक नहीं हो पाते हैं। दो तीन वर्षों की आयु तक पहुँचते -पहुँचते कई बालकों की प्रतिक्रियाएँ प्रायः निश्चित सी हो जाती है। कुछ शिशुओं में प्रारम्भ से सामाजिकता की भावना अधिक होती है। वे बुलाने पर जल्दी मुस्कराने लगते हैं। तीन सप्ताह के शिशु मानव-ध्वनि पर ध्यान देने लगते हैं। तीन -चार मास का शिशु मनुष्य की ध्वनि सुन कर अपनी गर्दन घुमा लेता है। पाँच सप्ताह का शिशु हँसने पर मुस्करा देता है। आठ सप्ताह का शिशु माँ के प्रति विशेष प्रतिक्रियाएँ प्रकट करता है। नौ-दस सप्ताह का शिशु किसी अपरिचित यक्ति को देखकर रोने लगता है। चार मास का बालक लोगों के तमाशे में जाना चाहता है। छः माह में शिशु अन्य शिशुओं व वयस्कों दोनों में रूचि लेने लगता है। एक वर्ष पूरा होने से पहले ही शिशु में अपरिचित व्यक्तियों के प्रति भय तथा उदासीनता कम हो जाती हैं।

7.प्रत्यक्षीकरण अर्थ का विकास-बालक के प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया जन्म के जल्दी बाद ही प्रारम्भ हो जाती है। कुछ दिन माँ का दूध पीने पर वह माँ के दूध को समझ जाता है। दो सप्ताह के पश्चात् शिशु ठण्डे और गर्म दूध में अन्तर समझने लगता है। तीन सप्ताह का शिशु खट्टी और मीठी वस्तुओं का अन्तर पहचानता है। तीन मास का बालक रंगों के प्रति अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करता है। एक वर्ष का बालक नीले, लाल, हरे और पीले रंग में भेद कर सकता है। उसे आम तौर पर लाल रंग अधिक अच्छा लगता है।

9.8 सारांश

बालक की शिक्षा का प्रारम्भ बालक के माता के गर्भ में आने पर व उससे भी पूर्व शुरू हो जाता है। महाभारत में अभिमन्यु ने चक्रव्यूह को तोड़ना अपनी माँ के गर्भ से ही सीखा था। गर्भावस्था में कई तत्व बालक को प्रभावित करते हैं माँ किस वातावरण में रहती है माता का स्वभाव, स्वास्थ माता का पोषण आदि सभी तत्व शिशु के विकास को प्रभावित करते हैं।

गर्भकालीन अवधि में शिशु का विकास तीन अवस्थाओं में होता हैः

1. डिम्ब अवस्था 2. भ्रूणावस्था 3. गर्भस्थ शिशु ;मिजने की अवस्था

शरीर शास्त्रियों तथा मनोवैज्ञानिकों के कथनानुसार प्रसव की भी तीन अस्वस्था होती हैं व शिशु का विकास के लिये यह बहुत महत्वपूर्ण है कि प्रसव कैसे हुआ है। प्रथम अवस्था में माँ को प्रसव वेदना होती है। द्वितीय अवस्था में यह पीड़ा अत्यधिक होती है व अन्तिम अवस्था में शिशु जन्म के बाद गर्भनाल, नाभि से व च्संबमदजं के गर्भाशय की दीवार से अलग कर माँ के शरीर से बाहर किया जाता है।

नवजात शिशु का शरीर सिर व पूरे शरीर 1%4 के अनुपात में होता है। नवजात शिशु में संवेदनाओं या ज्ञानेन्द्रित जन्म के उपरान्त काम करने लगती है। व केवल तीन संवेग विकसित होते हैं। भय, क्रोध तथा स्नेह। प्रसव व पश्चात शिशु का विकास शिशु के पोषण व माता दोनों के खान पान पर निर्भर करता है। शिशु का शारीरिक विकास क्रियात्मक विकास भाषा का विकास , बुद्धि का विकास, संवेगात्मक विकास सामाजिक सांसकृतिक विकास सभी एक निश्चित समय के साथ होते चले जाते हैं इन सभी विकासों पर वातावरण एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करत है।

9.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सावित्री देवी वर्मा "आपका मुन्ना" - आत्मा राम, दिल्ली
2. भाई योगेन्द्रः बाल-मनोविज्ञान'' विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
3. विद्यानन्द विदेहः वेद व्याख्या ग्रन्थ (भाग-6)- वेद संस्थान , अजमेर
4. हरलॉकः "चाईल्ड डिवलपमैण्डः कागाकुश, टोकयू।
5. महेन्द्रप्रसाद जायसवालः विकासात्मक मनोविज्ञान पुस्तक सदन, दिल्ली
6. किलफ्फर्ड मार्गनः "इन्ट्रोडक्षन टू साईकॉलॉजी" मैकग्रो, न्यूयॉर्क ।
7. लालाजी रामशुक्ल "बाल मनोविकास" - नन्द किशोर , वाराणसी ।
8. मिलर्डः ''चाईल्ड ग्रोथ एंड डिवॅलपमैण्ट'' - हीथ, बोस्टन
9. वी.एलिजाबेथः ''चाईल्ड डिवॅलपमैण्ट'' मैकग्रो,-न्यूयार्क।
10. गुड इनफ तथा टाइलरः "डिवॅलपमैन्टल साई कॉलॉजी" एपिलटन, न्यूयॉर्क।
11. डॉ0 नीता अग्रवाल व डॉ0 वीन निगमः "मातृकला एवं बालविकास' अग्रवाल पब्लिकशन्स, आगरा

9.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. गर्भवती माता के स्वास्थ्य के लिये किन-किन बातों पर ध्यान देना आवश्यक है।
2. गर्भकालीन विकास की अवस्थाओं का विस्तार से वर्णन कीजिए।
3. नवजात शिशु की विशेषताओं की विवेचना कीजिए।